साहित्य अमृत

मासिक

माघ-फाल्गुन, संवत्-२०७६ ❖ फरवरी २०२०

वर्ष-२५ ❖ अंक-७ ❖ पृष्ठ ८४ | यू.जी.सी.-केयर लिस्ट में क्र. ३८ पर उल्लिखित | ISSN 2455-1171

संस्थापक संपादक

स्व. पं. विद्यानिवास मिश्र

❖

पूर्व संपादक

स्व. डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी

❖

संपादक

त्रिलोकी नाथ चतुर्वेदी

❖

प्रबंध संपादक

श्यामसुंदर

❖

संयुक्त संपादक

डॉ. हेमंत कुकरेती

❖

कार्यालय

४/१९, आसफ अली रोड,
नई दिल्ली-११०००२
फोन : २३२८९७७७ • फैक्स : २३२५३२३३
इ-मेल : sahityaamrit@gmail.com

❖

शुल्क

एक अंक —₹ ३०
वार्षिक (व्यक्तियों के लिए)—₹ ३००
वार्षिक (संस्थाओं/पुस्तकालयों के लिए)—₹ ४००
विदेश में
एक अंक—चार यू.एस. डॉलर (US$4)
वार्षिक—पैंतालीस यू.एस. डॉलर (US$45)

❖

प्रकाशक, मुद्रक तथा स्वत्वाधिकारी श्यामसुंदर द्वारा
४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-२
से प्रकाशित एवं ग्राफिक वर्ल्ड, १६८६,
कूचा दखनीराय, दरियागंज, नई दिल्ली-२ द्वारा मुद्रित।

❖

साहित्य अमृत में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार एवं दृष्टिकोण संबंधित लेखक के हैं। संपादक अथवा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

इस अंक में

संयुक्त संपादक की कलम से

'साहित्य अमृत' : नींव से निर्माण तक ४

प्रतिस्मृति

बाबू गुलाबराय चिरस्मरणीय व्यक्तित्व/ *वृंदावनलाल वर्मा डी.लिट्.* ५

स्मृति-आलेख

सिंहासन पर विदाई/ *मृदुला सिन्हा* ८

भारतीय रागबोध की…/ अजयेंद्रनाथ त्रिवेदी १५

मेरे बड़े भाई : मेरे मार्गदर्शक/ *कमल किशोर गोयनका* २०

नियमों की अवहेलना न करनेवाले अधिकारी/ *लक्ष्मीनिवास झुंझुनवाला* २४

बहुमुखी प्रतिभा के धनी…/ *हेरंब चतुर्वेदी* २९

एक कुशल प्रशासक व नेक इनसान/ *गोपाल चतुर्वेदी* ३६

डॉ. गंगाप्रसाद विमल : चिरस्थायी है वह मोहक मुसकान/ *लक्ष्मीशंकर वाजपेयी* ४२

आत्मीय निर्मल विमल/ *श्रीधर द्विवेदी* ४६

हमारे कर्मयोगी बाऊजी/ *सोनाली अग्रवाल* ५२

हम सबके बाबूजी/ *चारू अग्रवाल* ६०

कहानी

बिरसी माँ/ *ऋता शुक्ल* १०

बाँसुरी का कमाल/ *पुष्पेश कुमार पुष्प* २२

दो फूल खुशनुमा से…/ *मोहिनी गर्ग* २६

संतू/ *राकेश कुमार* ३२

द्विरागमन/ *सीमा वर्मा* ५१

अपने सुहाग के लिए…/ *गुंजन गुप्ता* ५७

लघुकथा

माँ का स्टांप पेपर/ *सत्य शुचि* ६

गाय की गति/ *सत्य शुचि* २३

गलत पहल/ *सत्य शुचि* ३१

एडल्टरी/ *सत्य शुचि* ४३

कविता

बासंती कविताएँ/ *सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', सुभद्रा कुमारी चौहान* ७

हमारे बाबूजी/ *उर्वशी अग्रवाल 'उर्वी'* ३५

ज्योति का हो संस्फुरण/ *इंदिरा मोहन* ५३

गागर से सागर/ *श्रीराम मीना* ५९

सिर में सुनामी/ *संजीव ठाकुर* ६१

राम झरोखे बैठ के

गरीब का चिकित्सालय/ *गोपाल चतुर्वेदी* १८

साहित्य का भारतीय परिपार्श्व

हँसी और हँसी-व्रत/ *श्रीकुल शइकीया* ३८

साहित्य का विश्व परिपार्श्व

मृतकों का मार्ग/ *चिनुआ अचेबे* ४४

ललित-निबंध

वसंत की उत्कंठा…/ *श्यामसुंदर दुबे* ४८

व्यंग्य

फकीरचंद्रजी की मृत्यु/ *भरतचंद्र शर्मा* ५४

यात्रा-संस्मरण

आओ, चलें तीर्थराज चित्तौड़/ *प्रेमपाल शर्मा* ६४

लोक-साहित्य

बुंदेली लोकगीतों में स्वास्थ्य-चेतना/ *सुधा तैलंग* ७०

बाल-संसार

माँ की गंध/ *शशि गोयल* ७२

पाठकों की प्रतिक्रियाएँ ७४

वर्ग-पहेली ७६

साहित्यिक गतिविधियाँ ७७

'साहित्य अमृत' : नींव से निर्माण तक

सन् २०१९ जाते-जाते कुछ दु:खद स्मृतियाँ देकर गया। 'साहित्य अमृत' के प्रकाशन, संपादन और उसके विस्तार के स्तंभ रहे संपादक आदरणीय श्री त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदी तथा प्रबंध संपादक श्री श्यामसुंदरजी लगभग एक साथ हमें छोड़कर चले गए। श्री चतुर्वेदी मूल रूप से भारतीय प्रशासनिक सेवा के वरिष्ठ अधिकारी रहे। भारत के नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक तथा कर्नाटक और केरल के राज्यपाल सरीखे बड़े पदों को उन्होंने नई दृष्टि दी। श्री चतुर्वेदी 'पद्मभूषण' सम्मान से अलंकृत ऐसे सहृदय इनसान थे, जिनकी समसामयिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और आर्थिक मुद्दों पर बड़ी मजबूत पकड़ थी। 'साहित्य अमृत' के पूर्ववर्ती विद्वान् और यशस्वी संपादकों के संपादकीय लेख मूलत: एक विषयी हुआ करते थे; परंतु चतुर्वेदीजी ने थोड़ा बदलाव कर उसे विविध विषयी बनाया। चूँकि आज राजनीति जीवन के हर क्षेत्र में व्याप्त है, वे समसामयिक राजनीतिक विषयों और सरकार की नीतियों का नीर-क्षीर-विवेकावाला ऐसा विश्लेषण करते थे कि आम पाठक उन नीतियों को, कानूनों को, बातों को सहजता से समझ पाते थे। वे पुस्तकें पढ़ने और खरीदने के बेहद शौकीन थे। महत्त्वपूर्ण पुस्तकों को पढ़ने के बाद उसका सार-संक्षेप संपादकीय टिप्पणी के रूप में प्राय: लिखा करते थे। एक ही संपादकीय में वे कई-कई विषयों पर अपनी चिंतनपरक टिप्पणी देते थे, जो बहुत बेबाक होती थी। मानवीय मूल्यों पर उनका अटूट विश्वास था। वे जितने बड़े विद्वान् थे, उतने ही बड़े मनुष्य भी थे। जुलाई २०१४ में मैं उनके साथ 'साहित्य अमृत' के संयुक्त संपादक के रूप में जुड़ा। वे मेरे ऊपर पूर्ण विश्वास करते थे। मेरे द्वारा स्वीकृत रचनाओं को बिना किसी फेर-बदल के पत्रिका में स्थान देते थे।

श्री श्यामसुंदरजी से मैं पहली बार तब मिला, जब दिल्ली विश्वविद्यालय में स्नातक स्तर के दूसरे वर्ष का विद्यार्थी था। मेरी कुछ कविताएँ और समीक्षाएँ पत्र-पत्रिकाओं में छप चुकी थीं। एक दिन मैं प्रभात प्रकाशन के कार्यालय में गया और मैंने दस-बारह पुस्तकें निकाल लीं और कहा कि ये पुस्तकें मुझे चाहिए। मैं इनकी समीक्षा करूँगा। इतना ही नहीं, दूसरे प्रकाशकों की भी कुछ पुस्तकों की सूची मेरे पास थी। श्यामसुंदरजी ने कहा कि ये हमारी पुस्तकें नहीं हैं, फिर भी अगर आपको चाहिए तो कल मिल जाएँगी; और अगले दिन पहुँचने पर सारी पुस्तकें मुझे मिल गईं। इस प्रकार उन्होंने मेरी ही नहीं, कई विद्यार्थियों की मदद की। वे हमेशा कहते थे, समय आने पर आप भी किसी सुपात्र की यथासंभव सहायता कर देना। नींव के पत्थर दिखते नहीं हैं, लेकिन इमारत उन पर ही टिकी रहती है। वे भी पत्रिका के लिए एक सुदृढ़ बुनियाद की तरह रहे। कितनी भी विषम परिस्थितियाँ हों, मिलने पर वे ठहाका लगाकर सब सहज बना देते। 'अभी जीवन समाप्त नहीं हुआ है' कहकर वे आगामी संघर्ष के लिए सकारात्मक ऊर्जा प्रदान करते थे। उन्होंने पत्रिका के कार्य में कभी दखल नहीं दिया। पत्रिका को और भी उत्कृष्ट तथा पाठकों के बीच अधिक ग्राह्य बनाने के लिए चिंतन कर सबका मार्गदर्शक करते थे। उन्होंने ऐसे दौर में 'साहित्य अमृत' का प्रकाशन शुरू किया, जब हिंदी की स्थापित पत्रिकाएँ एक के बाद एक बंद हो रही थीं। श्री अटल बिहारी वाजपेयी के आग्रह, तत्कालीन राष्ट्रपति श्री शंकर दयाल शर्मा की प्रेरणा तथा पं. विद्यानिवास मिश्र के संपादकत्व में 'साहित्य अमृत' का शुभारंभ किया। पत्रिका ने उत्तरोत्तर प्रगति के सोपान तय करते हुए हिंदी के पत्रिकारिता जगत् में अपना सम्मानित स्थान बनाया।

पंडितजी के स्वर्गवास के बाद श्री श्यामसुंदरजी ने उस समय के हिंदी के उद्भट विद्वान् और संविधान विशेषज्ञ डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवीजी को 'साहित्य अमृत' के संपादन का भार सौंपा। उन्होंने भी अपने कलम-कौशल से पत्रिका की प्रतिष्ठा में चार चाँद लगाए और फिर उनके दिवंगत होने पर त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदीजी ने 'साहित्य अमृत' के माध्यम से हिंदीसेवा के अनुष्ठान में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। यह सिलसिला यों ही बढ़ता रहा है, आगे भी बढ़ता रहेगा। यह सब पाठकों एवं रचनाकारों के सतत सहयोग के बिना संभव नहीं हो सकता था। इस मामले में 'साहित्य अमृत' परिवार बड़ा सौभाग्यशाली है कि आप सभी हिंदी-प्रेमियों का हमें भरपूर सहयोग आज भी निरंतर मिल रहा है।

आप सब जानते ही हैं कि 'साहित्य अमृत' द्वारा समय-समय पर विभिन्न विधाओं में निकाले गए विशेषांकों ने बड़ी ख्याति अर्जित कर पाठकों के हृदय में विशेष स्थान बनाया। उसी शृंखला में श्री त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदी एवं श्री श्यामसुंदरजी के मार्गदर्शन में गांधीजी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर केंद्रित वृहद 'गांधी विशेषांक' निकाला। विषय-वैविध्य एवं कथ्य-समृद्ध इस विशेषांक की दिल्ली विश्व पुस्तक मेले में बड़ी चर्चा हुई। ऐसी पावन एवं कर्मठ विभूतियों को सादर नमन।

—हेमंत कुकरेती

बाबू गुलाबराय चिरस्मरणीय व्यक्तित्व

• वृंदावनलाल वर्मा डी.लिट्.

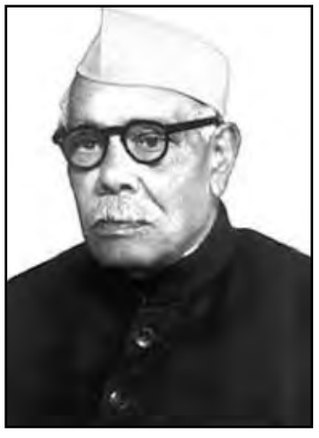

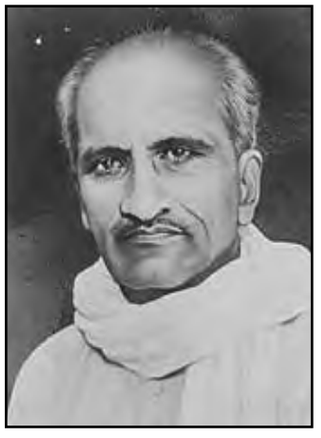

मैं एक मुकदमे की पैरवी करके वकील-भवन में आया था कि तार मिला, 'महाराज आपसे मिलना चाहते हैं। कल सवेरे की गाड़ी से हरपालपुर स्टेशन पर आ जाइए, मोटर तैयार मिलेगी— गुलाब राय।' तार छत्रपुर से आया था। सन् १९२९-३० की बात है। निकट ही एक वकील मित्र खड़े थे। कहने लगे, "महाराज तुम्हें अपना दीवान बनाना चाहते हैं, पहुँचो।"

"अजी, दीवान तो क्या, मैं राजा का चपरासी भी बनने लायक नहीं हूँ।" मैंने उत्तर दिया। हँसी में बात डूबने-उतराने लगी।

उस समय छत्रपुर के महाराज विश्वनाथसिंह थे। हिंदी साहित्य के बड़े प्रेमी। मैं सोचने लगा कि बुलाए जाने का कारण संभव है कानूनी सलाह हो, क्योंकि वकालत अच्छी-खासी चल रही थी। मेरे कुछ उपन्यास—'गढ़ कुंडार', 'प्रेम की भेंट' इत्यादि प्रकाशित हो चुके थे। परंतु साहित्यिक कारण की ओर मेरा ध्यान नहीं गया।

चल पड़ा दूसरे दिन संध्या की गाड़ी से। हरपालपुर स्टेशन पर गाड़ी मिल गई। दिन भर वहीं बनी रही थी। मैं सवेरे की गाड़ी से नहीं जा सकता था, क्योंकि झाँसी में काम था। रात के समय छत्रपुर पहुँचा। विश्राम-गृह पर एक सज्जन मिले। ठिगना सा कद, गंभीर आकृति, चश्मे के भीतर बारीक दृष्टि। "तार मैंने भेजा था, दिन में आपकी प्रतीक्षा होती रही।" ये बाबू गुलाबराय थे। नाम सुन रखा था। पहली भेंट उसी क्षण हुई थी।

मैंने क्षमायाचना की। कारण बतलाकर उनसे निवेदन किया, "मैं इसी समय महाराजा साहब से भेंट करने के लिए तैयार हूँ, भोजन लौटकर लूँगा।"

वे मुसकराए। बोले, "महाराजा साहब के मिलने का समय चार बजे प्रात:काल का होगा।"

"चार बजे प्रात:काल!"

"जी हाँ, उन्हें यही समय पसंद है।" फिर वही मुसकान। मैंने बुलाए जाने का कारण पूछा।

"मुझे नहीं मालूम। वही बतलाएँगे।"

"सवेरे की गाड़ी से आ जाता तो दिन में मिल लेता।"

"जी नहीं, वे दिन में शायद ही किसी से मिलते हों।"

"पॉलिटिकल एजेंट से भी नहीं?"

"वह और बात है, जिस पर मैं कुछ नहीं कह सकता।" वे फिर मुसकराए। सोच रहा था कि क्या बाबू गुलाबराय कभी खिलखिलाकर भी हँसते होंगे?

उन्होंने भोजन का प्रबंध किया और यह कहकर चले गए, "ठीक साढ़े तीन बजे मोटर आ जाएगी, आप चार बजे महल पहुँच जाएँगे।"

मुझे लगा कि रात भर जागते रहना पड़ेगा। ऐसा कौन सा काम है, जिसके लिए बुलाया गया हूँ? रात भर के जागरण की दलेल की शंका कचोटने लगी। चाहे जिस समय सो जाना और किसी निश्चित घड़ी पर जाग जाना वश की बात नहीं थी। एक पुस्तक और समाचार-पत्र साथ ले गया था। कभी इसे और कभी उसे पढ़ते, लौटते-पलटते रात बीती। मोटर ठीक साढ़े तीन बजे आ गई। रात का सन्नाटा था। मैं तैयार होकर ठीक समय पर महल में पहुँच गया। महाराज जाग रहे थे। शिष्टाचार के साथ बिठलाया और उन्होंने जो पहली ही बात की, वह यह प्रश्न था, "आपका उपन्यास 'प्रेम की भेंट' मुझे बहुत पसंद आया। उसकी पात्रा उजियारी का अंत में क्या हुआ?"

तो क्या इसी के लिए इन्होंने मुझे झाँसी से बुलाया है? तुरंत मन में कौंधा, हँसी उमड़ी और जहाँ-की-तहाँ दबा दी गई। सूर्योदय के पहले तक उसी पुस्तक के कई प्रसंगों पर चर्चा होती रही। अंत में

महाराज बोले, “कभी आप खजुराहो गए ?”

“नहीं महाराज, कभी नहीं गया।”

“तो आज अवश्य देख लीजिए। निकट ही मनियागढ़ है, उसे भी देख लेना। चंदेले वहीं से चले थे।”

मैं सोचता-विचारता चला आया—‘कानूनी सलाह के लिए नहीं बुलाया गया तो कोई बात नहीं, प्रसिद्ध ऐतिहासिक सुंदर कलाकेंद्र खजुराहो तो देखने को मिल जाएगा, सारा परिश्रम वसूल हो जाएगा।’

यात्रा करने के पहले मैं बाबू गुलाबराय से मिला और उन्हें सारी कहानी सुना डाली। मुझे हँसी आ जाती थी और वे केवल मुसकराते रहे, गंभीरता में घुली मुसकान और आँखों में सूक्ष्म व्यंग्य।

“असफलता में सफलता मिल जाती है”, उसी मुसकान के साथ यह व्यंग्य। और भी, “लिख डालिए, कभी खजुराहो, मनियागढ़ इत्यादि पर। उजियारी तो उसमें आएगी नहीं।”

“अँधियारी को ले आऊँ?”

“तार भी संभवतः पहुँचेगा, परंतु दिन की गाड़ी से नहीं, रात की गाड़ी से बुलाए जाएँगे।”

मैंने कहा, “मैंने समझा था कि शायद किसी कानूनी मामले की सलाह के लिए बुलाया हो।”

“असफलता में सफलता मिल जाती है”, उसी मुसकान के साथ यह व्यंग्य। और भी, “लिख डालिए, कभी खजुराहो, मनियागढ़ इत्यादि पर। उजियारी तो उसमें आएगी नहीं।”

“अँधियारी को ले आऊँ ?”

“तार भी संभवत: पहुँचेगा, परंतु दिन की गाड़ी से नहीं, रात की गाड़ी से बुलाए जाएँगे।”

बाबू गुलाबराय तब छत्रपुर महाराज के निजी सचिव थे। गंभीर विचारक, सूक्ष्मदर्शी और बारीक व्यंग्यकार। मेरे ध्यान में यही आया।

इसके उपरांत छत्रपुर में एक बार और थोड़े से क्षणों के लिए भेंट हुई। फिर आगरा में अनेक बार।

उनकी विख्यात रचना—‘मेरी असफलताएँ’ प्रकाशित होते ही मुझे भेंटस्वरूप मिल गई थी। अपने ढंग की अद्वितीय रचना। उनकी साहित्यिक गहराई और सूक्ष्म व्यंजना सब उसमें।

जब सन् १९५७ में आगरा विश्वविद्यालय ने उन्हें डी.लिट्. की उपाधि दी तो मुझे बहुत हर्ष हुआ था। समारोह में मैं भी गया। तब वे कुछ अस्वस्थ थे, परंतु उस गंभीर मुसकान में कमी नहीं आई थी।

उसके बाद भी भेंट होती रही। मैं जब कभी भी आगरा जाता, उनके निवास-स्थान पर अवश्य पहुँचता।

उनका रहन-सहन सीधा-सादा, बातचीत गंभीर और कभी-कभी किसी-न-किसी सूक्ष्म दूरदर्शी व्यंग्य का पुट।

हिंदी साहित्य के लिए बाबू गुलाबराय की देन अमर है। उनका व्यक्तित्व मिलनेवालों को कभी नहीं भूलेगा।

सा अ

लघुकथा

माँ का स्टांप पेपर

• सत्य शुचि

मायूसी के दिनों में अमूमन उसे माँ बार-बार स्मरण हो आती थी। हाल-फिलहाल में घर का काम ठप्प हो चुका था और उस रोज नहाते वक्त गुसलखाने में पत्नी फिसलकर क्या गिरी कि डॉक्टर ने कूल्हे की हड्डी टूटने के सबब उसे अब बेड रेस्ट की हिदायत दी थी।

वस्तुत: मामला परेशानी भरा हो चला था, इसलिए एक दिवस वह भीतर-ही-भीतर थोड़ी हिम्मत सँजोकर-बटोरकर माँ के पास गया था, लेकिन माँ फटाक से आवेश में आ गई, ‘··· मैं क्यों चलूँ···मेरी वहाँ क्या जरूरत है···और सुनो! मैं कहीं भी जानेवाली नहीं हूँ, समझे!’ वह बेटे को बैरंग लौटाना चाहती थी।

अंत-पंत काफी खुशामद करने के बाद माँ जरा पिघली थी, मगर चलते समय माँ की शर्त से वह चौंक गया, परंतु उसने माँ की वह शर्त भी मंजूर कर ली थी। गौरतलब यह है बकौल पुत्र, ‘हाँ, वह स्टांप पेपर पर लिखित में आश्वासन देगा कि माँ को वह हमेशा अपने पास ही रखेगा और आइंदा से वह माँ को घर से अलग भी नहीं करेगा।’

‘तो फिर चल···!’ क्षणों तक अपलक उसे देखते हुए एक आश्वस्त मुद्रा में माँ तुरंत स्वयं का बिखरा सामान समेटने लगी।

सहसा, एकबारगी माँ की दृष्टि अपने छूटते आवास-रहवास पर ठहरी और तभी फुरती से वह उदास-सी ऑटो में जा बैठी।

सा अ

साकेत नगर, ब्यावर-३०५९०१ (राजस्थान)
दूरभाष : ९४१३६८५८२०

बासंती कविताएँ

सखि, वसंत आया

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

सखि, वसंत आया
भरा हर्ष वन के मन,
नवोत्कर्ष छाया।

किसलय-वसना नव-वय-लतिका
मिली मधुर प्रिय उर-तरु-पतिका
मधुप-वृंद बंदी-
पिक-स्वर नभ सरसाया।

लता-मुकुल हार गंध-भार भर
बही पवन बंद मंद मंदतर,
जागी नयनों में वन-
यौवन की माया।

अवृत सरसी-उर-सरसिज उठे,
केशर के केश कली के छुटे,

स्वर्ण-शस्य-अंचल
पृथ्वी का लहराया।

❖ • ❖

वीरों का कैसा हो बसंत

सुभद्रा कुमारी चौहान

आ रही हिमालय से पुकार
है उदधि गजरता बार-बार,
प्राची पश्चिम भू नभ अपार
सब पूछ रहे हैं दिग-दिगंत,
वीरों का कैसा हो बसंत।

फूली सरसों ने दिया रंग
मधु लेकर आ पहुँचा अनंग,
वधु वसुधा पुलकित अंग-अंग
है वीर देश में किंतु कंत,
वीरों का कैसा हो वसंत।

भर रही कोकिला इधर तान
मारू बाजे पर उधर गान,
है रंग और रण का विधान
मिलने को आए हैं आदि अंत,
वीरों का कैसा हो वसंत।

गलबाँहें हों या हो कृपाण
चलचितवन हो या धनुषबाण,
हो रसविलास या दलितत्राण
अब यही समस्या है दुरंत,
वीरों का कैसा हो वसंत।

कह दे अतीत अब मौन त्याग
लंके तुझमें क्यों लगी आग,
ऐ कुरुक्षेत्र अब जाग-जाग
बतला अपने अनुभव अनंत,
वीरों का कैसा हो वसंत।

हल्दीघाटी के शिला खंड
ऐ दुर्ग सिंहगढ़ के प्रचंड,
राणा ताना का कर घमंड
दो जगा आज स्मृतियाँ ज्वलंत,
वीरों का कैसा हो बसंत।

भूषण अथवा कवि चंद नहीं
बिजली भर दे वह छंद नहीं,
है कलम बँधी स्वच्छंद नहीं
फिर हमें बताए कौन हंत,
वीरों का कैसा हो बसंत।

सिंहासन पर विदाई

● मृदुला सिन्हा

पृथ्वी पर आने से पूर्व शिशु अन्यान्य संबंधों की डोर में बँध जाता है। बचपन से लेकर प्रौढ़ावस्था तक विभिन्न पारिवारिक-सामाजिक जिम्मेदारियों को निभाते हुए अनेक रिश्तों में बँधता जाता है। कभी-कभी तो खून के रिश्तेदारों से अधिक घनिष्ठ रिश्ते उनसे बन जाते हैं, जो उनके अपने बनाए होते हैं। अधिकांश व्यक्ति कहते सुने जाते हैं, 'ये मेरे मुँहबोले भाई हैं। अपने सगे भाई से भी बढ़कर गाढ़ा रिश्ता है इनके साथ।'

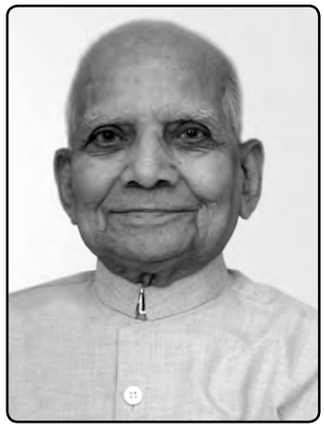

हम सबको अनेक सुअवसर मिलते रहते हैं, जब ऐसे रिश्तों में बँधे दो व्यक्तियों को आपस में मिलते, बातचीत करते देखते हैं। यद्यपि उन दोनों से हमारा कोई रिश्ता नहीं होता, हम उनके भावनात्मक मिलन सरोवर में डुबकी लगाकर अघा जाते हैं। यह संसार ऐसे ही संबंध-सूत्रों से बँधा है। तभी तो अभावग्रस्त रहने पर भी दुनिया में जीने की इच्छा प्रबल रहती है।

गोवा के राज्यपाल पद का निश्चित किया गया पाँच वर्षीय कार्यकाल पूर्ण कर दो नवंबर को दिल्ली लौट आई। अपेक्षित था प्रभात कुमार (श्यामसुंदरजी के द्वितीय पुत्र) द्वारा पूछताछ करना, ''बुआजी! दिल्ली आ गईं? मैं कल ही आता हूँ आपसे मिलने।''

''आप आ जाएँ। लेकिन मैं भी आपके घर पर आना चाहती हूँ। भाई साहब से मिले बहुत दिन हो गए। वे स्वस्थ तो हैं न!'' मैंने पूछा।

''हाँ। कल ही घर लौटे हैं। इन दिनों बार-बार अस्पताल जाना पड़ता है। आप दो-चार दिनों में अपने दिल्ली आवास में रच-बस जाएँ, फिर घर या दफ्तर (प्रभात प्रकाशन) में ही बुला लेंगे।''

दो महीने के बीच कई बार प्रभात कुमार से बातचीत हुई। कहीं किसी कार्यक्रम में या फिर मोबाइल पर बात करते हुए हर बार मैंने दुहराया, ''भाई साहब से मिलना है न!'' आज-कल करते-करते दो माह बीत गए। दरअसल मिलना लिखा ही नहीं था। तभी तो उस दिन (२८ दिसंबर, २०१९) मोबाइल पर संदेश आया, ''बाबूजी का शरीर शांत हो गया...।'' समय पर किसका नियंत्रण चलता है। मृत्यु पर भी नहीं। जब और जिस विधि जाना है, चला जाता है व्यक्ति, न जाने कितनों के साथ कितनी कहानियाँ छोड़ जाता है। कड़कड़ाती ठंड में भी यह समाचार पुरानी दिल्ली, नई दिल्ली ही नहीं, मथुरा से लेकर अन्य शहरों ही नहीं, विदेशों में भी फैल गया, ''प्रभात प्रकाशन के संस्थापक श्री श्यामसुंदरजी का शरीर शांत हो गया।''

उनके अंतरंगों को यह समाचार पचाना कठिन हो रहा था। दरअसल जैसा मैंने देखा, सुना और अनुभव किया, श्यामसुंदरजी मात्र पुस्तकें नहीं छापते थे। उन्होंने लेखक-लेखिकाएँ गढ़े भी। ढेर सारे मित्र और प्रशंसक बनाए। किसी और काम से उनसे मिलने आए सामने बैठे व्यक्ति से बात करते हुए उसकी संवेदनाएँ उनके हाथ लग जाती थीं। वे उस व्यक्ति (स्त्री-पुरुष) से विस्तार में बात करते, अपने द्वारा नवोदित लेखक-लेखिकाओं की पुस्तकें छापने की कथा सुनाकर कहते, ''आप भी लिख सकते हो।''

''नहीं बाबूजी! नहीं भाई साहब! मैं कहाँ। मैं नहीं लिख सकता।''

श्यामसुंदरजी कहते, ''मैं आपसे अधिक लेखक-लेखिकाओं को जानता हूँ। प्रारंभ में आप ही की तरह नकारते रहे, उनकी एक-दो पुस्तकें मैंने छाप दीं। अब देखो, दनादन चलती है उनकी लेखनी। मुझे भी नहीं स्मरण, उनकी कितनी पुस्तकें छप गईं?''

एक बात और, वे नवोदित साहित्यकारों को सीख भी देते थे। ''आप पुस्तकें छपवाने की जल्दीबाजी न करवाएँ। एक बार, दो बार या बीस बार स्वयं पढ़िए। स्वयं पूर्णरूपेण संतुष्ट होकर ही प्रकाशक को पुस्तकें दें।''

सच कहते थे भाई साहब। मेरे साथ भी ऐसा ही हुआ। १९७८ की बात है। एक बुजुर्ग राजनीतिज्ञ साहित्यकार मुझे जानते थे। मैं १६ अशोक रोड पर रहती थी। वे मेरे पिताजी के हमउम्र थे। उन्होंने जब मेरे द्वारा मात्र चार-पाँच कहानियाँ लिखी गईं और पत्रिका में उनके छपने की बात सुनी, बड़े प्रसन्न हो गए। चार-पाँच दिनों बाद ही श्यामसुंदरजी को साथ लेकर १६ अशोक रोड हम दोनों से मिलने पहुँचे। उन्होंने उनका परिचय करवाया, बहुत ही विख्यात है प्रभात प्रकाशन। चावड़ी

बाजार की सँकरी गलियों को पार करते समय कोई भी प्रभात प्रकाशन का पता बता देगा। आप घुमावदार सीढ़ियाँ चढ़ने से घबड़ाएँ नहीं, क्योंकि सीढ़ियों को पार कर लेने पर एक क्षीणकाय व्यक्ति बंद-गले का कोट (मौसम के अनुसार सूती या ऊनी) पहने कुरसी पर बैठे मिलेंगे। हृदय की विशालता से आप शीघ्र परिचित हो जाएँगे। नई सड़क की विशेष नमकीन, कचौड़ियाँ और मिठाइयाँ भी खिलाएँगे और यदि आपने साहित्यकार बनने की ठान ली है तो आपके संकल्प की गहराई को मापकर वे भी आपको साहित्यकार बनाने का निश्चय कर लेंगे।

वे बुजुर्ग हम दोनों को संबोधित कर रहे थे। उनके चेहरे पर मुसकराहट थी और श्यामसुंदरजी थोड़े गंभीर मुद्रा में बैठे उनके द्वारा दिए अपने परिचय को नकार तो नहीं रहे थे, उन्हें थोड़ी अतिशयोक्ति अवश्य लग रही थी। उनके द्वारा अपनी ढेर सारी प्रशंसा सुन उसकी लड़ी बेरहमी से तोड़ते हुए मुझे संबोधित कर बोले, ''आप पुस्तक छपने की चिंता न करें। मन लगाकर लिखें। मैं आपकी पुस्तक अवश्य छापूँगा, लेकिन आप स्वयं अपनी कहानियों से संतुष्ट हो जाएँ तो ?''

थोड़े समय के मिलन में मैं उनकी भाषा, हाव-भाव और व्यवहार से बहुत प्रभावित हुई। जीवन में पहले प्रकाशक से मिली थी। प्रकाशक के बारे में एक सकारात्मक धारणा बन गई। मैं कहानियाँ लिखती गई। १९७८ के पूरा होते-होते बीस कहानियाँ लिखी जा चुकी थीं।

डरते-सहमते पांडुलिपि उन्हें भिजवा दी। उन्होंने अपने प्रकाशन में आने का निमंत्रण भेजा। दिल्ली मेरे लिए अपरिचित ही थी। १९७७ में मैं अपने केंद्र में मंत्री पति की कोठी में रहने आई थी। नई सड़क स्थित चावड़ी बाजार में प्रभात प्रकाशन में जाना कठिनतर था। फिर भी मैं पहुँच गई। कुछ विशेष खाने के लिए मिला और ढेर सारी पुस्तकें देखने को और घर ले आने को भी। यह मधुर आश्वासन भी कि वे मेरा कहानी-संग्रह छापेंगे। कहानी-संग्रह 'साक्षात्कार' शीर्षक से छप भी गया। मेरे आनंद का ठिकाना नहीं। मेरी पुस्तक छप गई थी।

अपने जाननेवालों को भेंट करती नहीं थक रही थी। मुझे किसी ने कहा, ''प्रकाशक लेखक को दस पुस्तकों से अधिक नहीं देता।''

मैं मन-ही-मन अपने जाननेवालों की सूची बना रही थी, जिन्हें पुस्तक देना चाहती थी। उनसे दस से अधिक पुस्तकें माँगने की हिम्मत नहीं हुई। उन्होंने स्वयं कहा, ''आप अपने ढेर सारे मित्रों को यह पुस्तक देना चाहती होंगी। चिंता मत कीजिए। खूब बाँटिए। पुस्तक तो बाँटने के लिए छपती ही है।''

मुझे तसल्ली हुई। अधिक प्रसन्नता तो तब हुई जब प्रभात प्रकाशन से श्यामसुंदरजी के हस्ताक्षर से मेरी पहली पुस्तक के मानदेय का चेक भी आया। बाद में चलकर मेरे सुनने में आया कि लेखक-लेखिकाएँ स्वयं पुस्तक की छपाई की राशि प्रकाशक को देते हैं।

पुस्तक छपने के पहले मैंने श्यामसुंदरजी से कहा, ''इस पुस्तक की भूमिका किसी साहित्यकार से लिखवानी होगी ?''

वे कुछ देर तक सोच की मुद्रा में बैठे रहे। बोले, ''नवोदित साहित्यकार को किसी बड़े लेखक या लेखिका से भी भूमिका लिखवाने की जरूरत नहीं होनी चाहिए। क्या पता भविष्य में इस पुस्तक की लेखिका स्वयं उस साहित्यकार से बड़ी साहित्यकार हो जाए, जिसने भूमिका लिखी।'' फिर सोचने की मेरी बारी थी।

बिना भूमिका के पुस्तक छपी। न जाने बातों-बातों में लेखन के क्षेत्र के कितने मूल्यों से मैं अवगत हो गई। श्यामसुंदरजी मेरे बड़े भाई की भूमिका में आ गए। मुझे स्मरण नहीं, कब किस मोड़ पर भाई मानकर मैं उन्हें राखी बाँधने लगी।

एक-दो वर्ष ही मुझे राखी बाँधने के लिए फोन करना पड़ा। बाद में तो स्वयं भाई साहब और तीनों भतीजे पवन, प्रभात और पीयूष मुझसे राखी बँधवाने के लिए घर, प्रकाशन दफ्तर या मेरे घर में अपनी सूनी कलाइयाँ निरखते बैठे रहते। अत्यंत हुलास के साथ एक लेखिका नहीं, एक बहन, बुआ का स्वागत होता।

रिश्ते कहाँ से कहाँ बँध जाते हैं। साहित्य लेखन के क्षेत्र में कितने मूल्य हो सकते हैं, मेरे प्रकाशक भाई ने सिखाया। मेरे द्वारा चयनित उपन्यास के विषयों से भी प्रसन्न। सहज-सरल संबंध हो गया साहित्यकार और प्रकाशक में। प्रकाशन के क्षेत्र में अपने पिता से लिये सारे संस्कार के साथ तीनों भाई आ गए। धीरे-धीरे व्यापार इन तीनों ने सँभाल लिया। भाई साहब प्रकाशन कार्यालय आना नहीं छोड़ते। वहीं उन्हें जीवन-शक्ति मिलती थी। घर का परिवेश भी प्यार में ही पगा था। दोनों बेटियाँ, तीनों सुसंस्कृत बहुएँ और एक पोता, दो नन्हीं पोतियाँ, हँसता-खेलता परिवार। घर और दफ्तर, दोनों स्थान पर प्रेम का आँगन ही था। देश-विदेश के साहित्यकार आते, वहाँ प्रेम की छाँव में बैठते। पिता और तीनों पुत्रों के प्रेमरस में पगे स्वागत से अभिभूत होते।

प्रकाशन क्षेत्र के लिए बड़ा आदर्श छोड़ा है श्यामसुंदरजी ने।

आया है सो जाएगा, राजा रंक फकीर।
कोई सिंहासन चढ़ चले, कोई बँधे जंजीर॥

सिंहासन पर ही गए हैं श्यामसुंदरजी। अपनों के स्नेहभाजक बने रहे। स्नेहियों की संख्या इतनी अधिक कि सिंहासन ही बना लिया। भाई साहब को श्रद्धांजलि।

सुप्रसिद्ध कथाकार। गोवा की पूर्व राज्यपाल। कहानी और उपन्यासों के अलावा मृदुलाजी बदलते भारतीय परिवेश में महिलाओं के समक्ष उपस्थित सामाजिक, आर्थिक व मनोवैज्ञानिक समस्याओं पर निरंतर लिखती रही हैं। अनेक रचनाएँ मराठी और अंग्रेजी में भी अनूदित। 'पाँचवाँ स्तंभ' मासिक का संपादन किया।

साअ

पी.टी.-६२/२०,
कालकाजी एक्सटेंशन,
नई दिल्ली-११००१९
snmridula@gmail.com

बिरसी माँ

● ऋता शुक्ल

श्याम वर्ण पर्वत की तलहटी में बसा टोला। बंगाल के सुरुचिपूर्ण बाबू मोशायों के पुश्तैनी आवासों से भरा यह पठारी भू-भाग। रामकृष्ण परमहंस का स्मृति-दीप जलाता गैरिक वस्त्रधारी संन्यासियों का आश्रम स्थल।

आसपास तथा दूरदराज के गाँवों से आकर प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे युवाओं का समवेत स्वर में वैदिक मंत्र-गायन। ब्रह्म मुहूर्त में यह टोली सुललित सुर में गाती हुई छात्रावास से मंदिर तक का पथ पार करती हुई मेरे घर के निकट से गुजरती है। 'रामकृष्ण परम कृपा ही केवलम्' और मेरी आँखों में भोर के तारों की झिलमिलाहट का अनुमान उभरने लगता है। चार बज गए। उठो, नित्य के जीवन-युद्ध में संवृत हो जाओ।

बिरसी दीदी मेरी सेविका नहीं, अभिभाविका है। आश्रम के किशोर पूजन-अर्चन के बाद जब छात्रावास लौट रहे होते हैं, तब वह धीरे से अवतरित होती है। "दीदीजी, नहाय-धोय चुके तो हम बरतन-बासन खँगार देवें, कपड़ा-लत्ता धो लें। आज अबेर हो गई। अबहीं दूधो लाने जाना है।"

पचपन पार पहुँच चुकी पाकशाला की मेरी संगिनी! धँसी हुई आँखों में हर घड़ी हिलोर लेती ममता की चमक। बिरसी दीदी हँसती है तो मुँह पर आँचल रख लेती है। देर तक हिचकोले खाती उसकी देह माटी पर बिखर जाती है।

एक बार मेरी नातिन वैष्णवी ने उसका शृंगार करना चाहा था। "बिरसी नानी, तुम ठीक से बैठो, मैं तुम्हारा जूड़ा बना देती हूँ। तुम्हें पाउडर और लिपस्टिक भी लगाना होगा।···अरे, क्या करती हो, हिलो मत, नहीं तो पूरा मेकअप खराब हो जाएगा।"

साज-बाज के बाद बिरसी का पहनावा दुरुस्त किया गया था। लाल पाड़ की साड़ी और हवा में लहराता हुआ लंबा आँचल। आईने में अपना चेहरा देखकर बिरसी लाज से दोहरी हो गई थी—"हाय रे मोर बप्पा, ई कइसन रूप बना देलक रे नतिनिया, मोके सरम लागे ला।"

वैष्णवी ताली बजाकर हँस पड़ी थी—"नानी, जल्दी आकर देखो, बिरसी नानी कितनी सुंदर लग रही है न!"

मैं बिरसी की लाज भरी आँखों से झाँकता उसका अंतर्मन पढ़ने की कोशिश करने लगी थी—'गहरा साँवला रंग, अधपके बालों की बेतरतीब

सुप्रसिद्ध कथाकार। 'अरुंधती', 'दंश', 'अग्निपर्व', 'समाधान', 'बाँधो न नाव इस ठाँव', 'शेषगाथा', 'कनिष्ठा उँगली का पाप', 'कितने जनम वैदेही', 'कासों कहों मैं दरदिया' तथा 'मानुस तन' कृतियाँ चर्चित। 'क्रौंचवध तथा अन्य कहानियाँ' कृति भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा पुरस्कृत। इसके अलावा लोकभूषण सम्मान आदि विशिष्ट पुरस्कारों से सम्मानित।

लटें आपस में गुँथी हुई। कान में गिलट के छोटे-छोटे कनपासे, हाथों में गिलट के कड़े। छोटी-छोटी आँखों में न जाने किस जन्म का निरगुनिया भाव।'

मुंडा जनजाति की अत्यंत सामान्य महिला बिरसी मुंडा। चाईबासा के टुँगरी मुहल्ले में पहली बार देखा था उसे। माथे पर जल से भरा घड़ा, हाथ में बालटी, पीठ पर लाल गमछे में बँधा बालक और तेज-तेज डग भरती बिरसी।

मुझे अपनी बच्ची की देखभाल के लिए एक अनुभवी महिला की आवश्यकता थी। बिरसी ने घड़ा नीचे रखते हुए टूटी-फूटी हिंदी बोलने की कोशिश की थी—"दीदीजी, दू सौ रुपइया और दूनो जून का भात··· मंजूर होए तो···"

उस इलाके में पहले से रह रही एक शिक्षिका ने खबरदार किया था—इसका अपना बच्चा भी साथ रहेगा। यह दो-दो बच्चों को किस तरह सँभालेगी। मेरे मन में थोड़ी देर के लिए पाप कुलबुलाने लगा था—'सच ही तो, कहीं ऐसा न हो कि मैं घर से निकलूँ और मेरे पीठ पीछे···।'

बिरसी का चेहरा तुरंत तोड़े हुए बथुआ-साग की पत्तियों सा नरम था—"का सोच रही हो दीदीजी, तीन-तीन बच्चे हमने अपने इन्हीं हाथों से पाले हैं। काहे आगा-पीछा सोच रही हो, ए बहिन···!"

बिरसी ने अपने ममत्व का अकूत अंश शालीना मोना के हवाले किया था—"देखो तो इस बेटी छउआ को, केस छिटकाए बवंडर की तरह नाचती फिरती है। चलो, घर चलकर दूध-रोटी खा लो, नहीं तो हमको भी अबेर हो जाएगी।" और मेना का वह ठुनकना—"बिरसी मौसी, तुम पहले अपना वह गीत गाकर सुनाओ!" और बिरसी का

आँचल से मुँह ढककर खिख-खिख हँसना, मोना का ठुनकना, मान-मनौबल और दूसरे ही क्षण बिरसी के कंठ से फूटता वह टहकार गीत—

नेते दुड़ नेते जिलि मिलि अ
दिसु मेदो लेसे-लेसे अ
नेते दुड़ नेते जिलि मिलि अ
गमए दो जिरिपि जलडु।

अर्थात् यहाँ की धूल-माटी कैसी अनोखी, चमक भरी है, यह देश कितना मनभावन है, यहाँ की माटी सुंदर-चमकीली है, यह इलाका बड़ा प्यारा है।

अपनी भाषा में जब भी बिरसी यह गीत गाती, वृंत पर झूलते वन फूलों की मादक गंध से मेरे घर का कोना-कोना महमह कर उठता। बिरसी ने मेरे साथ बड़े सहज भाव से बहनापा जोड़ लिया था। वह मेरे परिवार का अभिन्न अंग बन गई थी। कभी-कभी अपने अतीत की प्रतिध्वनि सुनती पथरा जाती, तब मोना उसे झकझोरकर चैतन्य करती—"बिसरी मौसी, कहाँ खो गईं तुम? हम कब से तुम्हें पुकार रहे हैं। हमारे बालों की ऊँची चोटी गूँथ दो। तुम सुनती नहीं न, अब तुम्हें सजा मिलेगी, तुम्हें हमारे साथ करम-गीत गाना होगा और नाचना भी होगा।"

बिरसी टालते की कोशिश करती—"कहा, न ढोल है न माँदर, न बाँसुरी, न संगी-साथी। गीत कौन गाएगा? हमारे साथ कमर में हाथ डालकर कौन नाचेगा?"

शालीना का उत्तर तैयार रहता—"ढोल-माँदर कुछ भी नहीं चाहिए। तुम गाओ और नाचो, हम भी तुम्हारे साथ-साथ नाचेंगे। ठहरो, जरा तैयार तो हो लें।" और बिरसी के गले से फूटता वह टहकार सुर—

चिकन: ते चिकजन
पाछे धर्म हानिजन
अज्यां सिदजन
ग्रहेर पीरा होगकन
फण्ड मृत्युजन
चिकन् इपिल् तुरकन।

अर्थात् हे मेरे प्रभु, क्या से क्या होता जा रहा है? संभवत: कहीं कोई धर्म की हानि तो नहीं हो रही, क्योंकि मुझे ही पहला फल भोगना पड़ रहा है। किसी ग्रह की पीड़ा भुगतनी पड़ रही है। लोग मर रहे हैं। यह कौन सा अशुभ तारा लगा हुआ है।

गीत गाती बिरसी अनायास उदास हो जाती। बिनत पाडु। झरने का एकल स्रोत आँसुओं का उन्माद बनकर उसकी आँखों से उमड़ने लगता और जमशेदपुर जानेवाली चौड़ी कंकरीट की सड़क को मौन निहारती हुई वह अनायास आक्रोश से भर उठती थी।

कई वर्षों के बाद अपनापन गहरा हो जाने पर एक दिन उसने बताया था—"यह दईमारी सड़क मेरे आदमी को साबुत लील गई थी, दीदीजी! एतबा का बाप यहीं राजमिस्त्री का काम करता था। सुगना पाहन ने तो पहले ही मनाही कर दी थी—अपने गाँव में काम की कवनो कमी है भला? मत जाना दूसर गाँव।"

बिरसी अपने पति के करुण अंत को कभी नहीं भुला पाई थी—"मुझसे कहता था कि पक्की सड़क बन जाने दे, तुझे टाटा नगर घुमाऊँगा। ठेकेदार ढेर सारे पैसे देगा। तुम्हारे लिए चिकनी साड़ी, एतवा के लिए पाँचों पोशाक, अपने लिए नयकी कमीज।

"ठेकेदार ने ऐन वक्त पर पाली बदल दी थी। लगातार साल भर की हाड़तोड़ मेहनत और मजूरी, एक छदाम नहीं। चमाचम नई सड़क का उद्घाटन हुआ। लाल फीता कटा, मिठाई बँटी, सुकरा के हाथ में लड्डू का दोना थमाकर ठेकेदार ने छुट्टी पाई। मंतरी-संतरी सब आए, फोटो खिंचवाकर सरसराते निकल गए थे। सुकरा ने हिसाब माँगा तो कागज की एक परची थमा दी गई थी—देखो, तुमने अँगूठे की टीप लगाई है। पूरे पाँच हजार रुपए ले चुके हो। तुम्हारा हिसाब तो पहले ही पूरा हो चुका है।

"सुकरा के तलवे का खून दिमाग पर चढ़कर उफनने लगा था—बँसुली की तेज धार और खून से तर-बतर ठेकेदार की ठंडी होती चली जा रही देह। खून चूसनेवाला बाज माटी पर भहराकर गिर पड़ा था।"

बिरसी हहास बाँधकर दौड़ी थी, "यह क्या किया तुमने? मेरे पेट में पल रहे बच्चे के बारे में नहीं सोचा? तुम डामिल फाँसी चढ़ जाओगे, हमारा क्या होगा?"

सीखचोंवाली बख्तरबंद गाड़ी में बैठने लगा था तो हथकड़ियों से जकड़ी अपनी दाहिनी मुट्ठी भींचकर सुकरा ने बिरसी को प्रबोध दिया था—"माटी का अपना घर, पत्तों का छाजन, वहीं जनम लेगा हमारा राजकुँवर···बिरसी, उसे खूब पढ़ाना-लिखाना, बड़ा मनई बनाना।"

मेरे साथ वनभोज के लिए बिनतपांग गई थी तो बिरसी के मन-प्राण उत्कंठित थे। दूर से अत्यंत मनमोहक दीखते, आसमान से बातें करते साँवले पहाड़ों से घिरा वन प्रांतर! बिरसी का उछाह देखने लायक था—"दीदीजी, सिंगबोंगा भगवान् ने अपनी जादुई उँगली घुमाई और ये हरे-भरे गाछ-बिरिछ, सुंदर पशु-पंछी, बलखाती पहाड़ी-नदियाँ, नटखट छउआ पूता जैसे झरने, यह सब उसी परभू की सिरजना है।"

मुझे चिंता हो रही थी—"बिरसी, एतवा और शालीना, दोनों बच्चे झरने की ओर जा रहे हैं। रोकना उन्हें! आगे पानी कहीं गहरा न हो!"

बिरसी के दूधिया दाँतों में बिनतपांग झरने से छिटकती बूँदोंवाली आब थी—"अरे, कुच्छो नइ होगा। मऊज-मस्ती करने दीजिए छउआ मन को।" बिरसी कब मेरी अभिभाविका, मेरी गुरु बन बैठी, पता ही नहीं चला। वहाँ से घर लौटी तो उस पठारी भू-भाग के प्रति एक सहज सम्मोहन साथ था। चाईबासा से कुछ किलोमीटर की दूरी पर सीधे-सतर

खड़े प्रस्तर-खंडों की बेजोड़ शृंखला! विधाता ने बड़ी फुरसत में बनाया होगा ऐसे सुरम्य स्थलों को!

किसी प्रस्तर-खंड की आकृति रूठी हुई प्रिया सी और कोई प्रलंब भुजाओंवाले प्रिय सा मानभंजक भंगिमा में झुका हुआ। किसी पाषाण शिला का आकार ऐसा, जैसे किसी बावरे यती ने हमेशा के लिए धूनी रमा रखी हो। और यह शिशु प्रताप कितना सुंदर। दोनों ओर दो विराट् शिलाखंड और बीच में नन्हा जल-स्रोत। चाँदी की-सी चमक लिये उछलती जलधारा और नीचे बड़े से प्रस्तर खंड का आसन, जिसपर बैठे तो धार आपको दुलारती हुई भिगो देगी। आपका मन होगा, यहीं बैठे रहें, यहाँ से उठें नहीं।

महानगर से आई मेरी सखी सुगंधा विभोर थी—"बिरसी दीदी, आपके गाँव के इस प्राकृतिक स्नान-गृह के सामने नई-से-नई साज-सज्जावाले बनावटी फौवारे विफल हैं।"

उसने जिद की थी—"थोड़ी देर और···!"

फिर तो उन्हीं पक्के मकानों की गिरफ्त में कच्ची जिंदगियों का भार ढोने के लिए जाना होगा। प्रकृति की इस सुरम्य गोद में कौन जाने, फिर कभी लौटना हो या नहीं।

कुछ पलों की उस अनोखी रियासत का सुख सचमुच अनमोल था। बिरसी अपने घने-काले बालों को लकड़ी के मोटे कंघे से सुलझाती शालीना और एतवा को लोककथा सुनाने में मगन थी—

"सिंगि आद् चंडु: चिमतङ···"

"सूर्य और चंद्रमा अपनी-अपनी जगह हँसी खुशी रहते थे। उनकी ढेर सारी स्त्रियाँ व बच्चे थे। एक दिन चंद्रमा सूरज से बोला, 'तुम्हारे घर मेहमानी पर आना चाहता हूँ।' सूरज ने उसका खूब सत्कार किया। फिर सूरज चंद्रमा के घर गया तो चंद्रमा ने उसे दुत्कार दिया। तब सूरज को गुस्सा आया। उसने एक बड़ा सा डंडा लिया और चंद्रमा को मारने के लिए दौड़ाने लगा। चंद्रमा पूरे परिवार के साथ पहाड़ के पीछे छिप गया। दिन और रात के बनने की यही कहानी है।"

बिरसी का सामान्य ज्ञान अद्भुत था। शालीना के लिए उसकी ममता देखकर मैं आश्वस्त थी। हमारे घर की ऊपरी मंजिल की खिड़की से लुपुंगुटू की पर्वत श्रेणी स्पष्ट दिखाई पड़ती थी। रात की निस्तब्धता में वे श्याम शिखर एकदम निकट प्रतीत होते थे। शाल, महुआ, सखुआ, करंज, जामुन, बड़हल, पाकड़ की सूखी पत्तियाँ बटोरते, पीले पड़े महुआ की मीठी सौगात परसती माटी का अभिवादन करते भाई-बंद, पहाड़ों की छाती पर जल रही अग्नि-रेखा सी सुलगती हुई जिंदगी जीने के बावजूद कितने सुखी, कितने निर्द्वंद्व!

बिरसी बताया करती थी, पहाड़ों पर छोटी-छोटी झोंपड़ियाँ बनाकर रहनेवाले लोग रात भर सूखी पत्तियाँ जलाकर रोशनी किया करते। कोई जंगली जीव-जंतु न आ जाए इस भय से, अपने बाल-बुतरु की सुरक्षा के लिहाज से। दूर से देखने पर वह अग्निवलय ऐसा प्रतीत होता, जैसे वनस्पति ने लाल पलाश के फूलों का हार गूँथकर पर्वतों का अभिनंदन किया हो।

शालीना की उत्कंठा का ओर-छोर नहीं था, "बिरसी मौसी, तुम्हारा जूड़ा ऐसा तिरछा क्यों है? तुम्हारे पैरों में इतनी मोटी चूड़ी, इसे क्या कहते हैं? तुम्हारी दोनों बाँहों में काला-काला दाग कैसा है? अच्छा मौसी, बताओ तो, तुम हँसती हो तो दोनों हाथों से अपना मुँह क्यों छिपा लेती हो?"

बिरसी हँस-हँसकर निहाल हो जाती···"लो, सुन लो इस बेटी-छउवा की बात, सारा गियान परभू ने इसी की झोली में डाल दिया हो जैसे! अच्छा ठहर, एक-एक करके समझाती हूँ तुझे!"

और बिरसी एक-एक करके गिनाना शुरू करती थी, "यह मूँगा माला है और यह हँसली, यह जूड़ा में खोंसने वाला कंघा और यह गोदना···।"

आज शालीना एक नृत्यांगना हो गई है। मैं बिरसी को उसकी प्रथम नृत्यगुरु के रूप में याद करती हूँ। बिटिया के ब्याह का प्रकरण सामने आया था, तब हमारी विकलता भाँपकर बिरसी एकबारगी अन्यमनस्क हो उठी थी।

"दीदीजी, तुम्हारी और बाबू की चिंता-फिकिर देखकर हमको अजीब लग रहा है। हमारे यहाँ तो बेटी-छउवा को माँगकर ले जाने का रिवाज है। कीया भर सेनुर के लिए बेटी के बाप को कहाँ-कहाँ भटकना पड़ता है। हम मुंडा लोग, हमारी धिया का हाथ माँगने लड़केवाले आते हैं। बेटी का रूप-गुन देखकर उस पर रीझ जाते हैं। फिर दहेज की रकम तय होती है। पाहन आता है, उसकी मौजूदगी में सब बातचीत तय होती है और बेटी बियाह दी जाती है। तुम्हारे समाज में तो दीदी, जंगल न्याव चलता है साईत! जंगल में छोटे बिरिछ को खा-दबाकर बड़का बिरिछ पनपता है। तुम बेटीवाली हो तो तुम्हारा धन हड़पने के लिए सभे तैयार बैठे हैं। माने बेटी दो और दान-दहेज भी। पढ़ा-लिखा समाज और ऐसा जंगलराज!"

समड़ोम् लेक गेको जोगओ लेद् मेअ···
अर्थात् तुम्हें सोने की तरह जोगाकर रखा, अरी मेरी मइन (बिटिया), माटी के मोल कहीं भी डाल देने के लिए तो नहीं न!

बिरसी ने शालीना के लिए एक तसवीर का बड़े मनोयोग से चयन किया था। यह लड़का सबसे सुंदर है, रोब-दाबवाला। दीदी, तुम यहीं पर बात आगे बढ़ाओ!

मैंने बिरसी को बताया था, "लड़का और उसके परिवार के लोग शालीना को देखने के लिए हमारे घर आना चाहते हैं।"

बिरसी की खीझ देखने लायक थी। "यह कौन सा रिवाज हुआ भला! वे लोग पसंद करेंगे, तब बात आगे बढ़ेगी! हमारे यहाँ तो ऐसा नहीं होता। लड़का-लड़की एक-दूसरे को पसंद करते हैं, साथ-साथ जीवन बिताने का निर्णय लेते हैं और तब भगवान् सिंगबोंगा के आदेश से पाहन सारे शुभ कारज संपन्न करवाता है।"

पलक झपकते वह वज्रपात हुआ था। बिरसी का एकमात्र पुत्र एतवा स्कूल से घर लौटते समय हादसे का शिकार हो गया था। नशे में धुत्त मोटर साइकिल सवार ने दीपक एतवा मुंडा को पीछे से ठोकर मारी

थी। साइकिल समेत वह सड़क की बाईं तरफवाले गड्ढे में गिर गया था। बिरसी हाट गई थी। वहीं खबर मिली और वह बदहवास भागती हुई सदर अस्पताल पहुँची थी। उसके पहुँचने के पूर्व सबकुछ खत्म हो चुका था।

शोक-संतप्त बिरसी पत्थर की मूरत बनकर रह गई थी। उसके होंठों पर थिरकते गीत हमेशा के लिए मौन हो गए थे। उसके पैरों की झाँझर अवसाद में डूब गई थी। उसकी भूख-प्यास उसके दुलरुवा के साथ चली गई थी। शालीना ने अपना सबसे प्यारा भाई-सखा खो दिया था। वह बिरसी के कमरे में जाती, उसका माथा सहलाती, घंटों बैठी रहती···"बिरसी मौसी, उठो न, कुछ तो खा लो···ऐसे तो तुम बीमार पड़ जाओगी।

बिरसी फफककर रो पड़ती, "एतवा घर से भूखा-प्यासा ही चला गया था। बोलकर गया था कि भात बनाकर रखना। लौटते समय दीदी के लिए और तुम्हारे लिए आइसक्रीम ले आऊँगा। हमें का पता था कि वह कभी नहीं लौटेगा।" मृतवत्सा गौ जैसी बिरसी की स्थिति।

"उसे भूख लगी होगी न, दीदीजी, कितनी गहरी रात हो गई है, उसे अकेले कितना डर लगता होगा न! मेरे बिना उसे नींद नहीं आती। मेरा एतवा मुझे पुकार रहा है।"

बिरसी लगातार अस्वस्थ रहने लगी थी। रोटी-चाय देखते ही मुँह फेर लेती। "नहीं दीदीजी, एतवा की कसम, तनिको भूख नहीं है।"

मैं उसे समझाने की कोशिश करती, "अपने वश में कुछ भी नहीं है बिरसी, तुम्हारे बच्चे की इतनी ही आयु तय थी। यहीं तो पूरा संसार बेबस है।"

बिरसी की कसक अंतहीन थी—"पहले एतवा का बाप गया, पर हमने अपनी संतान को देखकर छाती पत्थर की बनाई। हमारे गाँववाले कहते रहे कि दूसरा बियाह कर ले बिरसी··· बुतरु भी पोसा जाएगा और तेरी जिनगी भी सुधर जाएगी।···हमको अपने एतवा की फिकिर थी—ना, ना, भगवान् ने एक संतान दी है। सुकरा की एकमात्र निशानी हमारे पास है। यह बड़ा हो जाए तो इसी के सहारे जिनगी काट लेंगे और क्या?"

शालीना ने एक नृत्य-विद्यालय खोलने की योजना बनाई थी। पास-पड़ोस की तीन-चार बच्चियाँ और उसकी नन्हीं बिटिया वैष्णवी।

बिरसी पहली बार उत्साह से भरी दिखाई पड़ी थी—"मोना बिटिया का स्कूल कब से चालू होगा, दीदीजी?"

"तुम प्रार्थना करो बिरसी, दामादजी की बदली यहाँ हो जाए तो घर में ही विद्यालय खोलने का उसका विचार है।"

"यह तो बहुते अच्छा रहेगा दीदीजी, छह-सात साल हो गए, बिटिया घर नहीं आई। नातिन गोदी में थी, तभी तो दूर देश बदली चले गए थे तीनों जने। हम तो दिन-रात ईसुर महादेव से मनाते हैं—बचवन सभे जल्दी घर वापस आ जावें।"

कुछ पंद्रह दिनों के बाद शालीना का फोन आया था कि इनका ट्रांसफर राँची हो गया है। सामान पहले पहुँच जाएगा। हम लोग एक सप्ताह बाद आएँगे।

बिरसी के चहरे पर प्रसन्नता की हलकी सी रेखा थी। "दूनो बचवन आएँगे तो घर-दुआर चहकेगा। बरिस भर से ऊपर हो गया, छोटकू तो अब चलने-फिरने लगा होगा! और वैष्णवी! ईसकूल जाने लगी है न!"

मैंने उसे धीरे से बताया था, "उन लोगों को धुर्वा में रहना होगा, बिरसी! सरकारी क्वार्टर में।"

"अइसा काहे, दीदीजी?" बिरसी का चेहरा पलक झपकते मुरझा गया था।

"इसलिए कि दामादजी की ड्यूटी धुर्वा में ही है। रात-बिरात कब बुलाहट हो जाए!"

"तब का फैदा? हमने सोचा था कि···"

"तुम उदास मत हो बिरसी, बच्चे हर शाम हमारे घर आएँगे। शालीना ने यहाँ नृत्य-कक्षाएँ चलाने का विचार किया है। वह साँझ के तीन-चार घंटे रोजाना यहीं बिताएगी।"

मोराबादी मुहल्ले की पाँच छोटी बच्चियों को लेकर नृत्यशाला प्रारंभ हुई थी। 'ता थेई, तत् थेई' के साथ बैठकखाना गुलजार हो उठा था। वैष्णवी ठुकती हुई बिरसी की गोद में बिराजती—बिरसी नानी, घुँघरू बाँध दीजिए।

"आजा मोरी बिटिया, कितनी मेहनत कराती है तेरी माँ न! घंटे भर हाथ बाँधे पैर पटकवाती रहती है। तेरे हाथ-गोड़ नहीं पिराते वैष्णवी?"

बच्ची खूब हँसती—"अरे, नहीं नानी, माँ कहती है, ऐसे ही सीखना होता है, खूब मेहनत करनी होती है। और पाँव दुखेंगे तो आप हैं न हमारी मालिश करने के लिए।"

बिरसी का मन लगने लगा था। साँझ से पहले सारे काम निपटाकर बच्चों के आने की आतुर प्रतीक्षा करती, मुख्य द्वार पर खड़ी हो जाती।

"आ गए बुतरु लोग···। चलो, पहिले दूध पी लो।"

बिरसी की कोठरी में एतवा की स्कूल के दिनों की एक धुँधली सी तसवीर थी। हर रात सोने से पहले अपने बिछुड़े हुए बालक के चित्र को एकटक देखती और आँखों से मौन आँसू बहाती।

एक दिन वैष्णवी ने उसे आँसू पोंछते हुए देख लिया था। "क्या हुआ बिरसी नानी, तुम रो रही हो, क्यों?···किसी ने मारा क्या तुम्हें? मेरी माँ से कुछ कहा-सुनी हुई? नहीं न तो फिर?"

नृत्य की कक्षा में पाँच वर्ष के एक बालक ने नया दाखिला लिया

था। वह सीधे बिरसी के पास गया था—"आंटी, मेरा नाड़ा बाँध दीजिए न।"

बिरसी ने बड़े शौक से, स्वेच्छा से नन्हे बालकों की सेवा का दायित्व उठाया था। बालिकाओं के पैरों में घुँघरू बाँधती, बालकों की कमीज के बटन लगाती, उनके पाजामे का नाड़ा दुरुस्त करती हुई अपना दुःख भुलाए रखती।

नया बालक एकांत कुल सप्ताह भर की अवधि में बिरसी से खूब हिल-मिल गया था। "आंटी, मेरी पानी की बोतल खोल दीजिए न, मम्मी ने टाइट करके बंद कर दिया है।"

बिरसी के मुरझाए हुए चेहरे पर मुसकान देखकर मुझे भी आश्वस्ति होने लगी थी।

एकांत अपनी छोटी सी साइकिल लिये आता और मुख्य द्वार के सहारे टिकाकर सीधा बिरसी के पास जाता। "बिरसी आंटी, मेरी साइकिल का ध्यान रखिएगा। सौरभ उसे छूने न पाए। जब देखो तब वह दोनों पहियों की हवा निकालने के चक्कर में रहता है।"

बिरसी चेतावनी देती, "देखना बाबू, खूब सँभालकर साइकिल चलाना। इधर बड़का ट्रक और मिलिटरी गाड़ीवाला सब भोर से आवाजाही लगाए रखता है। इन लोगों का कवनो भरोसा नाहीं।"

एकांत की मुट्ठियाँ तन जातीं, "हमको कमजोर मत समझिएगा। हम रोज सुबह-शाम हलदी, गुड़, दूध पीते हैं। हमसे जो टकराएगा···"

बिरसी हँसकर दुहराती—"चूर-चूर हो जाएगा।···लेकिन बाबू, यही भारवा हमारे एतवा की भी थी—हमको कौन मारेगा अम्मा, हमने तुम्हारा दूध पिया है। देखना, सबके छक्के न छुड़ा दिए तो हमारा नाम भी दीपक एतवा मुंडा नहीं।

"मेरे बेटे की सब चतुराई धरी-की-धरी रह गई थी। काल ने उसे दोनों हाथों से दबोच लिया था। उसकी क्षत-विक्षत देह आज भी बिरसी की आँखों के सामने है।"

"यह क्या हो गया हमारे एतवा को?"

उस दिन वह रोज की तरह फाटक के पास खड़ी बच्चों को विदा कर रही थी। एक-एक कर अभिभावक आते और बालक-बालिका की उँगली थामे अपने साथ ले जाते। एकांत ने चपलतापूर्वक अपनी साइकिल निकाली थी।

"बिरसी आंटी, आज मैं अपनी मम्मी को चकमा देना चाहता हूँ। आप उन्हें बता देना, मैं उनके पहले ही घर पहुँच जाऊँगा।"

"अरे नाहीं, एकांत, तुम्हारी माँ आनेवाली होंगी। उन्हीं के साथ···"

एकांत ने अनसुनी कर दी थी। अपनी साइकिल निकालकर जैसे ही बाईं ओर मुड़ा था, सामने से आते हुए मिलिटरी ट्रक ने उसे धक्का मारने की कोशिश की थी। बिरसी ने लपककर एकांत को एक किनारे समेट लिया था। ट्रक ड्राइवर ने बिरसी को अपनी चपेट में ले लिया था।

कनपटी से बहती रक्तधारा और अंतिम बार आँखें मूँदने से पहले उसके मुँह से निकले शब्द—

"एतवा रे, तू बच गया बिटुवा···हम तुम्हें अपनी आँख के सामने कइसे मरने देंगे! ना, अपने जीते-जी, कभी नहीं।"

मोराबादी,
राँची-८३४००८
दूरभाष : ९४३११७४३१९

पाठकों से निवेदन

- जिन पाठकों की वार्षिक सदस्यता समाप्त हो रही है, कृपया वे सदस्यता का नवीनीकरण समय से करवा लें। साथ ही अपने मित्रों, संबंधियों को भी सदस्यता ग्रहण करने के लिए प्रेरित करने की कृपा करें।
- सदस्यता के नवीनीकरण अथवा पत्राचार के समय कृपया अपने सदस्यता क्रमांक का उल्लेख अवश्य करें।
- सदस्यता शुल्क यदि मनीऑर्डर द्वारा भेजें तो कृपया इसकी सूचना अलग से पत्र द्वारा अपनी सदस्यता संख्या का उल्लेख करते हुए दें।
- चैक साहित्य अमृत के नाम से भेजे जा सकते हैं।
- ऑन लाइन बैंकिंग के माध्यम से सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया के एकाउंट नं. 1110734393 IFSC–CBIN 0280297 में साहित्य अमृत के नाम से शुल्क जमा कर फोन अथवा पत्र द्वारा सूचित अवश्य करें।
- आपको अगर साहित्य अमृत का अंक प्राप्त न हो रहा हो तो कृपया अपने पोस्ट ऑफिस में पोस्टमैन या पोस्टमास्टर से लिखित निवेदन करें। ऐसा करने पर कई पाठकों को पत्रिका समय पर प्राप्त होने लगी है।
- सदस्यता संबंधी किसी भी शिकायत के लिए कृपया फोन नं. ०११-२३२५७५५५, २३२७६३१६ अथवा sahityaamritindia@gmail.com पर इ-मेल करें।

भारतीय रागबोध की समझ : विद्यानिवास मिश्र

• अजयेंद्रनाथ त्रिवेदी

पं. विद्यानिवास मिश्र भारतीय एवं पाश्चात्य विद्या-विमर्श के मर्मज्ञ रहे हैं। ललित-निबंधकार के रूप में उन्होंने भारतीय लोकजीवन तथा उससे जुड़े अनेकानेक पहलुओं को स्पर्श करते हुए हिंदी ललित-निबंध विधा को अनुकरणीय ऊँचाई पर पहुँचाया। संस्कृत की शास्त्रीय परंपरा का उत्तराधिकार प्राप्त करने के साथ-साथ उन्होंने पाश्चात्य परंपरा से भी रस ग्रहण किया तथा इस क्रम में भारतीय शास्त्रीय परंपरा की महनीयता का मर्म समझा। इस मर्म को उन्होंने अनेकानेक स्थापनाओं के माध्यम से उद्घाटित किया। हिंदी ललित-निबंधकार से इतर यह उनकी एक अलग छवि है। सामान्य पाठकों का ध्यान अकसर इस ओर नहीं जाता है।

पं. विद्यानिवास मिश्र ने यह सब अपनी मौलिक दृष्टि से किया। इस दृष्टि में परंपरा के प्रति सम्मान तो था, परंतु अंधश्रद्धा न थी। इसी संबंध में भारतीय के संदर्भ में एस्थेटिक्स की उनकी अवधारणा को देखा जा सकता है। भारतीय शास्त्र परंपरा को देखते हुए एस्थेटिक्स को सौंदर्यशास्त्र कहना उन्हें मंजूर नहीं था। भारतीय प्रत्यय के अनुरूप उन्होंने इसके लिए 'रसबोध' शब्द प्रस्तावित किया। भारतीय चिंतन तथा कला साहित्य के प्रतिमानों के संबंध में उन्हें सौंदर्यशास्त्र शब्द अपर्याप्त लगा। उन्होंने लक्ष्य किया कि भारतीय शास्त्रों में इससे संबंधित अर्थ में सौंदर्य का प्रयोग बहुत ही कम हुआ है। इस अर्थ में जिन शब्दों का बहुल प्रयोग वहाँ मिलता है, उनमें रुचिर, मनोज्ञ, चारु, सुभग आदि हैं। वे स्वीकार करते हैं कि किसी वस्तु में सौंदर्य की पहचान सबको बाँध लेने की उसकी शक्ति से होती है। महाकवि भारवि की उक्ति—वसन्ति हि प्रेम्णि गुणा: न वस्तुषु' का उदाहरण देकर वे कहते हैं कि भारत के संबंध में एस्थेटिक्स के लिए रागबोध सब्द ही समीचीन है। उन्होंने प्रतिपादित किया है कि रागबोध शब्द भारत की पूर्णतावादी, साहित्यवादी और संबद्धतावादी दृष्टि के ज्यादा अनुकूल है।

इस संबंध में पंडितजी के विचार उनके विभिन्न भाषणों एवं प्रकीर्ण निबंधों में मिलते हैं। इस विषय पर उनके कुछ मूल्यवान निबंध 'रागबोध और रस' नामक पुस्तक में संकलित हैं। इसमें रागबोध के परिप्रेक्ष्य में शास्त्रीय चर्चा मिलती है। इस चर्चा को सुकवियों की रचनाओं के माध्यम से पुष्ट करने का प्रयास भी किया गया है। इसमें पंडितजी ने आनंद कुमारस्वामी की सौंदर्य विषयक मान्यता के हवाले से भी भारतीय रागबोध तथा उसके प्रकृति को समझने का प्रयास किया है। उन्होंने आनंद कुमारस्वामी का साक्ष्य देते हुए कहा है कि एस्थेटिक्स में ऐंद्रिक सौंदर्य के लक्षणों आदि पर ही विचार किया जाता है। भारतीय परंपरा में सौंदर्य भावरूप है, चैतन्य का एक प्रकाश है, इसमें ऐंद्रिक अनुभव तो है, पर वही सबकुछ नहीं है। इसीलिए भरतीय संदर्भों को व्यक्त करने में सौंदर्यशास्त्र को अपर्याप्त मानते हुए उन्होंने इसके लिए रागबोध शब्द प्रस्तावित किया। भारतीय सौंदर्यशास्त्र (रागबोध पढ़ें) के संबंध में उनके नवोन्मेषी निष्कर्ष को इस परिप्रेक्ष्य में देखा जाना चाहिए।

पंडितजी ने भारतीय रागबोध को समझने के क्रम में देखा कि उसकी पृष्ठभूमि सर्वमयता की है। इसमें प्रस्परावलंबन, परस्पराकांक्षा तथा पर में स्व को उपलब्ध करने की आकांक्षा पाई है। उन्होंने कालिदास के मालविकाग्निमित्रम् से एक श्लोक उद्धृत किया है—

अङ्गैरन्तर्विहितवचनैः सूचितः सम्यगर्थः
पादन्यासो लयमनुगतः तन्मयत्वं रसेषु।
शाखायोनिर्मृदुरभिनयः तद्विकल्पानुवृत्तौ
भावो भावं नुदतिविषयाद्रागबन्धः सा एव॥

नृत्य के सौष्ठव पर रचित इस श्लोक को पंडितजी ने रमणीयता के बोध में साधक व्यापारों पर भी घटित होता हुआ पाया है। इसमें कालिदास ने गीत के भावों का नृत्य में लयात्मक परिपाक दिखाते हुए कहा है कि विषय के प्रति भाव को अभिमुख करता है तथा इसी क्रम में रागबंध स्थापित होता है—'भावो भावं नुदतिविषयाद्रागबन्धः स एव।' पंडितजी के अनुसार जो सर्वमयता भारतीय रागबोध के मूल में है, उसका आधार है विशेष सृष्टि। ऋग्वेद इसे 'इयं विसृष्टिः' कहा है।

उनके अनुसार रस सकल होने, अखंड होने की प्रवणता कहा है। रस दु:खप्रद नहीं होता। वह दु:ख-सुख को सर्वमय मानकर एक ऐसे संवेदन में रूपांतरित कर देता है, जिसमें अपनी अस्मिता खो नहीं जाती, विस्मृत हो जाती है, जातीय वासना बन जाती है। इसी बनने को वे रस कहते हैं।

अभिनवगुप्तपादाचार्य की लोचन टीका के पहले श्लोक को इस संबंध में एक दिक्सूचक मानते हुए उन्होंने कहा है कि सरस्वती का तत्त्व ही मृण्मय को चिन्मय करता है। लोचन टीका के पहले श्लोक का भावार्थ बताते हुए वे कहते हैं—"संसार वैसे तो केवल पत्थर जैसा है, लेकिन यह जो सरस्वती का तत्त्व है, यह अपने रस के संसार से उसको सारवत् करता है। उसमें जो कुछ उसका सत्त्व है, वही आता है। यह सत्त्व क्या है? उसकी कुछ अन्य होने की बेचैनी। कुछ अन्य होने की बेचैनी ही वह सत्त्व है और कुछ नहीं। (रागबोध और रस, पृ. २५) अपूर्व की सृष्टि से कला सारवत् बनती है। यह अपूर्व किसी योजना से उद्घाटित नहीं होता, यह प्रक्रिया-प्रसूत होता है। इससे उल्लास तथा तुष्टि संभव होती है। यही कलाओं को रम्य तथा सुभग बनाता है। पदार्थ के रूप में सबकुछ वही रहने पर भी उससे जो अपूर्वता प्रकट होती है, वह कुछ विचित्र, कुछ अनोखी होती है। इसीलिए यह कोई सिद्ध वस्तु नहीं है। कलाओं के विभिन्न रूपों में अपूर्व अलग-अलग तरीके से उद्घाटित होता है।

रागबोध के संदर्भ में पं विद्यानिवास मिश्र ने रस की अवधारणा पर विचार किया है। वे कहते हैं, 'किसी ने कहा रस तो स्वाद की वस्तु है, जीभ के स्वाद की तो है ही, मन के संवाद की भी है। पर वहाँ तक भी स्वाद पूरा नहीं होता, स्वाद अधूरा ही बना रहता है। वह बुद्धि के स्वाद की वस्तु है, शुद्ध ज्ञान से उत्पन्न आस्वाद, पर उस उपलब्धि में स्थायित्व अवश्य है, पूर्णता नहीं है। क्योंकि आस्वाद और आस्वादक एक नहीं हो पाते, पूरा तादात्म्य नहीं हो पाता, इसलिए रस आत्मा का स्वाद है।' वे रस को जल से उद्भूत मानते हैं। इसका कारण जल की पुनरुत्पादन क्षमता है। इस क्षमता को उन्होंने रिसर्जेंस कहा है। उनके अनुसार अपूर्व को आत्मसात् करने की प्रक्रिया ही रस है। इस प्रकार रस एक आसक्ति है, एक लगाव है।

पंडितजी के अनुसार रस को धातुरस से संबंधित मानने से इस संबंध में अनेक आपत्तियों का निरसन हो जाता है। धातु का रस निकालने की प्रविधि रस की निष्पत्ति की प्रक्रिया से पूरी समता रखती मिलती है। चाक्षुष प्रत्यक्ष वाली कला के रस का ग्रहण करने के लिए सहृदय को भी कुछ उन्हीं दशाओं से होकर गुजरना पड़ता है, जिस प्रक्रिया से धातु को रस बनने के लिए गुजरना पड़ता है। उनके ही शब्दों में कहें तो 'रचनाकार या भावक अपने निजी अनुभव को अपने समाज और संस्कृति की घरिया में डालकर देखता है कि इस मेरे अनुभव में कुछ तत्त्व है या नहीं, जितना बच जाता है, उसी को रस मानता है।'

रस का प्रथम उन्मेष पंडितजी को आप: सूक्त में दीखता है, जहाँ आप: (जल) से रस की कामना की गई है कि उसे पाकर हम कृतार्थ हों और हमें नया जन्म मिले। एक दूसरे मंत्र का संदर्भ देकर वे जल

हिंदी की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं, जर्नलों में निबंध, शोध-आलेख आदि प्रकाशित। संप्रति मुख्य प्रबंधक (राजभाषा) यूको बैंक, गुवाहटी।

को, जो रस का मूल है, ज्योति के अमृत रस के रूप में पहचानते हैं। वह मंत्र इस प्रकार है—

अंतश्चरसि भूतेषु गुहायां विश्वतोमुख:।
त्वं यज्ञस्तं वषट्कार आपो ज्योती रसोमृतम्॥

इस प्रकार कई वैदिक प्रतीकों की पड़ताल करते हुए पंडितजी रस की भारतीय अवधारणा ग्रहण करते हैं। वे पाते हैं कि विभिन्न उपदानों के आस्वाद से एक अपूर्व आस्वाद सामने आता है। इस अपूर्व आस्वाद से आस्वाद की उत्कंठा शमित नहीं होती है और रस व्यष्टिचित्त को परिशुद्ध करके उसमें निहित समष्टिचित्त को प्रकट करता है। यह किसी अग्निपरीक्षा से गुजरने की तरह है। इसके अंत में चित्त के प्रसुप्त अंतर्निहित भाव जागते हैं तथा ज्योति का अमृत-रस निष्पन्न हो जाता है। यहाँ हमें कालिदास की उक्ति स्मरण हो आती है—

रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान्।
पर्युत्सुकी भवति यत्सुखिनोपिऽजन्तु:॥

रस अपनी सर्वमयता के कारण मात्र नाट्य प्रयोग तक ही सीमित नहीं रह जाता है। पंडितजी का विचार है कि चित्त की रिक्तता अथवा तनावपूर्ण संकुलता है रस के रूप में प्रकट होती है, शर्त यही है कि वह प्रस्तुति चाहे जिस भी विधा में हो, उसे चित्त दशा को ग्रहण करने में समर्थ होना चाहिए (रागबोध और रस, पृ. ६४)। पंडितजी के अनुसार रस निष्पत्ति एक उलझी हुई बात हो गई है। निष्पत्ति को कोई उत्पत्ति मानता है तो कोई उसे अनुमिति तो कोई अभिव्यक्ति कहता है। इस बात पर भी ऐकमत्य नहीं है कि वह लौकिक है या अलौकिक। वह अभिनेता में रहता है, नाटक में या प्रेक्षक/पाठक में। इन विवादों को परे हटाते हुए उन्होंने पूछा है कि रस चाहे कहीं भी रहे, यह अभिव्यक्ति का दुर्निवार संकल्प अवश्य है।

पं. मिश्र ने पश्चिम में ऐस्थेटिक्स की अधारणा का, जिसके लिए हिंदी में आमतौर पर सौंदर्यशास्त्र शब्द प्रचलित है, अध्ययन किया। उन्होंने ऐस्थेटिक्स के पाश्चात्य विचारकों का अध्ययन किया। उनके विचारों पर कोई टिप्पणी न करते हुए पंडितजी ने इतनी बात कही कि कांट एवं हीगेल चूँकि प्रत्ययवादी विचारक हैं, अत: उनके विचार से सौंदर्य एक प्रत्यय है। इसके विपरीत लुकाच एक पदार्थवादी विचारक हैं, अत: सौंदर्य उनके विचार से एक वस्तु है। इन पाश्चात्य विचारकों के बरक्स उन्होंने आनंद कुमारस्वामी के विचार भी रखे हैं। आनंद कुमारस्वामी ने भी ऐस्थेटिक्स को भारतीय संदर्भ में उसके समस्त प्रतिपाद्य को अभिव्यक्त करने के लिए अपर्याप्त संज्ञा माना है। कुमारस्वामी कहते हैं कि ऐस्थेटिक्स में

ऐंद्रिक सुंदरता पर ही बल है। वे स्वीकार करते हैं कि सौंदर्य एक भाव है और उसी से हमें ऐंद्रिक अनुभव प्राप्त होता है।

'कला, कला के लिए' तथा 'कला जीवन के लिए' इस विमर्श के प्रति पंडितजी बिल्कुल उत्साहित नहीं हैं। वे कहते हैं कि जिस प्रकार श्वसन, रक्त तथा स्पंदन के साथ जीवन अविभाज्य है, वैसे ही कला तथा साहित्य के साथ भी जीवन अविछिन्न है। उनकी धारणा है कि कला या काव्य का बोध इंद्रिय अनुभवों में समाविष्ट नहीं हो सकता। इस प्रकार यह अनुभव अलौकिक हुआ। तब वह लोकरंजक कैसे होगा? (रागबोध और रस, पृ. ४३)।

पंडितजी स्वीकार करते हैं कि काव्य या कला सृष्टि, सृष्टि-प्रक्रिया का सघन अनुकीर्तन है, न उसकी हू-ब-हू नकल है, न गणितात्मक अपकर्षण ही है। अत: वह सृष्टि से अलग नहीं हो सकती है। कला सृष्टि के साथ एकरूप नहीं, समानांतर है। कला और काव्य सृष्टि सृष्टि का भाव में तपाया हुआ रूप है। आगे दूसरे प्रश्न पर विचार करते हुए वे कहते हैं कि काव्य और कलासृष्टि का आनंद इंद्रियों से चलकर इंद्रियातीत हो जाने में ही है। वे ऐंद्रिक अनुभव से काव्य या कला का अनुभव इस अर्थ में विलग मानते हैं कि ऐंद्रिक अनुभव सुखद लगत हुए भी दु:खद परिणामात्मक होते हैं, कभी तो सुख की क्षणिकता तो कभी उसकी आसक्ति दु:ख का कारण बनती है। इसके विपरीत कला या काव्य में व्यक्त सुख-दु:ख का अविषय गहरी मानवीय संवेदना के रस के रूप में परिणत होता है। यद्यपि वह आनंद न भी कहलाए तथापि वह शुद्ध निर्वैयक्तिक हार्दिक भाव तो है ही।

भारतीय रसशास्त्र की पहचान के क्रम में जिस दूसरे शब्द से पंडितजी की पहचान हुई, वह है अपूर्व। अपूर्व मीमांसा का शब्द है। मीमांसा में कर्म की महत सत्ता मानी गई है। इस दर्शन में स्थापना की गई है कि मर्म के संपन्न होने पर उससे एक विशिष्ट सहनशक्ति प्रकट होती है। यह शक्ति है–अपूर्व है।

विद्यानिवास मिश्र ने रागबोध के कुछ अभिलक्षणों को भी रेखांकित किया है। वे इस अनुभव को सपट या सीधा-सरल नहीं मानते। रमणीयता बोध सिर्फ चाक्षुष प्रत्यक्ष भर नहीं है। वक्रता, आरोह-अवरोह, दृश्य में नतोन्नतता रागबोध में सहायक होते हैं। कालिदास के पर्युत्सुकी भाव को वे कला में गहा न जा सकने वाला अभिलक्षण कहते हैं। उनका विश्वास है कि कला या जो साहित्य या जो संगीत ऐसी व्यापक उत्सुकता या बेचैनी नहीं पैदा करते, वे रमणीय नहीं, मधुर नहीं (रागबोध और रस, पृ. ४३)।

भारतीय रागबोध के एक उल्लेखनीय पक्ष की ओर संकेत करते हुए वे शकुंतला के चित्र की पृष्ठभूमि की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं। वे कहते हैं कि भारतीय चिंतनधारा के अनुरूप ही भारतीय रागबोध भी है। समग्र के साथ जुड़े होने पर यहाँ बल है, संबद्धता पर बल है, अलग-अलग उपादानों के अलग-अलग सौष्ठव पर नहीं। वे कहते हैं, शकुंतला का चित्र तभी पूरा होता है, जब हिमालय की तलहटी की झाईं, डालियों में वल्कल लटके हुए हैं, सूखने के लिए ऐसे पेड़ की छाह में बैठी हुई हिरणी अपनी बाईं आँख हिरण के सींग की नोक से खुजलाकर सुख पाती हुई, मालिनी नदी, उसके बलुहे तट, किल्लोल करती हुई हंसों की जोड़ी, सभी चित्रित होते हैं। पंडितजी जोर देकर कहते हैं कि 'भारतीय रागबोध में कला या काव्य या गीत न जीवन के लिए है, न अपने लिए, वे जीवन से ओतप्रोत हैं, उनके बिना जीवन अपना सहज छंद ही नहीं पहचान पाता (रागबोध और रस पृ. ४३)।

रसबोध के संबंध में पं. विद्यानिवास मिश्र ने भारतीय रसशास्त्र के दो पारिभाषिक शब्दों की पहचान की है। ये शब्द हैं 'सहृदय' तथा 'अपूर्व'। इन शब्दों की चर्चा भारतीय ऐस्थेटिक्स (रसबोध) के संबंध में प्राय: नहीं हुई है। अनेक भारतीय शास्त्रों में आए इन शब्दों को परस्पर संबद्ध करके उन्होंने भारतीय रसशात्र का रूपायन किया। सहृदय कौन है, इस पर पंडितजी कहते हैं—सहृदय वह व्यक्ति है, जिसमें काल, देश की सीमाओं को अतिक्रांत करने की योग्यता होती है। यह योग्यता पर्युत्सुकी भाव से आती है। इस भाव से भावित व्यक्ति के अन्य सभी भाव परिलुप्त हो जाते हैं। सहृदय की अनन्य विशेषता साझीदार बनने की उसकी प्रवणता है।

भारतीय रसशास्त्र की पहचान के क्रम में जिस दूसरे शब्द से पंडितजी की पहचान हुई, वह है अपूर्व। अपूर्व मीमांसा का शब्द है। मीमांसा में कर्म की महत सत्ता मानी गई है। इस दर्शन में स्थापना की गई है कि मर्म के संपन्न होने पर उससे एक विशिष्ट सहनशक्ति प्रकट होती है। यह शक्ति है—अपूर्व है। आत्मा के साथ संश्लिष्ट हो जाती है तथा शुभ या अशुभ कर्म फलों तक कर्म सातत्य सुनिश्चित करता है। अपूर्व वह तत्त्व है, जो कर्म तथा फल के बीच उपस्थित होकर कर्मचक्र का सातत्य नियंत्रित करती है। फल तो कर्म के ही मिलते हैं, पर अपूर्व उनके बीच द्वार का काम करता है। समासत: कहा जा सकता है कि अपूर्व पूर्वदृष्ट, पूर्वज्ञात वस्तुओं से अपूर्व अर्थात् कुछ नवीन प्रत्यय तथा अनदेखे की प्राप्ति है।

'शिवोन्मुख सौंदर्य और रस विमर्श' शीर्षक निबंध में डॉ. कृष्णबिहारी मिश्र ने पंडितजी की रस मीमांसा संबंधी धारणा पर विचार किया है। वे कहते हैं—विद्यानिवास मिश्र की रस मीमांसा का क्षेत्र जितना व्यापक है, उतनी ही गंभीर और प्रखर उनकी टिप्पणी है। वैदिक काव्य की वैश्विक चेतना से लेकर अज्ञेय की काव्य संवेदना तक को विद्यानिवासजी ने गहरी रुचि के साथ सटीक कोण से देखा-परखा है और अपना स्पष्ट मंतव्य प्रकट किया है। (परंपरा का पुरुषार्थ, पृ. १६१) हम समझते हैं कि संप्रदाय की सीमाओं से आगे जाकर ऐस्थेटिक्स की भारतीय संकल्पना का जो परिचय विद्यानिवास मिश्र ने हमें दिया है, उस पर गंभीरता से विचार किया जाना चाहिए।

मुख्य प्रबंधक (राजभाषा)
यूको बैंक, अंचल कार्यालय
शिलपुखुरी, गुवाहाटी-७८१००३
दूरभाष : ९८७४४५९७६७

गरीब का चिकित्सालय

● गोपाल चतुर्वेदी

हमारे प्रजातंत्र में ही क्यों, दुनिया भर में गरीबों का बड़ा महत्त्व है। हर शासन की कार्यकुशलता और क्षमता गरीबी के घटने-बढ़ने पर निर्भर है। आजादी के बाद से स्पष्ट है कि हर दल की सरकार का एक ही लक्ष्य रहा है। वह है गरीबी का उन्मूलन। देखने में आया है कि बहुधा इस गंभीर प्रयास में उन्मूलन गरीब का ही हो जाता है। गरीबी अपने आप इसी प्रकार घट जाती है। अध्येता और शोधकर्ता जानते हैं कि कांग्रेस के शासन में मूल्यवृद्धि की गति अधिक तेज होती है। कांग्रेसी मानते हैं कि उनके शासन के दौरान विकास से लेकर वेतन तक हर दर कुछ अधिक गतिमान रहती है। प्रभावित जनता शिकायत करे तो करे। कुछ नेता या पत्रकारों जैसे पेशेवर शिकायती हैं। उनका धंधा ही दूसरों की शिकायत है। वही बाल की खाल निकालने में लगे रहते हैं। उनके अनुसार, कोई विचार करे तो मूलवृद्धि के लाभ-ही-लाभ हैं। कुछ के लिए गरीब एक प्रेरणा हैं।

बढ़ती कीमतों से एक धुँधली सी आशा मन में उभरती है कि खाने-पीने के पदार्थों की महँगाई से शायद देश के जीवनदाताओं, यानी किसानों को कुछ लाभ पहुँचे? कौन कहे, ऐसा होता भी है या नहीं? मंडी के थोक वितरक कुछ और वजनदार होते हैं। यानी उनकी तोंद तरक्की करती है, उत्पादन बढ़ता है। पूँजीपति नाम भले ही राष्ट्रहित का लें, वह ही क्यों, देश का हर वर्ग, निजी हित में विश्वास करता है, विशेषकर वह, जिनका काम ही जन या समाज-सेवा है। जो कल तक चप्पल चटकाते घूमते थे, वही चुनाव के बाद पैदल चलने से कतराते हैं। वह रहते भी सुरक्षा के घेरे में हैं। क्या पता, उनकी सेवा उदासीनता और विकास-निष्क्रियता से नाराज लोग कब उनकी पिटाई न कर दें?

अपने स्वयं के आकलन में वे एक राष्ट्रीय निधि हैं। उनकी सुरक्षा देश की जिम्मदारी है। ऐसी देश की हजारों निधियाँ हैं। लाखों पुलिसकर्मी इनके कारण सुरक्षा का काम पाते हैं। जनता इनकी निगाह में केवल मक्खी-मच्छर है, जिसे न पुलिस की दरकार है, न देखभाल की। इनकी सारी भिनभिन नेता ने सुन तो ली चुनाव के दौरान। यह तो स्वभाव से 'मँगते' हैं, कुछ-न-कुछ माँगते ही रहते हैं। नेता की सेवा का क्षेत्र व्यापक है। वे कभी प्रांत, कभी देश के गरीबों की किस्मत चमकाने में व्यस्त हैं। अभी तक एक गूढ़ रहस्य है कि ऐसा होता क्यों है कि गरीबों की किस्मत अब तक नहीं चमकी है, उल्टे चमकाने वालों की चुनाव-दर-चुनाव और चमकती जा रही है। वह भले हारें या जीतें? इस रहस्य का उद्घाटन चंद्रकांता संतति के लेखक के लिए ही संभव है। हमें इंतजार है कि वह शीघ्र ही फिर से अवतरित हों। तब तक इस रहस्य को रहस्य ही रहना है!

गरीब के भले के लिए समाज का हर वर्ग प्रयासरत है। यहाँ तक कि एक समृद्ध डॉक्टर ने सरकारी नौकरी को लात मारकर जब प्राइवेट प्रैक्टिस शुरू की तो उसने अपनी डिस्पेंसरी का नाम ही 'गरीब का चिकित्सालय' रखा है। इस नाम को पढ़कर हर साक्षर-निर्धन को लगा कि क्या वह रामराज्य के अतीत में आ गए हैं? मौखिक प्रचार से उसने दूसरों को सूचित किया कि भैया, अब सरकार ही नहीं, निजी डॉक्टर भी निर्धन कल्याण को कृतसंकल्प हैं। क्या पता यहाँ फ्री चिकित्सा भी उपलब्ध हो, वरना गरीब का चिकित्सालय के नामकरण का तुक क्या है? भारत एक ऐसा देश है, जहाँ फ्री के नाम पर अच्छे-खासे लोग जूते खाने तक को प्रस्तुत हैं। फिर यह तो बीमारी के इलाज का मामला है। नाम ऐसा प्रचारित हुआ कि लोग उद्घाटन की प्रतीक्षा करने लगे। एक बीमार देश के लिए ऐसे सुनहरे प्राण-रक्षक अवसर बार-बार तो नहीं आते हैं। सबने खुलते ही जाने और दिखाने का दृढ़ निश्चय कर लिया।

लोगों में शर्त लग गई कि निदान फ्री है कि नहीं? सेहत की सट्टेबाजी का एक नया दौर शुरू हो गया। सट्टेबाजी के सिक्के के दो पहलू हैं। कुछ इसे सही मानते हैं। उनका दृष्टिकोण यह है कि सरकार इस आमदनी पर टैक्स लगाए और पैसा कमाए। इसका क्या फायदा कि सट्टेबाजों की जाँच हो, चार्जशीट दायर हो, मुकदमा चले और जनता की गाढ़ी कमाई, इस प्रकार की धर-पकड़ और कोर्ट-कचहरी के चक्कर में डूबे? इससे क्या सट्टेबाजी रुकी है? उलटे अब राज्य न राम का है न रहीम का, वह धाँधलेश्वर का है। जिसकी जितनी सामर्थ्य है, वह उतनी ही कमाई में लगा है।

जाँच एजेंसियाँ ऐसी वारदातों की विशेषज्ञ हैं। जब कोई पैसेवाला केस सी.बी.आई. को सौंपा जाता है तो जानकार बताते हैं कि संबद्ध कर्मचारियों के यहाँ दीपावली मनती है। खाकी वर्दीधारियों के लिए तो यह रोजमर्रा का किस्सा है। कभी वह झुग्गीवालों से वसूली करते हैं, कभी बिना लाइसेंस के रेहड़ीवालों से। फुटपाथिए दुकानदार तो उनके रोजमर्रा के शिकार हैं। ऐसी आम दुर्घटनाओं का क्या उत्सव मनाना?

चिकित्सालय उद्घाटन के शुभ दिन तो जैसे प्रतीक्षा का बाँध ही टूट गया। उद्घाटन या विमोचन हो अथवा समापन, सबका एक अलिखित नियम है। अपने क्षेत्र के विद्वान् या विशेषज्ञ से संपन्न न करवा के, यह शुभ कर्म हमेशा किसी सत्ताधारी राजनेता से ही करवाया जाता है। हमने एक सज्जन से इस पर सवाल उठाया तो उन्होंने उत्तर दिया, ''देखिए, सबकी इच्छा रहती है कि उनके कार्यक्रम का प्रचार-प्रसार हो। इसके लिए सबसे उपयोगी माध्यम मंत्री है। वह कभी केश कर्तनालय, तो कभी

गरीब-चिकित्सालय का उद्घाटन, बराबर की लगन और विश्वास से करता है। उसके लिए दोनों देश-सेवा में समान रूप से रत हैं। उसके पास हर विषय पर भाषण देने का माद्दा है, वरना मंत्री क्यों होता? वह राजनीति में जाति और परिवारवाद पर उसी गंभीरता से बोलता है, जितना बढ़ते अपराधीकरण पर। उसकी धारणा है कि दोनों देश और प्रजातंत्र के लिए हानिकारक हैं। एक से अधिनायकवाद पनपता है, दूसरे से आर्थिक संतुलन बिगड़ता है। कौन अपने पैसे ऐसे स्थान पर डुबोएगा, जहाँ डंके की चोट पर हत्या, अपहरण, लूट आदि की छूट हो?'' मंत्री की उपस्थिति से कार्यक्रम के बेहतर प्रचार से कौन इनकार करेगा? उसके पधारने से आयोजक से लेकर संस्था तक सबके उल्लू सीधे होते हैं।

उद्घाटन गरीब चिकित्सालय के सर्वेसर्वा डॉक्टर ने अपने एक परिचित मंत्री के करकमलों से करवाया था। जब वह सरकारी सेवा में कार्यरत थे, तब मंत्रीजी ने जी खोलकर उनकी मदद की थी। डॉक्टर प्राइवेट प्रैक्टस भी करते थे, इतना ही नहीं, उन्होंने नियुक्त में भी कई धाँधलियाँ की थीं। केस गंभीर थे, पर मंत्रीजी की सक्रिय सहायता से सब रफा-दफा हो गए। लोगों को आज भी ताज्जुब है कि मंत्री और डॉक्टर के बीच ऐसी क्या साँठ-गाँठ है? ऐसा क्यों हुआ? 'क्यों' के विषय में विश्वस्त लोगों से जानकारी एकत्र की जा रही है और शीघ्र ही खबर के सुर्खियों में आने की संभावना है। कुछ तो गोपनीय अंदाज में बताते हैं कि मंत्रीजी एक गुप्त रोग से पीड़ित हैं और उसका इलाज इसी डॉक्टर के जिम्मे है। कुछ का कहना है कि मंत्री के रिश्तेदार को डॉक्टर ने नौकरी दिलाई थी। जितने मुँह, उतनी अफवाहे हैं, जो इंटरनेट की गति से वातावरण में तैर रही हैं।

कुछ का तो मत है कि इनके पीछे यदि कोई है तो वह डॉक्टर के ही तथाकथित 'सगे' हैं। किसी परिचित की घिघियाती त्रासद मुद्रा तो सबको भाती है पर किसी चेहरे पर सफलता की चमक देखकर अपने ही सबसे अधिक निराश होते हैं। सब उसकी टाँग-खिंचाई के पावन कर्म में लगते हैं। इसमें ऐसा क्या खास है कि यह हमसे आगे निकल गया? सबका समान निष्कर्ष है कि डॉक्टर योग्य हो न हो, पर जुगाड़ू अवश्य है। उसकी कामयाबी की जड़ में जुगाड़ है। अब सब उसकी जड़ खोदने में व्यस्त हैं अफवाहें फैलाकर।

इसका यह अर्थ नहीं कि डॉक्टर कोई आदर्श चरित्र है। कुछ दुर्गुण सफलता के बाद आते हैं, कुछ उसमें सहायक होते हैं। डॉक्टर की विशेषता है कि वह सबके सम्मुख उनकी प्रशंसा के पुल बाँधता है और पीठ पीछे उनकी खाट खड़ी करता है। ऐसे व्यक्ति बहुधा लोकप्रिय होते हैं। उसके साथ कई महिला डॉक्टर भी कार्यरत हैं। उनसे उसका व्यवहार शिष्टाचार का आदर्श उदाहरण है। डॉक्टर की पत्नी स्वयं डॉक्टर हैं। दोनों साथ पढ़े हैं। वह अपने पति को बखूबी समझती है और उसके आचरण को लेकर खासी चौकस है। उसे ज्ञात है कि महिला या पुरुष को बदनाम करने का सबसे सुगम साधन उसका चरित्र हनन है। लिहाजा, उसकी अपने पति की हर हरकत पर नजर है। उसके पिता उद्योगपति है। इसलिए जब वह पति को सुनाती है कि 'देखते हैं, तुम कैसे अस्पताल बनाते हो?' तो वह सकपका जाता है। फंडिंग तो उन्हीं की है। अपना अस्पताल उसका सपना है। लक्ष्य है। जीवन की मनोकामना है। वह तत्काल पत्नी के चंगुल में ही नहीं आता है, उसकी हर आज्ञा उसे शिरोधार्य है।

इसका पारस्परिक लाभ है। पत्नी की पैथोलॉजी लैब है। मरीजों की सारी जाँचें वहीं से होती हैं। रहा कमीशन तो वह भी मिलता है, जैसे धन आए और घर के खजाने की शोभा बढ़ाए। पत्नी से वह मन-ही-मन इतना डरता है कि साथ की महिला डॉक्टरों से आँख मिलाने से कतराता है। कोई उसका चरित्र हनन कैसे कर पाएगा? कुछ कहते हैं कि डॉक्टर 'भय बिन होय न प्रीति' का साक्षात् नमूना है।

फिलहाल, तो डॉक्टर अपने गरीब चिकित्सालय के उद्घाटन में उमड़ी भीड़ से गद्गद हैं। मंत्री भी इतने श्रोताओं की उपस्थिति से जोश में हैं। वह गरीब चिकित्सालय के उद्घाटन संबोधन में कहते हैं कि डॉक्टर वर्मा भारत के इकलौते डॉक्टर हैं, जो हिप्पोक्रटीज की ओथ पर वास्तविक रूप से अमल कर रहे हैं। ऐसे व्यक्ति बिरले होते हैं और यह किसी-किसी राष्ट्रीय सम्मान के पात्र हैं। डॉक्टर वर्मा भी अवसर का लाभ उठाकर जन समुदाय को सूचित करते हैं कि कल वह सबका इलाज नि:शुल्क करेंगे। वह बीमारों की सेवा में सुबह सात बजे से शाम पाँच बजे तक क्लीनिक में उपलब्ध रहेंगे। जो चाहे आ सकता है।

दूसरे दिन वाकई एक इतिहास रचा गया, जब एक डॉक्टर ने एक हजार से अधिक मरीज देखे, उनके परचे लिखे, आगे मिलने की 'डेट' दी। इसमें एक ही पेंच था। अगली मुलाकात 'फ्री' नहीं थी। बड़े-बड़े अक्षरों में एक बार की फीस पाँच सौ रुपए थी, जो सात दिन तक वैध थी। कहाँ फ्री होने की खबर, कहाँ एक सौ, दो सौ नहीं, सीधे पूरे पाँच सौ रुपए।

उम्मीद के टूटने पर निराशा फैलना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। लोगों ने डॉक्टर वर्मा को ठग, डाकू, धोखेबाज, शोषक, क्या-क्या नहीं बताया। किसी के भी लिए यह अनुमान संभव नहीं है कि एक ही दिन में छवि कितनी गिर सकती है? मंत्री को भी लोगों ने आड़े हाथों लिया। फिर भी जिन्होंने फ्री जाँच करवाई थी, उन्हें संतोष है कि उनके लिए तो फीस केवल ढाई सौ रुपए ही पड़ी। यह फ्री से तो अधिक है, पर पाँच सौ से तो कहीं कम है। दूसरी बार जिन्होंने आने की हिम्मत की, उन्होंने डॉक्टर साहब के हाथ में शफा होने के गुण भी गाए। उन्हें चूना लग गया तो दूसरों को क्यों न लगे? वह अब भी डॉक्टर वर्मा के गुणगान में मगन हैं। कुछ की मान्यता है कि यह सब डॉक्टर वर्मा के प्रचार एजेंट हैं, जो 'डिस्काउंट' पाकर उनकी प्रशंसा में व्यस्त हैं। कौन कहे, इन्हें इलाज फ्री में मिलता हो? बहरहाल, गरीब के नाम से खुला चिकित्सालय चल निकला है। दीगर है कि वहाँ गरीब के अलावा सब आते हैं।

कभी-कभी हमें लगता है कि डॉक्टर वर्मा का गरीब चिकित्सालय देश का प्रतीक है। देश में भी गरीब के नाम और उनके कल्याण हेतु बनी सैकड़ों योजनाएँ हैं। जिसका लाभ निर्धन के अलावा सब उठाते हैं। सरकार जाने समझे, न समझे? वह निर्धन-कल्याण की जितनी योजनाएँ बनाती है, उसकी संबंधित एजेंसियाँ उतनी ही उसके धन की, दिन दहाड़े डकैती में व्यस्त ही नहीं प्रसन्न भी हैं।

९/५, राणा प्रताप मार्ग
लखनऊ-२२६००१
दूरभाष : ९४१५३४८४३८

मेरे बड़े भाई : मेरे मार्गदर्शक

• कमल किशोर गोयनका

श्री श्यामसुंदरजी के देहावसान का समाचार मुझे २९ दिसंबर की संध्या को मिला, जबकि उनका अंतिम संस्कार हो चुका था। मुझे बड़ी आत्म-ग्लानि हुई, पछतावा हुआ। मन दु:खी हुआ कि जिन्हें मैं सदैव अपना बड़ा भाई तथा मार्गदर्शक मानता रहा और उन्होंने भी कभी अपना प्रेम व आशीर्वाद देने में कोताही नहीं की, उनके अंतिम दर्शन करने से भी चूक गया। यह ऐसी ही वेदना थी, जैसे मैं अपने बड़े भाई की अंतिम यात्रा में शामिल नहीं हो सका। यह अफसोस जीवन भर कभी खत्म नहीं होगा। मैंने व्हाट्सएप देख लिया होता तो प्रभातजी का भेजा दु:खद समाचार मिल ही गया होता। आज के युग में ऐसी लापरवाही हो तो वह आश्चर्यजनक है, लेकिन हुआ है तो प्रायश्चित्त तो होगा ही।

मैं याद करता हूँ कि चावड़ी बाजार की दुकान पर ऊपर सीढ़ियाँ चढ़कर मैं पहली बार कब भाई साहब से मिला था। संभवत: पहली बार मैं वर्ष १९६१-६२के आसपास मिलने गया था। वहीं पास के सीताराम बाजार में मेरे सहपाठी शांति प्रसाद पांडेय रहते थे। उनका संबंध राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से था। उन्होंने मुझे श्यामसुंदरजी तथा प्रभात प्रकाशन के बारे में बताया था। उन्हीं दिनों श्री देवेंद्र स्वरूप, सत्यनारायण बंसल आदि से परिचय हुआ था और कुछ समय तक शाखा में भी जाता रहा था। मेरे दिल्ली कॉलेज में अध्यापक होने के बाद ऐसे व्यक्तियों की एक दुनिया बनती चली गई। मैं अपनी पहली भेंट में कुछ संकोची-सा बना था; लेकिन जिस तरह मेरा स्वागत हुआ, ऐसा लगा कि वे मेरी ही प्रतीक्षा कर रहे हों। दिल्ली में ऐसा भाव-विभोर मिलन और वह भी पहली मुलाकात में, उनके प्रति मेरे मन में सम्मान का भाव उत्पन्न हो रहा था। भाई साहब मेरे बारे में पूछते रहे और मैं बताता गया। इस तरह आत्मीय संबंधों की एक मजबूत आधार-भूमि तैयार हो गई। लौटा और सीढ़ियों से उतरते सोचता गया कि मुझे इस अकेली दिल्ली में अपने घर जैसा आधार मिल गया है। मैंने इस निष्कर्ष को अपने जीवन के आगामी लगभग पचास वर्षों तक सच पाया।

प्रेमचंद पर मैंने शोध-कार्य वर्ष १९७०-७२ से शुरू कर दिया था। पी-एच.डी. का शोध-प्रबंध मैंने पूरा कर लिया था और मुझे अब कुछ नया करना था। मैं प्रेमचंद के बड़े पुत्र श्रीपत राय से मिला और 'प्रेमचंद : विश्वकोश' का कार्य शुरू किया। काम पूरा हुआ तो श्रीपत राय ने हाथ खड़े कर दिए। गंगाप्रसाद विमल अपने प्रगतिशील साथियों के दबाव में पहले ही साथ छोड़ चुके थे। मैं हतप्रभ रह गया। सारे काम पर पानी फिरता नजर आया। श्रीपत राय से मुझे ऐसी आशा न थी। मैं एक दिन 'प्रेमचंद : विश्वकोश' के दो खंडों की पांडुलिपि लेकर श्यामसुंदरजी से मिला और उनसे उसे प्रकाशित करने का आग्रह किया। उन्होंने बिना किसी सोच-विचार के तुरंत कहा कि प्रभात प्रकाशन को इसे प्रकाशित करके खुशी होगी। उनका यह निर्णय तब था, जब उन्हें इसका पूरा इतिहास मालूम था। कुछ मेरा कहा और कुछ अन्य लोगों द्वारा बताया हुआ। मेरे लिए यह मानसिक उथल-पुथल से मुक्ति थी, बड़ी राहत थी और मुझे तब इस कार्य की सार्थकता का बोध हुआ। असल में, सन् १९७२ से १९८० के बीच कई पत्रिकाओं में प्रेमचंद पर मेरे कई लेख/अप्राप्य कहानियाँ आदि प्रकाशित हो चुकी थीं और प्रगतिशील लेखकों का देशव्यापी झुंड मेरे विरोध में मोर्चा बनाकर खड़ा था। डॉ. नामवर सिंह तक ने कई मिथ्या आरोप लगाए और मुझे मालूम हुआ कि कुछ लोगों ने श्यामसुंदरजी पर 'प्रेमचंद : विश्वकोश' प्रकाशित न करने का दबाव डाला था। मैं तब ही नहीं, आज भी भाई साहब श्यामसुंदरजी की यह महानता समझता हूँ कि वे अपने निर्णय पर अटल रहे और उन्होंने पहली बार इतनी बड़ी तथा विवादास्पद बना दी गई दो खंडों वाली पुस्तक को प्रकाशित किया। यह उनकी प्रकाशन नीति का नैतिक प्रश्न था, जिसे वे जीवन भर निभाते रहे। प्रकाशक के रूप में वे सांस्कृतिक, राष्ट्रवादी, नैतिकतावादी, संस्कारवान् तथा विश्वस्त व्यापारिक नीति के निर्वाहक रहे और खुशी की बात है कि

यही संस्कार उन्होंने अपनी आनेवाली पीढ़ी को सौंपे तथा इसका ध्यान रखा कि वे उसका पूर्णतः पालन करें।

'प्रेमचंद : विश्वकोश' का प्रकाशन प्रभात प्रकाशन और मेरे जीवन—दोनों के लिए एक बड़ी घटना थी। इसके प्रकाशन से पूर्व मैं प्रेमचंद स्कॉलर के रूप में पहचाना जाने लगा था; परंतु मुझे वास्तविक प्रतिष्ठा 'प्रेमचंद : विश्वकोश' ने ही दी। हिंदी के श्रेष्ठतम लेखकों में से सर्वश्री नारायण चतुर्वेदी, जैनेंद्र कुमार, प्रभाकर माचवे, मन्मथनाथ गुप्त, विष्णुकांत शास्त्री, कल्याण मल लोढ़ा, धर्मवीर भारती, चंद्रकांत बांदिवडेकर, गोपाल राय एवं विष्णु प्रभाकर आदि अनेक साहित्यिक विभूतियों ने इसकी समीक्षा की और इस ग्रंथ को 'प्रेमचंद जन्म-शताब्दी' की सबसे बड़ी उपलब्धि माना। इसकी सिद्धि तब हुई, जब भारत के राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह ने कोलकाता जाकर 'भारतीय भाषा परिषद्' (कोलकाता) का सर्वश्रेष्ठ पुस्तक का पुरस्कार अपने कर-कमलों से मुझे प्रदान किया। मेरे लिए यह गौरव की बात थी कि राष्ट्रपति सम्मानित कर रहे हैं और प्रो. विष्णुकांत शास्त्री पुरस्कार-प्रशस्ति का वाचन कर रहे हैं। इस सबका श्रेय श्री श्यामसुंदरजी को था, जिन्होंने मेरी अकल्पनीय कल्पना तक को जीवंत बना दिया था। इस 'प्रेमचंद : विश्वकोश' ने मुझे देश-विदेश में प्रेमचंद के बॉसवेल के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया, जो मैंने न कभी सोचा था और न कभी ऐसा कोई विचार मेरे मन में आ सकता था।

'साहित्य अमृत' पत्रिका का प्रकाशन उनका बड़ा निर्णय था और उसके साथ पं. विद्यानिवास मिश्र, डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी तथा डॉ. त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदीजी को जोड़ना बड़ी उपलब्धि है, लेकिन यह भी कम बड़ी उपलब्धि नहीं थी कि पत्रिका को हिंदी की लोकप्रिय साहित्यिक पत्रिका बनाया और अभी तक इसमें अपनी पुस्तकों की समीक्षाएँ प्रकाशित नहीं कीं। 'साहित्य अमृत' आज हिंदी की सबसे अधिक छपनेवाली साहित्यिक पत्रिका है, जिसकी और श्रेष्ठ विशेषांक प्रकाशित करने की लंबी परंपरा है।

इस अकल्पनीय सफलता ने मेरे मन में श्यामसुंदरजी के प्रति और भी अधिक श्रद्धा भाव उत्पन्न किया और मैं उन्हें अपने सुख-दुःख का साथी बनाता गया। वे भी बड़े भाई के समान कभी समझाते, कभी सुझाव देते, कभी जीवन की सच्चाइयाँ बताते और मैं उलझनों को सुलझाता हुआ लौटता। जीवन में एक-दो प्रसंग ऐसे भी आए, जब वे मेरे घर आए, बच्चों से मिले, पत्नी एवं पुत्रवधू से मिले और जीवन को देखने के सही दृष्टिकोण को समझाकर गए। उनके पास जीवन की हर समस्या का हल था—कर्म और केवल कर्म तथा जीवन को सकारात्मक दृष्टि से देखना। विरोध के बावजूद नम्रता तथा तर्क की बात करना और ईश्वर में विश्वास रखना। अब तो जब भी प्रभात प्रकाशन जाना होता, पूर्ववत् जलेबी-समोसा एवं चाय से सदैव स्वागत होता। वे बहुत प्रेम से खिलाते। मुझसे बड़े थे—आयु में, ज्ञान में, अनुभव में और सभी क्षेत्रों में; परंतु आनेवाले को प्रेम, आदर, सत्कार सब देते रहते। उनके पास अक्षय निधि थी; कम क्या होती, सदैव बढ़ती रहती थी और इसी जीवन-दर्शन से वे चावड़ी बाजार से आसफ अली रोड के भव्य भवन में अपनी प्रकाशन संस्था को स्थापित कर पाए। मैंने उनकी इस विकासात्मक यात्रा को देखा है कि कैसे शांतिपूर्ण कर्मशीलता से उन्होंने अपने व्यापार की मीनार को ऊँचा किया है, कैसे अपने लेखकों को पारिवारिक स्नेह व विश्वास दिया है और कैसे ज्ञान के सागर को रत्नों से भरते रहे हैं।

जाने-माने साहित्यकार। इकतालीस वर्षों से दिल्ली विश्वविद्यालय में अध्यापन। अब तक प्रेमचंद पर बाइस तथा अन्य साहित्यकारों पर बीस पुस्तकें प्रकाशित। एक नवीनतम विषय 'गांधी की पत्रकारिता' पर एक पुस्तक। प्रेमचंद साहित्य के विशेषज्ञ के रूप में ख्यात। विभिन्न संस्थाओं, एकेडमियों द्वारा सात पुरस्कार तथा मॉरीशस से एक पुरस्कार से सम्मानित। संप्रति केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा के उपाध्यक्ष।

'साहित्य अमृत' पत्रिका का प्रकाशन उनका बड़ा निर्णय था और उसके साथ पं. विद्यानिवास मिश्र, डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी तथा डॉ. त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदीजी को जोड़ना बड़ी उपलब्धि है, लेकिन यह भी कम बड़ी उपलब्धि नहीं थी कि पत्रिका को हिंदी की लोकप्रिय साहित्यिक पत्रिका बनाया और अभी तक इसमें अपनी पुस्तकों की समीक्षाएँ प्रकाशित नहीं कीं। 'साहित्य अमृत' आज हिंदी की सबसे अधिक छपनेवाली साहित्यिक पत्रिका है, जिसकी और श्रेष्ठ विशेषांक प्रकाशित करने की लंबी परंपरा है।

भाई साहब की अनेक स्मृतियाँ मेरे मन में हैं। उनसे देश, समाज, धर्म, साहित्य, संस्कृति आदि पर अनेक बार बातें हुईं और सदैव उनके विचार स्पष्ट व तर्कसंगत होते थे। वे साहित्य के प्रकाशक ही नहीं थे, उन्होंने साहित्य को जिया भी था। उन्होंने मानवीयता एवं मानवीय संबंधों की डोरी को कभी छोड़ा नहीं, मर्यादा एवं अनुशासन को कभी त्यागा नहीं और लेखकों-मित्रों-साथियों की व्यापक दुनिया को कभी कम नहीं होने दिया। वे एक थे, लेकिन उनके पास अच्छे लोगों की बड़ी दुनिया थी। मैंने उनके तीनों पुत्रों में उनके संस्कार देखे हैं। प्रसन्नता है कि भाई साहब श्यामसुंदरजी अपनी संतति में सदैव जीवित रहेंगे और उनकी शारीरिक अनुपस्थिति में भी उनकी जीवंत अनुभूति होती रहेगी।

'प्रेमचंद : विश्वकोश' को मैं संशोधित व परिवर्धित कर चुका हूँ और वह वर्ष २०२० में प्रकाशित हो जाएगा। एक भाई के रूप में यह उनकी स्मृति में मेरी श्रद्धांजलि होगी।

साअ

ए-९८, अशोक विहार,
फेज प्रथम, दिल्ली-११००५२
दूरभाष : ९८११०५२४६९

बाँसुरी का कमाल

• पुष्पेश कुमार पुष्प

रामनाथ को बाँसुरी बेचते हुए करीब बीस वर्ष हो गए। लेकिन जबसे उसका बेटा सोनू काम पर जाने लायक हो गया है तबसे रामनाथ केवल अपनी पसंद का बाँस लाता और बड़ी मेहनत से बाँसुरी बनाता। सोनू शाम तक सारी बाँसुरियों को शहर में जाकर बेच देता है। आज जब सोनू ने रामनाथ से कहा, ''बाबा! आज भी सारी बाँसुरी बिक गईं।''

तब रामनाथ मुसकराकर बोला, ''बेटा, तू बाँसुरी बजाता ही इतनी अच्छी है। देखना एक दिन तू बहुत बड़ा बाँसुरी वादक बनेगा। दूर-दूर तक तेरे जैसा बाँसुरी बजानेवाला कोई नहीं होगा। पूरे राज्य में तेरा नाम फैल जाएगा। बस प्रतिदिन एक घंटा जरूर अभ्यास किया करो। अच्छा जरा वो सवेरेवाली धुन तो बजाकर सुना दे, जो मैंने तुझे कल सिखाई थी।''

यह सुनकर सोनू उदास स्वर में बोला, 'अभी मैं बहुत थका हूँ और वह धुन मुझे अच्छी तरह बजानी भी नहीं आती।'

रामनाथ बोला, 'ठीक है बेटा तू थका है। लेकिन अभ्यास जरूरी है। चल, कोई और धुन ही सुना दे।'

सोनू बोला, 'बाबा, मैं आपसे कई बार कह चुका हूँ कि मैं सारी उम्र आपकी तरह बाँसुरी नहीं बेचना नहीं चाहता। इससे मिलता ही क्या है? मैं सोच रहा हूँ कि कोई और काम-धंधा करूँ?'

सोनू की बातें सुनकर रामनाथ को बड़ा दुःख हुआ और समझाते हुए बोला, 'बेटा, तू समझता नहीं है। यह कला तुझे कितनी धन-दौलत और मान-सम्मान दिलाएगी। तेरी उँगलियों में गजब की जादू है। बस, जरा-सी लगन चाहिए। तुझे कोई और काम करने की आवश्यकता नहीं है। अच्छा, जरा आज की बनाई बाँसुरियों की जाँच कर ले। ठीक भी बनी हैं या नहीं?'

सोनू बेमन से बाँसुरियों की जाँच करने लगा और रामनाथ बाँसुरियाँ बनाने में लग गया। दिन-रात के अथक परिश्रम से रामनाथ ने ढेर सारी बाँसुरियाँ बनाकर रख दीं। रामनाथ को किसी आवश्यक काम से राजधानी जाना था।

अगली सुबह, जब सोनू सोकर उठा, तो देखा रामनाथ यात्रा की तैयारी कर रहा है। रामनाथ ने सोनू को समझाते हुए कहा, 'मैं किसी आवश्यक काम से राजधानी जा रहा हूँ। ईश्वर ने चाहा, तो आकर खुश-खबरी दूँगा। मेरे जाने के बाद भी तू बाँसुरियाँ बेचते रहना।' रामनाथ ने एक बड़ी पेटी की ओर इशारा करते हुए कहा, 'इस पेटी में छोटी-बड़ी ढेर सारी बाँसुरियाँ हैं। इनमें कुछ खराब भी हैं। खराब बाँसुरियों को बेचना मत। उनके सुरों में कुछ गड़बड़ियाँ हैं। आकर ठीक करूँगा और रामनाथ राजधानी की ओर रवाना हो गया।

सोनू अकेला रह गया। वह सुबह-सुबह घर से निकलता और शाम को बाँसुरियाँ बेचकर वापस घर आ जाता। इस प्रकार कुछ ही दिनों में उसकी सारी बाँसुरियाँ बिक गईं। अब सोनू सोच में पड़ गया कि बाँसुरियाँ भी खत्म हो गईं और बाबा भी अभी तक राजधानी से वापस नहीं लौटे। क्यों न बेकार पड़ी बाँसुरियों में से अच्छी-अच्छी बाँसुरियों को चुन लूँ। सोनू पेटी में पड़ी बाँसरियों को उठा लाया। एक-एक बाँसुरी की जाँच करने लगा। कुछ खराब बाँसुरियों की उसने मामूली काट-छाँट से ठीक भी कर लिया।

अचानक सोनू के हाथ में एक बेढंगी-सी बाँसुरी आ गई। वह मोटी और छोटी थी। बीच में मुड़ी हुई भी थी।

'यह कैसी विचित्र बाँसुरी है?' उसने उस बेढंगी बाँसुरी को बजाने का प्रयास किया। लेकिन उसमें से कोई आवाज नहीं निकली। सोनू ने अपने औजार से बाँसुरी के छिद्रों में कुछ परिवर्तन किया और उसके मुँह पर फूँक मारी, तो एक अजीब-सी आवाज निकली। अचानक ऐसी आवाज सुनकर स्वयं सोनू भी चकित रह गया। तभी उसे काँच टूटने की आवाज सुनाई पड़ी। उसने आसपास निगाह डाली, तो यह देखकर दंग रह गया कि कमरे में सारे काँच टूटे पड़े थे।

'क्या ये काँच बाँसुरी के स्वर से टूटे हैं?' वह सोच में पड़ गया। उसने प्रयोग करने के लिए अपने घर से दूर एक मकान के पास जाकर फिर बाँसुरी बजाई। फिर पहले जैसा एक तीखा और अजीब स्वर निकला। साथ ही उस मकान के सारे काँच टूटकर बिखर गए। यह सब उस विचित्र बाँसुरी का कमाल था। वह सारी रात उस विचित्र बाँसुरी के बारे में सोचता रहा। सुबह उठा तो उसकी आँखों में चमक थी और मुख पर मुसकुराहट। उसने निश्चय कर लिया कि वह अब बाँसुरी नहीं बेचगा। अब काँच का व्यापार कर मालामाल हो जाएगा। उसने अपनी सारी जमा पूँजी से ढेर सारे सफेद और रंगीन काँच खरीद लिये। वह सोचने लगा, 'आज शाम तक मैं मालामाल हो जाऊँगा। फिर बाबा को बता दूँगा कि पैसा कैसे कमाया जाता है?'

शीशे भरे ठेले और वह बाँसुरी ले, सोनू नगर के प्रमुख चौराहे पर गया। वहाँ अधिकांश दुकान और मकान में शीशे लगे हुए थे। यह

देखकर सोनू मन-ही-मन प्रसन्न हो रहा था कि अभी कुछ ही समय में ये सारे शीशे की खिड़कियाँ और काँच की अन्य वस्तुएँ विचित्र बाँसुरी के स्वर से टुकड़े-टुकड़े हो जाएँगे। लोग गिड़गिड़ाते हुए मेरे पास आएँगे और मैं उनसे शीशे का मुँहमाँगा दाम लूँगा।

पर यह क्या सोनू के बाँसुरी बजाते ही खन-खन कर शीशे टूटकर गिरने लगे। कुछ देर बाद सोनू ने बाँसुरी बजाना बंद किया और चारों ओर निगाह डाली। उसने देखा कि सभी घरों, दुकानों यहाँ तक कि मोटरों और बसों की खिड़कियों के शीशे टूट गए थे। जिधर भी निगाह उठाता, उधर ही टूटा-फूटा नजर आ रहा था। वह अपनी इस सफलता पर फूला नहीं समा रहा था। फिर थोड़ा घबराया। फिर बोला, 'मुझे क्या! मेरा कमाई का समय आ गया है। बल्ब, घड़ियाँ वगैरह तो मेरे पास हैं नहीं। खिड़कियों के शीशे बेचकर ही पैसा कमाऊँगा।' किंतु यह क्या? उसने जैसे ही ठेले पर से काँच उठाने का प्रयास किया। उसके पैरों तले से जमीन खिसक गई। कई वर्षों की मेहनत की कमाई से खरीदे गए सारे काँच टुकड़े-टुकड़े हो गए थे। उत्तेजना में उसे इस बात का ध्यान न रहा कि बाँसुरी के स्वर से केवल अन्य लोगों के काँच नहीं टूटेंगे, बल्कि उसके काँच भी टूट जाएँगे।

तभी सोनू ने देखा कुछ लोग गुस्से से आग-बबूला होकर उसकी ओर दौड़े आ रहे हैं। उन्हें पता चल गया था कि उसकी बाँसुरी के स्वर से ही सारे काँच टूट गए। लोगों ने सोनू से अपने हुए नुकसान की भरपाई करने को कहा। पर सोनू के जेब में तो फूटी कौड़ी भी नहीं थी। यह देखकर सब लोग उस पर टूट पड़े। वह बेहोश हो गया। जब होश आया तो वह अपने को घर के बिस्तर पर पड़ा पाया। वह दर्द से कराह रहा था। उसके शरीर पर जगह-जगह पट्टियाँ बँधी थीं। रामनाथ सिराहने पर बैठा था। सोनू को होश में आते देख, उसने अपनी आँखें पोंछते हुए कहा, 'भगवान का लाख-लाख शुक्र है कि मैं सही समय पर आ गया। वरना अनर्थ हो जाता।'

रामनाथ को उसने सारी कहानी सुना दी और पश्चाताप का आँसू बहाने लगा। रामनाथ उसे शांत करते हुए बोला, 'बेटा, यह कला तूझे कितना बड़ा सम्मान दिलानेवाली है। तू नहीं जानता। महाराज तक तुम्हारी कला की बात पहुँच गई है। इस वर्ष के राजकीय उत्सव में बाँसुरी बजाने के लिए महाराज ने तुम्हें बुलावा भेजा है। तू जल्दी से स्वस्थ हो जा, फिर अपनी बाँसुरी के स्वर राजदरबार में सुनाना।'

सोनू के आँखों में खुशी के आँसू छलक आए। उसमें एक अच्छा कलाकार बनने के भावना जाग उठी। वह दिन-रात बाँसुरी से नई-नई धुनें निकलता और घंटों अभ्यास किया करता। वह दिन भी आ गया, जब रामनाथ और सोनू राजकीय उत्सव में भाग लेने के लिए राजधानी रवाना हो गए।

राजदरबार में सोनू ने बाँसुरी की तान ऐसी छेड़ी की सभी सुननेवाले अपनी सुध-बुध खो बैठे। सभी मंत्रमुग्ध हो झूमने लगे। मुख पर प्रसन्नता की लहर दौड़ गई। किसी को समय का ध्यान भी न रहा। अंत में राजा ने कहा, ''मैंने बाँसुरी की बहुत धुनें सुनी हैं, पर बाँसुरी की ऐसी मधुर धुन आज पहली बार सुनी है। हमने सुना है कि तुमने एक बार ऐसी बाँसुरी बजाई कि सारे शीशे टूट गए। हमें विश्वास नहीं हो रहा। हम उस कमाल को अपनी आँखों देखना चाहते हैं।'

सोनू हाथ जोड़कर बोला, 'महाराज, वह तो मेरे साथ एक दु:खद घटना घटी थी जिसका प्रायश्चित मैं आज तक कर रहा हूँ। बाँसुरी का वह रूप मुझे प्रिय नहीं। संगीत का काम जोड़ना है तोड़ना नहीं। उस दु:खद घटना को दुबारा दोहराना नहीं चाहता।'

यह सुनकर राजा सोनू से बहुत प्रभावित हुआ और कहा, 'तुमने ठीक कहा। संगीत का काम तोड़ना नहीं जोड़ना होना चाहिए।'

महाराज ने सोनू को ढेर सारे उपहार दिए। रामनाथ और सोनू के रहने की व्यवस्था राजधानी में ही करवा दी। सोनू राजदरबार में बाँसुरीवादक के रूप में नियुक्त हो गया और दोनों वहीं आराम से रहने लगे। उसके नाम की चर्चा दूर-दूर तक होने लगी।

विनीता भवन, निकट बैंक ऑफ इंडिया,
काजीचक, सवेरा सिनेमा चौक,
बाढ़-८०३२१३ (बिहार)
दूरभाष : ०९१३५०१४९०१

लघुकथा

गाय की गति

● सत्य शुचि

मौसम में तेज हवाओं का दौर हावी था और गली में सरकारी खंभों के तारों में आपसी टकराव से स्पार्किंग बंद नहीं हो पा रही थी। यह सिलसिला काफी दिनों से जारी था। बार-बार तारों से निकलती चिंगारियों से गली का वातावरण अभी भयावह बना हुआ था।

हालाँकि समय-समय पर विद्युत् विभाग को गलीवासियों ने चेताया भी था, किंतु उसने गौर नहीं किया और देखते-देखते एक दिन जब बिजली करंट से पॉल के नीचे बैठी उस गाय ने तड़पते-तड़पते दम तोड़ा था, तभी विभाग की नींद खुली।

···अब गाँववालों ने उपस्थित हुए विद्युत् अभियंता को खंभे से बाँधकर मरी गाय की मानिंद स्पार्किंग के इंतजार में उनके इर्द-गिर्द लोग जमा हो चुके थे।

"···आखिर, बिजली करंट का खामियाजा अकेली गाय ही क्यों भुगते!" एक जागरूक नागरिक ने विद्युत् अभियंता को निहारते-निहारते तंज कसा।

साकेत नगर, ब्यावर-३०५९०१ (राजस्थान)
दूरभाष : ९४१३६८५८२०

नियमों की अवहेलना न करनेवाले अधिकारी

● लक्ष्मीनिवास झुंझुनवाला

आदरणीय चतुर्वेदीजी नहीं रहे। साठ वर्ष की उनकी स्मृतियाँ मस्तिष्क को झकझोर रही हैं। सन् १९६० की बात है। राजस्थान में श्री ए.के. राय मुख्य सचिव थे। मोहन मुखर्जी अर्थ सचिव थे। चतुर्वेदीजी उद्योग विभाग में अधिकारी थे। सुखाड़ियाजी मुख्यमंत्री थे। बड़ी कठिनाई से मुझे भीलवाड़ा में सूत कातने के उद्योग के बारह हजार तकुओं का लाइसेंस मिला। 'राजस्थान स्पिनिंग' के नाम से कंपनी बनी। राजस्थान सरकार ने कंपनी के पाँच लाख रुपए के शेयर लिये थे तथा राजस्थान सरकार के प्रतिनिधि के रूप में कंपनी के संचालक मंडल में एक सदस्य चतुर्वेदीजी को नामित किया गया। तब मैं कलकत्ता में रहता था। वे संचालक मंडल की बैठक के लिए कलकत्ता आते थे। नियम से तो हम उन्हें पंचतारा होटल में ठहराते, पर वे कहते—'नहीं, मैं आपके घर ठहर जाऊँगा। कंपनी के रुपए क्यों खर्च किए जाएँ।' उस समय हमारे पास एक छोटी गाड़ी थी। वे कॉलेज लेकर जाते। वहाँ पुरानी पुस्तकों की कई दुकानें थीं, उनके चक्कर लगाते तथा पुस्तकें खरीदते। उनके साथ पुस्तकों के वातावरण में आनंद आता था। मैं तिब्बत घूमने जाना चाहता था। मैंने तिब्बत पर एक बहुत अच्छी किताब के बारे में सुन रखा था, पर वह नहीं मिल रही थी। मैंने उनको बताया तो उन्होंने कहा कि जब अगली बैठक के लिए कलकत्ता आऊँगा तो हम लोग खोजेंगे। वे मुझे एक पुस्तक की पुरानी दुकान में ले गए, वहाँ तिब्बत पर तीन पुस्तकें मिल गईं। पुस्तक की कीमत नई पुस्तक से तीन गुनी थी, क्योंकि नई पुस्तक छपती नहीं थी।

हमारी घनिष्ठता बढ़ती गई। कुछ लोगों ने शिकायत की कि वे मेरे घर ठहरते हैं तो मैं उनसे नाजायज फायदा उठाता हूँ। पर उन्होंने कोई परवाह नहीं की। उनकी पत्नी अत्यंत बीमार थीं। खर्च भी बहुत हो रहा था। वे आर्थिक संकट में आ गए। मैं उनके संकट को देख रहा था। मेरे बहुत दबाव देने पर भी उन्होंने मुझसे कोई आर्थिक सहायता स्वीकार नहीं की। मैंने कहा कि उधार ले लीजिए, फिर वापस कर दीजिएगा, पर उन्होंने कोई सहायता नहीं ली। उनकी पत्नी का देहांत हो गया।

वे दिल्ली के मुख्य सचिव बनकर कलकत्ता आए। रामकृष्ण मिशन के वरिष्ठ संन्यासी स्वामी आत्मानंद महाराज ने कैलाश-मानसरोवर का कार्यक्रम बनाया। हम लोग बारह आदमी उनके साथ हो गए। वहाँ जाने के लिए सरकार से अनुमति लेनी पड़ती थी। उन्होंने कहा कि चार आदमियों की अनुमति मैं दे सकता हूँ। तीन टोलियों में आपको जाना पड़ेगा। एक साथ आप लोग नहीं जा सकते। सभी आत्मानंदजी के साथ जाना चाहते थे। आखिर कार्यकम रद्द ही करना पड़ा। चतुर्वेदीजी ने नियम की अवहेलना आत्मानंदजी के लिए भी नहीं की, पर आत्मानंदजी ने हम दस लोगों को लेकर १८ दिन की गंगोत्तरी, यमुनोत्तरी, तुंगनाथ, बदरीनाथ और केदारनाथ की यात्रा की। अमेरिका के शिकागो में रामकृष्ण केंद्र के सचिव स्वामी आस्थानंदजी भी हम लोगों के साथ गए; बड़ा आनंद आया।

मेरे एक फ्रांसीसी मित्र वाक्लियार थे। वे भारत में रम गए थे। भारतीय संगीतकार उनके घर ठहरते। वाक्लियार शेखावाटी (राजस्थान) की यात्रा करते, पुरानी हवेलियों को देखते। उन हवेलियों पर एक अच्छी पुस्तक छापी। उन हवेलियों के सभी मालिक समृद्ध थे। वे बंबई व कलकत्ता में रहते थे। उन सबने पुस्तक खरीद ली। वाक्लियार भारतीय नागरिकता लेने के लिए अत्यंत इच्छुक थे। मैंने उन्हें चतुर्वेदीजी से मिलवाया। चतुर्वेदीजी ने मुझे बुलाया कि विदेशी लोग जासूसी करने के लिए ये सब नाटक करते हैं। मैंने उन्हें जोर देकर कहा कि मैं दस साल से इस व्यक्ति को जानता हूँ। भारत के वातावरण में यह आनंद से ओत-प्रोत हो गया है। उन्होंने उस व्यक्ति की पूरी जाँच करवाई। आखिरकार उन्होंने उसे भारतीय नागरिकता प्रदान करवा दी।

१७ अक्तूबर, १९२८ को ग्राम मुकुंदगढ़ (राजस्थान) में जन्म। कलकत्ता विश्वविद्यालय से स्नातक, गणित ऑनर्स में स्वर्ण पदक प्राप्त, एम.ए.। औद्योगिक जगत् में रहकर भी सांस्कृतिक कार्यों में सक्रिय योगदान; अनेक सांस्कृतिक संस्थानों से जुड़े हुए हैं।

शिवचरण माथुर भीलवाड़ा के थे। सन् १९६० में जमीन आदि दिलवाने में उन्होंने मेरी बहुत मदद की थी। उन दिनों मैं लगातार तीन-चार सप्ताह भीलवाड़ा में रहता था। शिवचरणजी राजनीति में सक्रिय थे। वे स्वतंत्रता-संग्राम में अपना सर्वस्व हवन करनेवाले श्री माणिकलाल वर्मा के जामाता थे। शाम को मैं, शिवचरणजी तथा भीलवाड़े के न्यायाधीश रणछोड़ दासजी गट्टानी साथ घूमते थे। मैं सर्किट हाउस में ठहरता था। उन दिनों शिवचरणजी भिन्न-भिन्न विषयों पर भीलवाड़ा में गोष्ठियाँ करते थे। एक बार उन्होंने मुझे भी मुख्य वक्ता के रूप में आमंत्रित किया। मैंने भाषण दिया, जिसमें सरकारी कर्मचारी भी उपस्थित थे। एक उद्योगपति का इतनी शान देखकर सब अत्यंत प्रभावित हुए। इसके बाद से अधिकारियों का भरपूर सहयोग मिलने लगा। उसके पश्चात् शिवचरणजी मुख्यमंत्री बन गए। कांग्रेस का श्रमिक संघ अत्यंत उग्र हो गया। उन्होंने मिल में हड़ताल करवा दी। मैंने इंडस्ट्रियल फाइनेंस कॉरपोरेशन व इंडस्ट्रियल डवलपमेंट बोर्ड के अध्यक्ष को स्थिति समझा दी। उन्होंने मुझे भरोसा दिया कि आप जो कर रहे हैं, वह उचित है। मैं अपने निर्णय पर अटल रहा और शिवचरणजी का विरोध करता रहा। शिवचरणजी माथुर ने राजस्थान सरकार द्वारा मिल ले लेने का निर्णय लिया। प्रदेश सरकार को केंद्रीय सरकार की अनुमति लेनी पड़ती है। उस समय चतुर्वेदीजी प्रधानमंत्री कार्यालय में थे। प्रदेश सरकार का मिल लेने का बिल उनके पास आया। उन्होंने मुझे बुलाया और कहा कि देखो, यह राजनीति व उद्योग की लड़ाई है। यदि तुम लड़ाई करना चाहते हो तो राजनीति में उद्योग-व्यापार छोड़कर आओ, अन्यथा मैं शिवचरणजी से बात कर तुम्हारी समस्या का उचित समाधान करा देता हूँ। शिवचरणजी का फोन आया कि आपकी समस्या पर चतुर्वेदीजी का फोन आया था। मैं परसों दिल्ली आ रहा हूँ। आप मुझसे मिलने आइए। मैं उनसे मिला। उनका रुख अत्यंत सहानुभूति वाला हो चुका था। समस्या का समाधान हो गया।

इंदिरा गांधी की हत्या हुई तो कांग्रेस ने सिक्खों की हत्या करवानी शुरू कर दी। दिल्ली में मेरे मित्र सोंधी डॉक्टर थे। उनकी पत्नी यूरोप की थीं। मेरे घर के पास ही रहते थे। वे अत्यंत भयभीत थे। मैंने उन्हें गाड़ी में छिपाकर अपने घर लाकर रखा। मैंने चतुर्वेदीजी को फोन पर सारी बात बताई। उस समय वे मुख्य सचिव थे। उन्होंने स्पष्ट कहा कि मुझ पर और सरकार पर भरोसा मत कीजिए। आप जो कुछ भी मदद कर सकते हो, कीजिए। आखिरकार वे भारत छोड़कर यूरोप में ही बस गए।

चतुर्वेदीजी तिब्बत पर चिंतित थे। कई गोष्ठियों में वे तिब्बत पर अपने विचार रखते थे। दलाई लामा का मुझसे अत्यंत स्नेह था। प्रायः उनसे मिलना होता तो चतुर्वेदीजी से भी चर्चा करता।

मुझे गांधीजी द्वारा श्रीअरविंद की अवहेलना को लेकर असंतोष था। मुझे लगता था कि यदि गांधी श्रीअरविंद की बात सुनते तो विभाजन नहीं होता। चतुर्वेदीजी से इस विषय पर चर्चा हुई। मैंने कांग्रेस अधिवेशन, सूरत की चर्चा की। उन्होंने कहा कि आप इस विषय पर एक लेख लिखिए, मैं 'साहित्य अमृत' में छापूँगा। मैंने लेख लिखकर दिया और उन्होंने छापा। उन्होंने जरा भी परवाह नहीं की कि वे महात्मा की आलोचना का लेख छाप रहे हैं। उन्होंने कहा कि इस विषय पर एक गोष्ठी करेंगे और पांडिचेरी आश्रम से किसी विद्वान् को भी आमंत्रित करेंगे।

गोडसे पर एक लेख लिखा। उन्होंने कहा कि इसे अंग्रेजी में लिखिए व 'साउथ एशिया पॉलिटिक्स' में छपवाइए। जनवरी २०२० के अंक में वह छपा है। मेरा दुर्भाग्य है कि यह लेख देखने के लिए वे मौजूद नहीं हैं।

मेरे जीवन में उच्च सरकारी अधिकारियों से मेरा काम पड़ा है, पर उनके जैसा ईमानदार, उचित सलाह देनेवाला अधिकारी मैंने नहीं देखा है। उनको राजस्थानी भोजन अत्यंत पसंद था। वे मेरे घर अपने पुत्र के साथ आते और भोजन करते, मेरे पुस्तकालय में पुस्तकें देखते और कुछ ले लेते। मुझे कभी लगा ही नहीं कि यह व्यक्ति इतने ऊँचे ओहदों पर रहा—कर्नाटक का राज्यपाल रहा, 'पद्मभूषण' से सम्मानित हुआ, पर इतना सरल। मैं बीमारी में उन्हें देखने गया। वे साधारण अस्पताल में थे। उनकी स्थिति गंभीर थी। वे ईश्वर की कृपा से ठीक होकर घर आ गए। मैं उनसे मिलने गया, वे कमजोर थे, पर उनका मानसिक स्वास्थ्य ठीक था। कुछ दिन बाद उन्हें भोजन पर आने के लिए फोन किया तो अतुल ने बताया कि वे फिर अस्पताल में भरती हो गए हैं, उनकी स्थिति गंभीर है। मुझे एक विवाह समारोह में जयपुर जाना था। वहाँ से लौटा तो पता लगा कि उनका स्वर्गवास हो गया है, कल दाह-संस्कार होगा। दाह-संस्कार से लौटकर यह लेख लिखने बैठा। मन दुःखी है, पर यह सोचकर संतोष होता है कि मानव की जन्म-जन्मांतर की यात्रा होती है। उन्होंने अगले जन्म की अत्यंत पक्की नींव डाली है। वे अनंत-यात्रा में जीवन की और ऊँचाइयाँ छूएँगे। ईश्वर की लीला अद्भुत है।

भीलवाड़ा टावर्स, ए-१२,
सेक्टर-१, नोएडा-२०१ ३०१
दूरभाष : १२०-४३९०३००

दो फूल खुशनुमा से, एक डाल पर खिले थे

● **मोहिनी गर्ग**

"अरे मुन्ना! रुक जा···" लगभग भागते हुए माँ जीने की ओर दौडीं, पर जब तक वे वहाँ पहुँचतीं, मुन्ना तो यह गया और वह गया। माँ वापस कदम उठाते हुए अम्माजी के पास जाकर बैठ गईं, कहने लगीं, "अम्माजी, मैंने मुन्ना को पैसे देने से मना कर दिया था, पर आपने उसे दे दिए। पता नहीं कुछ ऊल-जुलूल खर्च करेगा।"

"अरी बहू दो पैसे ही तो माँगे थे, कौन सी बड़ी रोकड़ दे दी मैंने, कुछ चूरन-चटनी खा लेगा, बहुत गिड़गिड़ाकर कह रहा था, अम्माजी दो पैसे दे दो मुझे, मैंने भाभी (माँ) से माँगे थे, नहीं दिए, आप दे दो न।" माँ को अच्छा नहीं लगा था। केवल इतना "उसकी जिद पूरी हो जाती है, इसीलिए बहुत मनमानी करता है।" कहते हुए धुले हुए सूखे कपड़ों की तह करने लगीं। कपड़े अंदर रखकर अम्माजी के पास शाम के भोजन के लिए सब्जी काटने बैठ गईं। दिन ढलने लगा था। अभी पंद्रह-बीस मिनट ही बीते होंगे कि बहुत जोर से धमाका हुआ, लगा जैसे बम फटा हो। माँ और अम्माजी दोनों का ही कलेजा धक से रह गया। "क्या हुआ?" कहती हुई माँ अंदर की ओर भागीं। अम्माजी ने जोर-जोर से शोर मचाना शुरू कर दिया। माँ ने देखा, रसोई की ओर से काला-काला धुआँ निकल रहा है। आगे बढ़ने की हिम्मत नहीं हुई, फिर रामसहाय (गृह सेवक) को आवाज लगाई, वह नीचे छोटे भाई को खिलाने ले गया था, वह भी आवाज सुनकर ऊपर ही आ रहा था। भइया को नीचे उतारकर भागता हुआ आया, "क्या हुआ भाभी? अँधेरा क्यों हो रहा है?"

माँ बोली, "पता नहीं, तू लालटेन लेकर आ, अंदर तो घुसा ही नहीं जा सकता।"

राम सहाय लालटेन जलाकर लाया, पर धुआँ इतना भयंकर था कि कुछ भी सूझ ही नहीं रहा था। टटोलते-टटोलते वह अंदर बढ़ा तो पत्थर से पैर टकरा गया, धुँधली सी रोशनी में एक छाया सी नजर आई, हाथ लगाया तो हाथ खून से भीगने लगे, कोई आवाज नहीं, साँस घुटने लगा, उसने दोनों हाथ से पकड़कर उठाया, आगे बढ़ते हुए देखा··· "अरे यह तो मुन्ना है।" चुपचाप! खून से सारा मुँह लहूलुहान। नीचे सिलबट्टा

जानी-मानी समाज-सेवी। एम.ए. तक शिक्षा प्राप्त। महिलाओं के उत्थान में सतत सक्रिय। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में कहानियाँ, आलेख आदि प्रकाशित।

पड़ा है, सिल के टुकड़े-टुकड़े हो गए हैं। "अरे, मुन्ना को क्या हो गया?" बाहर आने पर देखा तो मुन्ना सिर से पैर तक खून से लथपथ, मुँह से खून की धार बह रही है। माँ ने देखा तो "अरे मुन्ना।" कहती हुई बेहोश होकर गिर पड़ीं।

अम्माजी जोर से चिल्लाईं, "अरे, मेरे लाल को क्या हो क्या हो गया···क्या करूँ, कहाँ जाऊँ? हाय मे री तो किस्मत ही खराब है, करमहीन हूँ।" वे दहाड़ें मार-मारकर रोने लगीं।

घर सड़क किनारे ही था। धमाके की आवाज बाहर तक गई थी, शोर सुनकर घर में भीड़ इकट्ठी हो गई। मकान मालिक के बेटे मुन्ना को जल्द से गोद में उठाकर अस्पताल की ओर भागे। अस्पताल पहुँचकर डॉक्टर के पास आए। पहले तो डॉक्टर भी देखकर गंभीर हो गया। पर तुरंत एक्शन में आ गए, थियेटर में ले जाकर कपड़े उतारे, नर्स ने साफ किया, नाक से खून की धार लगातार बह रही थी, नाक में टॉर्च डालकर देखा तो अंदर ब्लॉक था। डॉक्टर ने फुरती से ऑपरेशन की तैयार की, नाक में चीरा लगाया, वहाँ पत्थर का टुकड़ा फँसा हुआ था, जिसे निकाला। वह तो ईश्वर का लाख-लाख शुक्र कि टुकड़ा बीच में ही था, डॉक्टर का कहना था कि यदि आधा इंच भी ऊपर चला जाता तो जान के लाले पड़ जाते। डॉक्टर ने नाक को पूरी तरह पैक कर दिया। मुन्ना बेहोश था, उसे इंजेक्शन लगाकर सोते रहने की हिदायत दी और एक दिन के लिए ऑब्जर्वेशन पर अस्पताल में ही रखा गया।

पिताजी को दफ्तर में ही खबर कर दी गई। उनका दफ्तर अस्पताल के पास ही था, वे भी आ गए। आने पर उन्हें स्थिति का पता चला। डॉक्टर साहब ने बताया कि बच्चा खतरे से बाहर है। पिताजी डॉक्टर

साहब को धन्यवाद करके मुन्ना को देखने गए।

घर की स्थिति की तो कल्पना ही की जा सकती है। मुन्ना को अस्पताल भेज माँ की सुध ली गई। पानी के छींटे मुँह पर डाल-डालकर उन्हें होश में लाया गया। होश में आते ही उनका रोना शुरू···मुन्ना कहाँ है ? उन्हें सारी बात समझाई गई, पर उन्हें तसल्ली कहाँ! छोटे भाई-बहन डरे हुए चुपचाप।

मुन्ना घर में जुड़वाँ भाई थे, मुन्ना से बड़े जग्गो (जगदीश) थे, जुड़वाँ होने पर जग्गो का चूँकि पाँच मिनट पहले जन्म हुआ, अत: जग्गो को बड़ा और मुन्ना को छोटा कहते थे। मुन्ना जितने चंचल जग्गो उतने ही शांत।

अस्पताल से घर आने पर मुन्ना बहुत सहमे हुए थे। दादी अम्मा बलाएँ ले रही थीं ईश्वर से प्रार्थना कर रही थीं 'जल्दी ठीक हो जाए।' माँ ने देखा तो तुरंत मंदिर में सुंदर कांड का अखंड पाठ और पाँच रुपए का प्रसाद चढ़ाने को कहा। दो दिन तक किसी ने कुछ नहीं कहा, पिताजी ने अम्माजी और माँ से सख्ती से कह दिया था कि कोई कुछ नहीं पूछेगा, न कुछ कहेगा।

पाँच दिन बाद मुन्ना कुछ नॉर्मल हुआ तो पिताजी ने गुस्सा पीते हुए सहज भाव से पूछा, "क्या हुआ था? ये सब कैसे हुआ? डरो मत, पूरी बात बताओ, तुम्हें पता है, सब कितने परेशान थे, तुम्हें कुछ हो जाता तो?" और प्यार से गोद में बैठा लिया। आश्वस्त होने पर मुन्ना ने सारी बात बताई, स्कूल में किसी सहपाठी ने बताया कि पोटाश और नौसद्दर को मिलाकर रगड़ें तो पटाका बनता है। इसी के लिए एक पैसे का पोटाश और एक पैसे का नौसद्दर लेकर सिलबट्टे पर रगड़ रहा था। धमाके के साथ फिर क्या हुआ, मुझे नहीं पता।

पिताजी ने सिर पर हाथ फेरते हुए कहा, "तुम नहीं जानते, ऐसे में आँखों की रोशनी जा सकती थी, कानों के परदे भी फट सकते थे, ईश्वर की बड़ी कृपा रही जो बच गए, पर यह नाक का घाव भी भरने में समय लगेगा, अत: सावधानी बरतना और बड़ों का कहना मानना। जगदीश के साथ रहना। अब ऐसी हरकत मत करना और कभी भूलकर भी किसी की बातें में मत आना।" अम्माजी तो बेचारी अपने को ही अपराधी मानकर कोसे जा रही थीं। माँ मुन्ना के खाने-पीने, दवाई-ड्रेसिंग का गंभीरता से ध्यान रखता था।

कुछ समय बीता। गरमी की छुट्टियों का समय आ गया। नानी के घर जाने की तैयारी होने लगी। पिताजी ने माँ से कहा, "लालाजी (ससुर साहब) से कहना, गरमी में धूप में बाहर बहुत न खेले-कूदे। दोनों को पढ़ाने के लिए एक मास्टर लगा देंगे, मुन्ना का गणित कमजोर है। छुट्टियों में प्रैक्टिस हो जाएगी और पढ़ाई की दिनचर्या भी बनी रहेगी।" माँ ने स्वीकृति में सिर हिला दिया।

माँ अपने माता-पिता की इकलौती संतान थीं। लाला मेड़ीमल रईस जेवर के बहुत बड़े जमींदार थे। बहुत लाड़-प्यार में पली थीं, शादी होकर दूर हिमालय की तराई में जिला पीलीभीत के पास आई, पति सरकारी अफसर थे। शादी में विदा होते समय नानी ने रोते हुए दामाद से कहा था, 'लाला, मेरे पास बेटी को बुला भेजनेवाला कोई नहीं है, साल में एक बार मुझसे मिलवा दिया करना।' उन्होंने सिर हिलाकर उस समय हामी भरी थी। और वह दिन और आज तक हर वर्ष वे किसी चपरासी या सेवक के साथ गरमी की छुट्टियों में जेवर भेज देते थे और लेने के लिए चाहे एक दिन के लिए ही सही, स्वयं आते थे, ताकि ले भी जाएँ और उनसे मिलना भी हो जाए।

लगभग डेढ़-पौने दो महीने रहना हो जाता था। जेवर पहुँचने पर माँ के कहने पर चार-पाँच दिन बाद नानाजी ने ट्यूटर लगवा दिया। जग्गो तो अपना काम लगन से कर लेता, पर मुन्ना को अकसर डाँट खानी पड़ती।

एक दिन सांयकाल बच्चे मास्टरजी के साथ वहाँ के तालाब और बगीचे की सैर पर गए। खूब खेले-कूदे, बगीचे की सैर की, फिर तालाब के किनारे-किनारे घूमने लगे। मुन्ना बोला, "मास्टरजी, नीचे सीढ़ियों पर चलते हैं, वहाँ मछलियाँ भी होंगी।" और उनका हाथ पकड़कर नीचे की ओर चल पड़ा, पीछे-पीछे जग्गो भी। दूसरी सीढ़ी तक पहुँचते ही मुन्ना ने मास्टरजी को तालाब में धक्का दे दिया। वे पानी में छपाक। आस-पास बैठे लोगों ने देखा तो दौड़ते हुए आए···"अरे-अरे क्या हुआ?" जग्गो ने जोर से कहा, "मुन्ना···क्या किया तुमने?" और लाचार से खड़े रहे। वह तो गनीमत थी कि मास्टरजी को तैरना आता था। वे बाहर निकल आए। भीगे कपड़ों में झेंपते हुए पास आए लोगों से कहा कि "बच्चों को सेठजी के यहाँ पहुँचा दो, मैं कपड़े बदलकर आता हूँ।" वे लोग मास्टरजी को भी जानते थे और सेठजी को भी।

घर आकर जग्गो ने माँ को सब बात बताई, माँ ने लालाजी से कहा, उन्होंने मुन्ना को बुलाया। जोर से बोले, "क्यों किया यह सब?" मुन्ना निडर होकर बोला, "वे इतना सारा काम कराते हैं, कहते हैं, तुम्हारा राइटिंग अच्छा नहीं है, रोज दस पेज भरोगे, मैथ के इतने सारे सवाल रोजाना करवाते हैं। हम तो नानी के घर खेलने-कूदने, सैर-सपाटा करने आए हैं, रोज पढ़ाने आ जाते हैं, अब नहीं आएँगे, इसीलिए धक्का दिया।" नानाजी को थोड़ी सी तो हँसी आई, पर अपने पर काबू पाकर बोले, "तुमने मुझे क्यों नहीं बताया, मैं उन्हें मना कर देता। क्या कोई मास्टरजी के साथ ऐसा बर्ताव करता है? चलो कान पकड़ो और पचास उठक-बैठक करो।" मुन्ना थोड़ा डर गया था, कहीं मार न पड़ जाए, इसलिए उठक-बैठक करने लगा। अभी बीस तक ही पहुँचा होगा कि रुलाई छूट गई, जोर-जोर से रोने लगा। सजा तो दे दी, पर अब

नानाजी को भी दया आ गई, पास बुलाकर प्यार से गोद में बिठा लिया और आगे कोई ऐसी-वैसी हरकत करने से बाज आने को कहा।

जेवर के मशहूर दही-सोंठ के दही-वड़े, पकौड़ी और इमरती व पेड़े शाम को बाजार से मँगवाकर बच्चों को खिलाए। 'नौवीं' कक्षा में आने पर पिताजी ने खुर्जा एन.आर.ई.सी. कॉलेज में दोनों भाई जगदीश और मुन्ना (रघुवीर) दोनों को पढ़ने भेज दिया। वहाँ बच्चों के चाचाजी (पिताजी के छोटे भाई) भी एम.एस-सी. की पढ़ाई कर रहे थे। दोनों भाई होस्टल में रहने लगे, दोनों को खर्चे के लिए रुपए भेजे जाते, पर मुन्ना बाबू तो ठहरे मस्त-मौला, अपने हिस्से के पैसे खर्च करके भाई के पैसों पर भी हाथ मार लेते।

सुंदरता में दोनों एक-दूसरे से बढ़कर। मुन्ना बाबू पहनने, ओढ़ने से लेकर फैशन के भी शौकीन थे, सिल्क का कुरता पहनना और इत्र लगाकर कॉलेज जाते थे, कॉलेज में सब उन्हें 'ब्यूटी बाबू' कहकर बुलाते थे। हॉकी के बेहतरीन खिलाड़ी थे। इंटर कॉलेज कंपटीशन में कॉलेज के लिए शील्ड दिलाने में उनकी महती भूमिका रही।

मुन्ना बाबू (नाम रघुवीर शरण था, पर घर व रिश्तेदारों ने उन्हें इस नाम से नहीं बुलाया, बड़े हो या छोटे वे मुन्ना भाई सा., मुन्ना ताऊजी, मुन्ना चाचाजी के नाम से ही बुलाए गए) जैसे-तैसे दसवीं की परीक्षा पास कर वे वापस घर आ गए और आगे पढ़ने से मना कर दिया। घर आकर भी उनकी अलग ही ठसक थी। पानी में इत्र डालकर नहाते, खाना खाने ऊपर छत पर बैठते, रसोई नीचे थी, खाते समय रोटी एक-एक करके ही आनी चाहिए। यदि रोटी समाप्त होने तक दूसरी रोटी न आ पाए तो थाली नीचे आँगन में। दो-तीन बार फूल की थाली के टुकड़े-टुकड़े हो चुके थे, गुस्सा तो नाक पर रहता था।

शीघ्र ही मुन्ना बाबू की दिल्ली में सरकारी नौकरी लग गई। अंग्रेजी शासन में गोल मार्केट के पास चैंबरीज में फ्लैट (सूट) जो बैचलर्स के लिए बनाए थे, अलॉट हो गया।

जगदीश ने खुर्जा में ही अपनी बारहवीं (इंटर) पढ़ाई पूरी करके बी.ए., एल-एल.बी. करने इलाहाबाद चले गए। १९४२ के भारत छोड़ो आंदोलन में छात्र-आंदोलन में बहुत सक्रिय रहे। छात्र सत्याग्रह पर जब छात्रों पर गोलियाँ चलीं तो घबराकर बचते-बचाते घर आ गए, वहाँ कॉलेज-यूनिवर्सिटी भी बंद हो गई थी। कुछ समय बाद पढ़ाई पूरी हुई और वे पब्लिक प्रोसीक्यूटर बने, फिर ज्यूडिशियरी में आकर जज के पद से रिटायर हुए।

पिताजी ने दोनों भाइयों की शादी साथ-साथ की। दोनों की बारात एक साथ गई और दोनों बहुओं को साथ लेकर लौटी। हाँ, पंडितजी के मुहूर्त निकालने के कारण मुन्ना बाबू की शादी एक दिन पहले हुई और जगदीश की अगले दिन। एक वर्ष बाद मुन्ना बाबू की पत्नी ने पुत्ररत्न को जन्म दिया।

गरमी की छुट्टियों में माँ छोटे भाई और बहन को लेकर दिल्ली आई। पास ही बिरला मंदिर था, अभी बन ही रहा था। उसके पास ही गांधीजी हरिजन बस्ती में ठहरे थे, शाम की सभा में सब चले जाते थे। छोटा सा प्यारा भतीजा गोद में लेकर। चाँदनी चौक में खरीदारी के साथ ट्राम की सैर भी होती थी, सिनेमा भी देखते। देश के बँटवारे के समय दिल्ली में भी खून-खराबा हुआ, पहाड़गंज पास ही था। इसी बीच मुन्ना बाबू का ट्रांसफर शिमला को हो गया। लगभग पाँच वर्ष बाद पुन: ट्रांसफर होकर निर्माण भवन, दिल्ली में पोस्टिंग हुई और वे दिल्ली स्थायी रूप से आ गए। उनके एक पुत्र और एक पुत्री थे, बेटी की शादी हो गई। बेटा बहुत योग्य, होनहार रहा, पढ़ाई पूरी करके एक बड़ी कंपनी में नौकरी लग गई, उसकी भी शादी कर दी। बहुत ही सुगढ़, संस्कारी बहू लेकर आए थे। मुन्ना बाबू का घर स्वर्ग हो गया। सबका आदर-सत्कार, सम्मान करनेवाली, गृहकार्य में निपुण-चतुर, घर को सुंदर सजाकर रखनेवाली, सेवा करनेवाली बहू थी।

स्वभाव से हरफनमौला रहे मुन्ना बाबू बेटे की बहू आने के बाद बहुत धैर्य और संयम से रहने लगे। कभी कोई जिम्मेदारी न लेनेवाले, बिल जमा करने, बैंक के काम से लेकर बाजार के काम में भी हाथ बँटाने लगे।

तीनों के आने से पहले छोटी बहन, जो दिल्ली में रहती थी और बेटी, दोनों के पास समय से सिंधारा, घेवर आदि होली-दीवाली की मिठाई व सामान पहुँचाने का काम भी उन्होंने अपने ऊपर ले लिया था।

स्वभाव से हरफनमौला रहे मुन्ना बाबू बेटे की बहू आने के बाद बहुत धैर्य और संयम से रहने लगे। कभी कोई जिम्मेदारी न लेनेवाले, बिल जमा करने, बैंक के काम से लेकर बाजार के काम में भी हाथ बँटाने लगे।

तीनों के आने से पहले छोटी बहन, जो दिल्ली में रहती थी और बेटी, दोनों के पास समय से सिंधारा, घेवर आदि होली-दीवाली की मिठाई व सामान पहुँचाने का काम भी उन्होंने अपने ऊपर ले लिया था।

बेटे के भी बेटा हो गया और मुन्ना बाबू दोनों पति-पत्नी सोने की सीढ़ी चढ़ गए। खूब बड़ा उत्सव हुआ।

कभी-कभी मजाक में कह देते थे। मैं जगदीश भाई साहब कह तो देता हूँ, पर वे किस बात में बड़े हैं। देखो, नौकरी मेरी पहले लगी, शादी मेरी पहले हुई और लड़का भी मेरे पहले हुआ, वे तो मोटे थे मैं पतला, उनके वजन की वजह से मैं नीचे दब गया, नहीं तो जन्म भी मेरा ही पहले हुआ होता और अब जाने में भी पहल कर दी।

खुशियाँ बहुत दिन नहीं रहतीं। मुन्ना बाबू को अचानक हृदयाघात हो गया और इतना सीवियर कि डॉक्टर को घर बुला लाना तो दूर, डॉक्टर के पास पहुँचने का वक्त भी नहीं मिल पाया और···मुन्ना बाबू चले गए अनंत यात्रा की ओर। कोई कुछ भी कहे, पर मुन्ना बाबू स्पेशल थे, उनके जैसा दूसरा कोई नहीं।

२१३, गोल्फ लिंक्स, नई दिल्ली-११०००३
दूरभाष : ९८११९१०५८८

बहुमुखी प्रतिभा के धनी त्रिलोकीनाथजी

● हेरंब चतुर्वेदी

पूर्व-मध्यकालीन भारत की राजधानी कन्नौज के तिर्वा में १८ जनवरी, १९२९ को जनमे श्री त्रिलोकीनाथजी एक कर्मठ प्रशासक होने के साथ ही सज्जनता, सौम्यता और विद्वत्ता का अद्‌भुत संगम थे। उनके व्यक्तित्व में एक बार पुन: कन्नौज का पूरा वैभव पुनर्जीवित हो उठा था। आज भी कन्नौज के इत्र की तरह उनकी स्मृतियाँ लोकजीवन और बौद्धिक जगत् को सुगंधित करती रहेंगी। जैसे पलायन करते हुमायूँ को अपने पुत्र-रत्न अकबर की खुशी में अपने अनुयायियों को बाँटने के लिए सिर्फ इत्र था, उसी प्रकार कन्नौज की विरासत के रूप में भी यही इत्र शेष था, जो उसने अपने इस सपूत के हिस्से में रख दिया और उन्होंने भी अपनी योग्यता, कर्तव्यपरायणता, निष्ठा, सादगी से एक ऐसा स्थान अर्जित किया कि उनके जाने के बाद भी मधुर स्मृतियों की सुगंध फैलाता है और फैलाता रहेगा। वे सार्वजनिक जीवन में शुचिता और पारदर्शिता के पक्षधर ही नहीं अपितु उसकी जीती-जागती मिसाल थे।

उन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से १९५० में अर्थशास्त्र में स्नातकोत्तर के साथ विधि की पढ़ाई पूर्ण की और अपने अध्ययन-काल में इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्रमदा चरण बनर्जी छात्रावास के अंत:वासी रहे थे। उसी वर्ष (१९५० में) उनका चयन भारतीय प्रशासनिक सेवा में हो गया और इसके अनंतर उनका विवाह इलाहाबाद विश्वविद्यालय के भूगोल विभाग के संस्थापक विभागाध्यक्ष, प्रो. आर.एन. दुबे की पुत्री से हुआ। श्री आर.एन. दुबेजी के पुत्र श्री (अब स्व.) विनोद दुबेजी थे, जिनसे हिंदी के प्रसिद्ध समीक्षक श्री रामस्वरूप चतुर्वेदी (जो इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्रोफेसर तथा विभागाध्यक्ष भी रहे) की बहुत मित्रता थी। वैसी ही मित्रता त्रिलोकीजी की भी रामस्वरूपजी से हो गई और उसका निर्वहन दोनों ने अपने-अपने आखिरी समय तक किया।

भारतीय प्रशासनिक सेवा में चयनित होने पर उन्हें राजस्थान 'कैडर' प्रदत्त हुआ। यहाँ यह बताना भी प्रासंगिक होगा कि वे अपने सेवाकाल में शुरू से अपनी पारदर्शी और कल्याणकारी भावना से युक्त सेवा-भाववाली कार्यशैली के चलते इतने लोकप्रिय हो गए थे कि आमजन से लेकर सबकी नजर में चढ़ गए थे। तब तक राजनीतिक माहौल भी इतना नहीं बिगड़ा था और ईमानदार अधिकारियों की बहुत कद्र की जाती थी, अत: मात्र चार वर्ष के प्रशासकीय अनुभव के बाद ही राजस्थान के मुख्यमंत्री श्री मोहनलाल सुखाड़िया ने उन्हें अपना सचिव नियुक्त कर दिया। भारतीय प्रशासन के इतिहास में इतनी अल्पावधि में मुख्यमंत्री का सचिव होने का भी यह अपने आप में एक दुर्लभ रिकॉर्ड ही है।

प्रतिनियुक्ति पर वे लाल बहादुर शास्त्री प्रशासनिक एकेडेमी, मसूरी के संयुक्त निदेशक भी रहे। साठ के दशक के अंत और सत्तर के दशक के प्रारंभ में वे मसूरी में नियुक्त रहे। इस अवधिवाले उनके 'प्रोबेशनर्स' संरक्षक के रूप में उनके द्वारा प्रोबेशनर्स का पूरा खयाल रखने और मानवीयता भरे दृष्टिकोण के संदर्भ में उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं। वे इसके बाद दिल्ली प्रशासन में मुख्य सचिव भी रहे। आपातकाल के दौरान वे चंडीगढ़ के मुख्य आयुक्त भी रहे थे। भारतीय लोक प्रशासन संस्थान (आई.आई.पी.ए.) के निदेशक भी रहे। बाद में वे भारत सरकार के शिक्षा, संस्कृति तथा खेल-कूद मंत्रालय के सचिव रहे थे, तत्पश्चात् भारत सरकार के गृह सचिव रहे।

भारत सरकार के गृह सचिव रहते हुए उनकी सादगी और मित्रता की मिसाल इस लेखक को देखने को मिली। प्रोफेसर रामस्वरूपजी के द्वितीय पुत्र का विवाह लखनऊ में संपन्न होना था और बरात इलाहाबाद से लखनऊ जानी थी। त्रिलोकीजी चाहते तो सीधे लखनऊ पहुँचकर भी विवाह में सम्मिलित हो सकते थे, किंतु वे इलाहाबाद आए और अलग कार से न जाकर उसी बस से लखनऊ गए, जिसमें हमसब बराती सवार थे। पूरी शादी में उन्होंने किसी को यह एहसास ही नहीं होने दिया कि वे भारत के गृह सचिव जैसे महत्त्वपूर्ण पद पर आसीन कोई विशिष्ट व्यक्ति हैं—एक घर के सदस्य की भाँति वे इस समारोह में शरीक रहे।

सेवानिवृत्ति के उपरांत वे १९८४-१९८९ की अवधि में भारत सरकार के नियंत्रक एवं प्रमुख लेखा परीक्षक के पद पर भी रहे। इसी दौरान उनपर कितना दबाव रहा होगा, यह कोई भी व्यक्ति समझ सकता है, वे रक्षा सौदे में गड़बड़ी को लेकर चर्चित हुए और बोफोर्स जैसी कंपनी द्वारा रिश्वत दिए जाने की ओर इशारा किया। इस विवाद के चलते ही भारत में एक राजनीतिक भूचाल आया और राजीव गांधी की सरकार

चली गई थी। किंतु वे निश्चल अपनी बातों, तथ्यों और निष्कर्षों पर डटे ही नहीं रहे अपितु अपने अधीनस्थ अधिकारियों का बचाव करते हुए सारा दायित्व अपने ऊपर लिया था। वैसे यहाँ यह स्पष्ट करना समीचीन होगा कि जिस रिपोर्ट ने इतना बड़ा परिवर्तन लाने का कार्य किया, उसे उन्होंने नियमत: तीन स्तरीय 'वेट्ट' भी करवाया था। उनकी कर्तव्य-परायणता और निष्ठापूर्वक की गई सेवाओं के आलोक में ही उन्हें 'पद्म विभूषण' से १९९१ में अलंकृत किया गया था।

चूँकि उन्होंने रक्षा-सौदों में कथित भ्रष्टाचार को उजागर किया था, अत: वे आमजन के 'हीरो' बन गए थे। अपने देश का जैसा राजनीतिक चरित्र होता गया है, उसके अनुसार उनके ऊपर कांग्रेस दल द्वारा तीखे शाब्दिक हमले भी शुरू हो गए। अटलजी तथा उनके राजनीतिक दल ने उनको आम चुनाव में कन्नौज से लोकसभा का चुनाव भी लड़वाया किंतु स्थानीय बाहुबली और धन-धान्य से परिपूर्ण यादव बंधु से पराजित होना ही पड़ा। क्योंकि वे तो नियमत: साफ-सुथरा चुनाव ही लड़ रहे थे। अंतत: प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारीजी उनकी कार्यशैली और ईमानदारी के बहुत कायल थे, उन्होंने सुनिश्चित किया कि उनकी सेवाएँ सरकार और संसद् को मिल सकें, अत: उन्हें राज्यसभा का सदस्य नामित कर दिया। वे १९९२ से १९९८ तक भारतीय जनता पार्टी के सदस्य के रूप में राज्यसभा के सदस्य रहे।

जब विपक्षी कांग्रेस पार्टी के सदस्यों ने उन पर भाजपा की सदस्यता से जोड़ते हुए 'बोफोर्स रिपोर्ट' में भी पक्षधरता के आरोप लगाकर उनपर प्राय: आक्रमण किए, तो उसके बहुत बाद २०१३ में 'बिजनेस स्टैंडर्ड' में साक्षात्कार में उन्होंने स्पष्ट किया था कि नेहरूजी के काल से ही यह प्रथा और परंपरा रही है। इसी तरह राजनीतिक दल की सदस्यता के संबंध में उन्होंने इसी साक्षात्कार में स्पष्ट किया कि यह उनका संवैधानिक अधिकार है और संविधान के उन प्रावधानों को उद्धृत भी किया। उनका अध्ययन और स्मरणशक्ति गजब की थी। गत वर्ष (२०१९) 'हिंदी दिवस' के कार्यक्रम में इस अकिंचन को वक्ता के रूप में बोलने हेतु आमंत्रित किया गया था। अध्यक्षीय उद्बोधन में वे स्वतंत्रता के पश्चात् संसदीय समिति की चर्चा करते हुए एक सदस्य का पूरा नाम नहीं स्मरण कर पा रहे थे, आगे न बढ़ते हुए उन्होंने हम पर नजर डाली और पूछा कि 'डॉ. सेठ' उस प्रतिनिधि-मंडल में आए थे, आपका जबलपुर से संबंध है, क्या नाम था उनका, हेरंब?' हमें कुछ क्षण पश्चात् याद आया कि वे सेठ गोविंद दासजी की बात न कर रहे हों? वे डॉ. सेठ का पहला नाम भूल रहे थे। उनसे मनसा-वाचा-कर्मणा कोई भी बात या तथ्य गड़बड़ कैसे हो सकता था? अत: वे रुके रहे थे और नाम पूरा करने के साथ ही उद्बोधन का क्रम आगे बढ़ा।

राज्यसभा की सदस्यता के दौर का एक बहुत दिलचस्प किस्सा है, जिसे प्रलेखित करने का मोह सँवरण नहीं कर पा रहा हूँ। यह किस्सा उनके व्यक्तित्व के एक महत्त्वपूर्ण आयाम को ही उद्घाटित करता है। सहज एवं आचार-व्यवहार से पारदर्शी तो वे थे ही, अपने आत्मीयों के साथ तो वे और भी खुले मन से निस्संकोच बातें करते। उन्होंने बताया कि

'मध्यकालीन इतिहास के स्रोत' व 'मध्यकालीन भारत में राज्य और राजनीति' पुस्तकों पर उ.प्र. हिंदी संस्थान का 'आचार्य नरेंद्रदेव पुरस्कार', 'दास्ताँ मुगल महिलाओं की', 'हिंदी के बहाने' एवं 'फ्रांस का इतिहास' व 'मध्यकलीन भारत के विदेशी यात्री' पुस्तकें चर्चित।

जिन संसदीय समितियों में श्री विष्णुकांत शास्त्री (वे भी उस अवधि में राज्यसभा सदस्य थे) भी सम्मिलित होते, उसमें तो उन्हें प्रपत्र में अपना यात्रा एवं अन्य भत्ते आदि भरने में कोई कठिनाई नहीं आई, किंतु जिनमें शास्त्रीजी सम्मिलित नहीं थे, उनका हिसाब-किताब रख पाना दुष्कर ही नहीं असंभव होने के कारण उन्हें उसी विवरण पर निर्भर रहना पड़ता, जो संसद् कार्यालय से उपलब्ध हो पाता। हमने उनकी बात का विश्लेषण करने का दुस्साहस करते हुए उनकी बात में बस यही जोड़ा कि जाहिर है आप दायित्व के निर्वहन में ही अधिक ध्यान देते रहे, जबकि हम अध्यापक उसके साथ हिसाब-किताब भी रखते हैं, क्योंकि भत्ते आदि के प्रपत्र स्वयं भरने पड़ते हैं, तभी देय प्राप्ति की संभावना होती है? अफसरशाही में तो सचिव आदि की सुविधा रहती है, इसीलिए हम लोगों की यह आदत पड़ जाती है, जबकि आपकी कार्यशैली और उससे संबद्ध सुविधा में इसकी कोई जरूरत ही नहीं पड़ती। वे हँसकर बोले, यही वजह है कि शास्त्रीजी कहते थे कि आपको काफी वित्तीय क्षति उठानी पड़ी है। पर तुम ठीक कहते हो, यह तो मेरी कार्यशैली के चलते अपरिहार्य ही है। अपने राज्य-सभा के कार्यकाल में वे उद्योग की स्टैंडिंग समिति के अध्यक्ष तथा रक्षा एवं विदेश मंत्रालय की समितियों के सदस्य थे।

सन् २००० में वे यूनेस्को के कार्यकारी-मंडल में निर्वाचित हुए थे। वे नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय के भी चेयरमैन रहे थे। २१ अगस्त, २००२ से २० अगस्त, २००७ तक वे कर्नाटक के राज्यपाल रहे। इसी बीच उन्हें केरल के राज्यपाल का भी अंतरिम कार्यभार २००४ (२५ फरवरी-२३ जून) में सौंपा गया था। ये दोनों दायित्व उन्होंने पूर्ण गरिमा और जिम्मेदारी से सफलतापूर्वक निभाए। इसके अतिरिक्त अपने अंतिम समय तक वे भारतीय लोक प्रशासन संस्थान के चेयरमैन के साथ ही औद्योगिक विकास में अध्ययन संस्थान ('इंस्टिट्यूट फॉर स्टडीज इन इंडस्ट्रियल डवलपमेंट'); लाला दिवानचंद ट्रस्ट; भारतीय महासागर के अध्ययन के लिए समाज ('सोसाइटी फॉर इंडियन ओशन स्टडीज') के साथ ही मॉरीशस की तर्ज पर शृंगवेरपुर (इलाहाबाद) में स्थापित होनेवाले रामायण संग्रहालय के भी चेयरमैन थे। वे अपनी कार्यशैली के चलते सार्वजनिक जीवन के लिए एक मानक और आदर्श हो गए थे।

वे अपनी सहजता के चलते आमजन के मध्य बहुत लोकप्रिय थे तो विद्वत्ता के चलते बौद्धिक जगत् में भी आदर के पात्र थे। उनके सबसे आत्मीय संबंध हो जाते थे और वे उनको उसी तरह निभाते भी थे, जिसमें न उम्र, न धन, न पद आदि का कोई भेद-भाव था। इसीलिए वे जिस शहर में भी जाते, वे खुद को अपनों से घिरा हुआ पाते। विद्याव्यसनी तो थे ही,

संभवत: इतना विशाल व्यक्तिगत पुस्तकालय किसी का नहीं होगा। एक जमाने में महाराजकुमार रघुवीर सिंहजी का अवश्य था, किंतु वे सीतामऊ, मालवा के महाराजकुमार थे और फिर वही पुस्तकालय श्री नटनागर शोध संस्थान बन गया। इतना ही नहीं, हर शहर के पुस्तक-विक्रेता, प्रकाशक उनको व्यक्तिगत रूप से जानते थे, क्योंकि अपने कार्य-दायित्व की पूर्ति के उपरांत वे शहर भर के पुस्तकालयों एवं पुस्तक-दुकानों में समय बिताते। किताबों को खरीदना और उन्हें पढ़ डालना उनका शगल था।

विजयदशमी के अवसर पर इस लेखक को ऑड्रे ट्रस्क की 'औरंगजेब' आशीष-स्वरूप डाक से प्रेषित करना नहीं भूले थे। ऐसे ही एक बार हमने मेजर बामन दास बसु पर एक लेख लिखा, जो उन्होंने 'साहित्य अमृत' के जुलाई २०१३ के अंक में सहर्ष छापा। इतना ही नहीं, उसी अंक में एक लंबी संपादकीय टिप्पणी में उसकी प्रशंसा भी लिखी (पृष्ठ आठ)। वे किस प्रकार शोध एवं अध्ययन में आगे बढ़कर मदद करते थे, उसी का उदाहरण है कि गुरुकुल काँगड़ी में मेजर बामनदास बसु द्वारा दिए गए दीक्षांत भाषण की छाया प्रति भी भिजवाई। उन्हें सब स्मरण रहता था और कितना अध्ययन करते थे, यह सोचकर विस्मय ही होता है। इतना ही नहीं, जब यह लेखक 'इलाहाबाद स्कूल ऑफ हिस्टरी' पर काम कर रहा था, तब ताराचंदजी की अब एक अनुपलब्ध कृति, 'द हिंदू मुस्लिम क्वैश्चंस' अपने संबंधों के चलते उपलब्ध करवाई थी। वस्तुत: यह पुस्तक इलाहाबाद के किताबिस्तान से प्रकशित हुई थी और फिर प्रकाशक के पाकिस्तान चले जाने के कारण यह पुस्तक यहाँ अनुपलब्ध किंतु पाकिस्तान में उपलब्ध थी। 'इलाहाबद स्कूल ऑफ हिस्टरी' की न सिर्फ उन्होंने भूमिका लिखी थी अपितु उस पुस्तक को 'प्रभात प्रकाशन' के सहयोगी 'ओशन पब्लिकेशन' से २०१६ में प्रकाशित करवाना भी सुनिश्चित किया।

जब हमने हिंदी के विकास-क्रम पर अपना भाषण भारतीय लोक प्रशासन संस्थान में उनके आदेश पर दे दिया, तब काफी विचार करने के उपरांत उन्होंने आदेश दिया था कि तुम नई तरीके से बात कह रहे हो, इसको प्रकाशित अवश्य करवाना। इसी तरह श्री हर्ष महान कैरेजी (आई.ए.एस, असम कैडर) ने जब २०१९ में रूपा से प्रकाशित अपनी पुस्तक हमें भेजी और पूछा कि और किसी को भेज दें, तब उनका और श्री ललित कुमार जोशीजी (आई.ए.एस., सेवानिवृत्त, मध्य प्रदेश) के नाम सुझाए। उन्होंने दोनों को पुस्तक भेजी और यह भी बताया कि कैसे आपने इस पुस्तक प्राप्ति पर धन्यवाद ज्ञापित किया और बताया कि इसका प्रथम संस्करण उनके पास है, किंतु यह बेहतर और विस्तृत है। इस पुस्तक पर हमसे चर्चा भी की और संभवत: तबीयत न बिगड़ती तो हमें निश्चित ही साहित्य अमृत के किसी अंक में उस पर विश्लेषणात्मक संपादकीय टिप्पणी पढ़ने को अवश्य मिलती और आम पाठकगण उसी से समृद्ध होते।

८/५ ए, बैंक रोड, इलाहाबाद-२११००२
दूरभाष : ९४५२७९९००८

लघुकथा

गलत पहल

● **सत्य शुचि**

दोपहर का समय था। धूप में तेजी थी कि पीछे से आती पिकअप गाड़ी को उस युवक ने सड़क पर साइड नहीं दी। अब युवक और पिकअप वाले की झाँय-झाँय आपस में उलझकर हाथापाई पर उतर आई थी और त्वरित ही माहौल में अशांति छितर गई, लेकिन सड़क पर एकत्र भीड़ मस्त-मस्त हो चली थी।

वास्तव में गलती युवक की थी, तभी तो भीड़ ने उसे ही दबोचा था और अभी ताबड़तोड़ भीड़ के हाथों वह पिलता-पिटता रहा, जिस पर भीड़ उसे अधमरी हालत में पहुँचाकर तुरंत भाग चुकी थी, अलबत्ता चहुँओर एक भयावह सन्नाटा पसरा था।

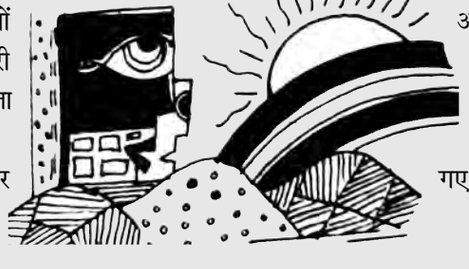

फिर भी उस वक्त एक राहगीर की नजर कराहते-तड़पते युवक पर जा ठहरी थी। युवक के कथित अपराध का फैसला हाथोहाथ भीड़ कैसे कर सकती है? एक प्रश्न ने राहगीर को भीतर-ही-भीतर झकझोरा था।

फिलहाल, राहगीर के साथ वह युवक अस्पताल भी नहीं देख पाया था कि रास्ते में ही उसने दम तोड़ दिया और राहगीर एकदम उदास हो गया; तत्पश्चात् वह बुदबुदाया, 'क्या फैशन चल पड़ा है आजकल! माब लिंचिंग का!' याने कि भीड़ द्वारा बर्बर तरीके से कानून की बगैर परवाह किए किसी को भी सरेआम पीट दो, मार दो। इसीलिए बहुत साफतौर पर यह एक विचारणीय बिंदु उभरकर, निकलकर सामने आता है कि कहीं हम वापिस आदिम-जंगली अवस्था की ओर मुड़ने तो नहीं लगे हैं?

और जाने-अनजाने में तनिक सोचकर उस राहगीर के नेत्र आँसुओं से छलककर रह गए।

साकेत नगर, ब्यावर-३०५०९१ (राजस्थान)
दूरभाष : ९४१३६८५८२०

संतू

● राकेश कुमार

संतू गला फाड़कर चिल्ला रहा था, "ओ रे दुर्जनवा! हमार पल्ला त तनी दै जाव, हम तोहार पौयं पड़त, तोहर गोड़ पड़त भय, हमार तसल्ला तुरतइ पठई देव!" पर उस तरफ से कोई जवाब नहीं आया, तब संतू ने फिर हुंकार भरी, "अरे ओरे दुर्जनवा! त न बोलवत त हमई तोहर घरे आउत है।" दुर्जन की झोंपड़ी के पीछे से अब कुछ कपड़ा हिलता हुआ दिखाई दिया, शायद उसकी महरारू झाँककर स्थिति का जायजा लेना चाहती हो। संतू फिर दुर्जन की पत्नी से, "अबौ तक का सुनवैन करी जे तू हमार जबाव न दिहिन?" बहुत देर तक चिल्लाने और धमकाने से काम नहीं चला तो वह काछियाने की तरफ चलने के लिए मुड़ा।

बाबूजी के घर के पिछवाड़े की तरफ काछियानो की झोंपड़ियाँ थीं, जहाँ से अकसर तेज चिल्लाने की आवाजें आती रहती थीं, यह कहना कठिन होता कि यह खुशी की या झगड़ने की आवाज है। बच्चों के लड़ने की आवाज तो दिनभर ही सुनाई पड़ती थी। कोठी के पिछवाड़े से कोई रास्ता नहीं था, एक तो वह नीचा था और फिर उस तरफ गंदगी रहती। वहाँ एक पंक्ति में कुछ झोंपड़ियाँ और बाँस-बल्ली पर टिके कच्चे मकान थे, जिनपर एक लय्या-चने की दुकान, काछी, कुम्हार और धोबी गुजर-बसर करते थे। उधर जाने के लिए बाहर सड़क से घूमकर जाना पड़ता था।

संतू विपिन्नता की मार सहता हुआ अधेड़ उम्र में भी वार्धव्य के चिह्न लिये हुए पतले शरीर, मझोले कद और साँवले शरीर का था—वह पुरबिया एक छोटे गाँव से अपनी आजीविका कमाने आया था। वह ईमानदार, स्वाभिमानी और कर्मठ व्यक्ति था। एक तरफ बाबूजी से उचित मेहनताना तो मिलता ही, पर उसे पूरे घर और बाहर के काम की छूट होती, कोई रोक-टोक नहीं, साथ में कभी-कभार शाबाशी भी।

संतू आज सुबह ही डेढ़ महीने बाद अपने घर से लौटा था। अम्माँजी एक तो इस बात से नाराज थीं कि एक महीने की छुट्टी लेकर गया था, परंतु १५ दिन देर से आया। दूसरा, तसला जाने कहाँ रख गया था, 'मंगो' को चारा देने में कितनी दिक्कत आई थी। फिर चारे की दुकान, कोयले-लकड़ी की टाल, और चक्की से गेहूँ पिसाने के लिए कब से इंतजार कर रही थीं। पर संतू के स्वाभाव से सब परिचित थे, वह आएगा जरूर, देरी की कुछ वजह जरूर रही होगी।

पढ़ने-लिखने के बेहद शौकीन। भारत सरकार के दूर-संचार विभाग में ३७ वर्षों तक कार्य किया, सेवानिवृत्ति के पश्चात् लेखन में रत। देश-विदेश में तकनीकी और प्रबंध विषयों का अध्यापन किया। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लेख, यात्रा-वृत्तांत व कहानियाँ आदि प्रकाशित हो रही हैं।

अम्माँजी ने एक बार जिस काम को कह दिया तो संतू जब तक काम निपटा न ले, खाना भी नहीं खाता और यदि बाहर जाकर गाय का चारा, कोयले-लकड़ी लाना हो तो वह करके ही आएगा—कुछ डर के कारण, कुछ पेट की खातिर और फिर उसका स्वाभिमान आगे आता। अम्माँजी का भी तो काम संतू के बिना नहीं चलता था।

वह करता भी क्या, आगरा से गोरखपुर, फिर वहाँ से ५ कोस पर गाँव पैदल चलकर जाना होता। वह गरीब, फसल कटाई के समय, अपनी थोड़ी सी खेती और बड़े किसान से अधिक मजदूरी मिलने के लालच से अपने गाँव साल में एक बार तो जाता ही। दूर शहर आना भी उसकी मजबूरी थी, अपना और परिवार का पेट पालना जो था, सालभर तो गाँव में काम नहीं था। घर पास हो तो दीवाली-होली पर घर जाया जा सकता है। आने-जाने का खर्चा भी तो लगता है—घर जाए या रुपया घर भेजे? संतू ने इसी कारण अब तक शादी नहीं थी, जबकि गाँव में तो कम उम्र में ही शादी हो जाती है।

दुर्जन भी इस शहर में १०-१२ साल से रह रहा है। वह एक मल्लाह है, जो मथुरा में यमुना नदी के एक गाँव का रहनेवाला है। एक बार बाढ़ आने पर उसकी नाव, थोड़ी सी खेती, झोंपड़ी और सबकुछ नष्ट हो गया। इसीलिए वह परिवार के साथ यहीं शहर में आकर रहने लगा और सब्जी बेचने का काम करता। उसका असली नाम तो दुष्यंत था, पर सबके मुँह पर दुर्जन ही चढ़ा था। उसकी घरवाली तो बस बृज-भाषा ही समझती और बोलती थी। अब तक वह सब सुन रही थी और समझ चुकी थी कि अब संतू आकर तसला तो लेकर ही जाएगा, कहीं शोर-शराबा और

तोड़-फोड़ न कर दे। उसने ऊपर से खाँसकर कहा, "भय्या तू कबे आयो, मो कू तो मालूम न हती, मेरा आदमी तोकू तसला देने गयो हतो, पर तूई नहीं मिलो।" संतू ने धीरे से गाली देते हुए कहा, "क्योरी, अबे तलक का सुनबैन न करी जे तू हमार जबाव न दिहितन।" दुर्जन की घरवाली नरमी से बोली, "मेरो घरवारो कितै गयो भयो है, वा के आवतई ही तसला भिजवाय दऊँगी।" संतू ने चैन की साँस ली। उसे अभी बहुत काम करने थे।

अम्माँजी यह सब बरामदे से सुन रही थीं। अब उनका गुस्सा शांत हो चुका था, उन्होंने संतू को आवाज देकर बुलाया और उसकी तथा उसके घर-बार की पूछताछ की। संतू ने साफे से अपना पसीना पोंछा और कुछ सोचने लगा। अम्माँजी ने अपने हाथ से बनाई हुई दो मोटी रोटियाँ, रात की सब्जी पर अचार रखकर, एक गिलास चाय पकड़ा दी। संतू वहीं बैठकर धीरे-धीरे नाश्ता करने लगा और अम्माजी उसे निहारती रहीं। संतू कुछ देर चुप बैठा रहा, अम्माँजी के सामने मुँह खोलने की हिम्मत नहीं हो रही थी या फिर कहाँ से बात शुरू करे। अम्माँजी समझ गईं कि उसको रुपए की तंगी हुई होगी, पर अम्माँजी जब तक कहलवा न लें तो तसल्ली कैसे करतीं? चाय पीने के बाद, कुछ सोचते हुए संतू बतियाने लगा, "माँजी, का बताइन घर का हाल, थोड़ी जमीन हमरे पास बची बा, ऊ सेई थोड़ी फसल बो-काट लेइत हैं, गुजर कैसे कर हुई जात है।" और अपनी फटी बनियान की तरफ देखने लगा। "माँ-बाप और बहिन की जिम्मेदारी हमार भाई निभावत रहै, झड़ी-बरसात आने से पहरे, इकई कोठवा पै छप्पर छाई कर आवत रहै, आगे रामजी इच्छा!" कहकर वह चुप हो गया।

संतू को काम ही क्या था? बस सुबह-शाम मंगो गाय को सानी लगाना, उसकी बछिया की देखभाल तथा गोबर के कंडे पाथना। पंद्रह दिन में एक बार भूसा और खली या फिर लकड़ी, कोयला गधे पर रखवाकर लाना। इन सबके लिए ४-५ किलोमीटर पैदल ही आना-जाना होता। गल्ला, दाल-मसाले लाने के समय रिक्शे पर बैठकर आता। साइकिल की उसने कभी फरमाइश नहीं की, शायद उसे चलानी ही नहीं आती थी। गेहूँ पिसाने के लिए वह सिर पर ही २० किलो वजन लेकर चक्की पर जाता, जिससे पैसे की बचत हो सके। साल में नीबू और आम के अचार डालने के लिए भी उन्हें धोकर, सुखाकर काटने में मदद करता। कुएँ से पानी लाना तथा मटकों और सुराही में ताजा पानी भरना यही कुछ अन्य काम थे, जो वह आते-जाते करता। सुबह-शाम घर की सफाई और बरतन माँजने के लिए एक महरी आ जाती, पर सामान को इधर-से-उधर रखने में संतू ही हाथ बँटाता।

पेड़-पोधों की निगरानी, पाइप से पानी लगाना और कभी-कभार निराई-गुड़ाई भी वह बिना कहे करता, पता नहीं माली कब आए, नहीं तो कही बाबूजी स्वयं ही न करने लगें। बाबूजी बहुत विद्वान् थे, कम बोलते थे, पर पता नहीं वे दोनों एक-दूसरे के इतने करीब कैसे होते थे?

अम्माँजी भी उसे काम देते न थकतीं, तो बाबूजी उसके पक्ष में कुछ न कुछ कह जाते। अभी चूल्हा जलाने के लिए लकड़ियाँ लगाई थीं, पर आग नहीं पकड़ रही थीं, अम्माँजी चिल्लाईं, "अरे संतू, तू कहाँ चला गया, अबकी तू लकड़ी कैसी लाया, सब गीली हैं, सारी रसोई में धुआँ भर गया, देखकर सूखी लकड़ी लाया कर।" संतू क्या कहता, पर बाबूजी का संत-स्वभाव चुप नहीं बैठता, कहते, "क्या करे बेचारा, बरसात में लकड़ी तो गीली होगी ही।"

उधर छोटे भय्या ने पानी माँगा तो इधर मंगो गाय की साँकल खुल गई और वह पड़ोस के घर का बगीचा उजाड़ने चल पड़ी। संतू आवाज लगाता, "आ जावो, सानी मा देर भई का, जो उधर भगत है?" संतू सब तरफ दौड़ पड़ता, पूरे परिवार की रख-रखाव संबंधी समस्याओं का हल तो उसको ही निकालना है।

संतू खाली बैठनेवाला कहाँ, उसे अपना मन लगाने के लिए भी तो कुछ करना होता। नहाने से पहले बाबूजी को तेल-मालिश और रात को पैर दबाने में उसे बड़ा आनंद आता। बाबूजी की सेवा में उसे थकान नहीं लगती और अम्माँजी की डाँट के डर से बताए हुए काम में ढील नहीं आती।

बड़े भय्या तो बाहर रहते, वह साल में एक या दो बार ही आते। मँझले भय्या को संसार में क्या हो रहा है, इसकी चिंता ही नहीं, वे तो अपने पढ़ने व शोध-कार्य में व्यस्त रहते। छोटे भय्या ही संतू से हँसकर बात करते। उसे यह बहुत अच्छा लगता। छोटी बिब्बी, जो अभी कॉलेज में पढ़ रही थीं और उनकी अभी शादी नहीं हुई थी, वह भी संतू को भय्या कहकर पुकारतीं और पूरबी बोली में बोलने का अभ्यास करतीं। अपनी चाय बनाते हुए उससे चाय की पूछती और चाय-नाश्ता करातीं। संतू को यह अपना ही परिवार लगता और पता ही नहीं चलता कि दिन कब समाप्त हुआ और महीने बीत गए।

संतू के कुछ और भी हुनर थे। वह शहद की मक्खी के छत्ते से शहद बड़ी आसानी से निकालता। कंडे की आग के धुएँ से पहले वह शहद की मक्खियों को भगाता और बाल्टी लेकर पेड़ पर चढ़ जाता, फिर कुछ मंत्र जाप करता और आराम से छत्ते से शहद निचोड़कर ले आता। न छत्ता खराब होता और न ही मक्खियाँ मरतीं या उसे काटतीं, जबकि वह सिर्फ एक कच्छा पहने ही होता। हम सब लोगों को आगाह कर देता कि सब दूर चले जाएँ, नहीं तो मक्खियाँ चिपट जाएँगी।

संतू को सफाई भी बहुत पसंद होती, गलती से भी किसी ने फल का छिलका या बीज इधर-उधर फेंक दिए तो बोलता, "भय्या, यह कोई बाजार है कि जहाँ चाहे वहीं फेंक दिया।" एक-आध बरतन खाट या मेज

के नीचे दिख गया तो तुरंत उठाकर माँजता और चमकाकर सही जगह पर रखता। उसके माँजे हुए बरतन की चमक अलग से ही दिखती थी। वह कुएँ से पानी निकालने के लिए बाल्टी को अच्छी तरह साफ करता और पानी को पहले से साफ किए हुए कलश और मटकों में भरता। इन बरतनों से पानी लेते समय भी वह जूते-चप्पल इन स्थानों से दूर उतारने को कहता, फिर हाथ धोकर ही घंटी से पानी निकालता या निकालने देता। यदि संतू की मनपसंद कोई बात नहीं हो तो उसके कहने का अपना ही तरीका होता, घर में बाहर से लाए गए जूते-चप्पल पर उसकी टिप्पणी होती, 'हमरे बाबूजी का कोठी म तनिक भी काँट-कंकड़ न बिछ ल, बाहर की धूर ल चल आएल। नंगा पाँव फरस पर चल आव।' उसने सुबह ही तो झाड़ू लगाकर फर्श पर पोंछा लगाया था, जो अब तक चमक रहा था। यही सब कारण थे कि अम्माँजी उसपर पूरा भरोसा करती थीं।

रोज की तरह संतू काम करके, रोटी और चाय के साथ नाश्ता कर रहा था। वह चुप एक कोने में बैठा इधर-उधर देख रहा था। उसकी नजरें अम्माँजी को ढूँढ़ रही थी—वह कुछ कहना चाह रहा था। कैसे कहे कि घर पर कुछ रुपए की जरूरत है। छुट्टी जाने से पहले वह अपना पूरा हिसाब लेकर गया था और अभी मात्र पंद्रह दिन ही तो हुए हैं। उसे अपनी तनख्वाह भी कुछ कम लग रही थी। पहले तय हुआ था कि वह सूखा पर ४० रुपए माहवार मिलेगा और गीले पर ३० रुपए माहवार। या तो वह अम्माँजी से रोटी-सब्जी, तेल-साबुन ले या १० रुपए मासिक अधिक। घर जितना अधिक रुपया भेज सके अच्छा है, पर सूखे पर खाना कम, बनाने की मेहनत अलग और कब बनाएगा-खाएगा। वह क्या करे।

अम्माँजी को संतू के मन की बात समझने में देर नहीं लगी, पर वे स्वयं क्यों बोलें। उसे गर्ज है तो वह अपना मुहँ खोले। पर संतू ने भी खुलकर तो कुछ नहीं कहा, कैसे कहता, अभी पंद्रह दिन ही तो हुए हैं। दिनभर का काम समाप्त हुआ, शाम को संतू बाबूजी की सेवा के लिए आ गया। संतू कुछ कमजोर लग रहा था। गाँव में काम अधिक और सूखी रोटी भर खाना। थोड़ी सी ही जमीन बची थी, उसकी फसल से घर का खर्च कैसे चलता। उसे २५ रुपए महीना तो घर पर भेजना होता ही है, उसी रकम से बनिए से सामान लेकर घर का काम चलता। संतू बाबूजी के पैर दबाता रहा और धीरे-धीरे अपने गाँव की स्थिति से परिचय कराता गया। बाबूजी गाँव से अनभिज्ञ तो थे नहीं, पूरब के गाँव की दशा कुछ अधिक ही दयनीय होती है। वे अब इसका मन-ही-मन आकलन लगा रहे थे, मुंशी प्रेमचंद की अनेक कहानियों में आए गाँव के विवरण से कितना मेल खाता है। वह विचार-मग्न होते हुए धीरे-धीरे निद्रा में चले गए। बाबूजी के सोने पर संतू भी सोने चला गया।

सुबह हुई, बाबूजी छड़ी लेकर घूमने के लिए तैयार हुए, संतू बाहर ही खड़ा था, बाबूजी ने राम-राम की और चल दिए। घूमकर आकर मूडे पर बैठे अखबार पढ़ने लगे। अम्माँजी चाय के लिए पूछने आईं, बाबूजी ने धीरे से कहा, संतू बहुत गरीब और ईमानदार आदमी है, अपने परिवार से दूर आकर हमारी सेवा कर रहा है। यह डेढ़ महीना हम सबने कितनी कठिनाई से निकाला। अम्माँजी इशारा समझ गईं, बोलीं, मैं भी इस बारे में आपसे पूछना चाहिती थी। बाबूजी बोले, मेरी जैकेट में कुछ रुपए पड़े हैं, कल ही रॉयल्टी के आए हैं, इसमें से दे दो। अम्माँजी ने १० रुपए संतू को देते हुए कहा कि इस महीने से ही तेरी तनख्वाह ढाई रुपए महीना बढ़ा दी है। संतू की आँखों में हलकी चमक आई और बाबूजी भी अपनी मूँछों के अंदर से हलकी मुसकान देकर अपने कार्य में व्यस्त हो गए। संतू भी और दिनों की तरह अपने काम में व्यस्त हो गया। दुपहर में समय निकालकर संतू पोस्ट-ऑफिस जाकर अपने घर दस रुपए का मनी-ऑर्डर कर आया।

बाबूजी का स्वास्थ्य दिन-प्रति-दिन गिर रहा था, डॉक्टरों के चक्कर लग रहे थे। परिवारवाले पूरा ध्यान रख रहे थे, पर संतू था, जो अब रात को उनके पास ही जमीन सोने लगा, पता नहीं कब बाबूजी को उठाकर शौच के लिए ले जाना पड़े। उसके लिए अब दिन और रात का अंतर नहीं था, बस बाबूजी ठीक हो जाएँ, यही वह मनाता।

संतू, बाबूजी की अंतिम श्वास तक भरपूर सेवा करता रहा। फिर एक माह बाद अचानक हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। कुछ देर शांत खड़ा रहा, कुछ नहीं बोला, थोड़ी देर बाद बड़ा रुआँसा होकर बोला, "अब हम काम नहीं करूँगा।" अम्माँजी बोलीं, "क्या किसी ने कुछ कह दिया, क्या तनखा कम है?" पर वह यही कहता रहा, "हमार हिसाब कर दो, हम जाएगा।"

अम्माँजी के प्रत्येक प्रश्न का एक ही उत्तर मिलता, "हमका रोको नाही, हम अब जाई करे।" अम्माँजी भी देख रही थीं कि बाबूजी के चले जाने के बाद अब वह खोया-खोया रहने लगा था। चीज इधर-उधर रखकर भूल जाता था। अम्माँजी को आज अहसास हुआ कि बाबूजी ने ४० वर्ष पूर्व क्यों महाराज छतरपुर के पास से त्याग-पत्र दिया था? दीवान, न्यायाधीश, साहित्य सलाहकार और निजी सचिव रह चुके बाबूजी ने भी महाराजा साहब की मृत्यु के बाद आगरा आने का निश्चय किया था।

बड़ी हिम्मत कर उसे एक दिन और रुकने को कहा। अगले दिन बड़े दु:खी मन से उसको बिदा किया। अम्माँजी ने इस बार उसको तनख्वाह के साथ एक जोड़ी कपड़े देते हुए आने-जाने का किराया भी दिया और कहा, यह घर तेरा ही है, जब मन करे आ जाना। पर यह संतू का आखिरी दिन ही था, इस परिवार के साथ। सब उसे कृतज्ञ भाव से देख रहे थे। उसके जाते ही घर सूना लगने लगा।

यह 'संत राम' बाबूजी की सेवा के लिए ही अवतरित हुआ था। बाबूजी के चल बसने पर वह कहीं और चला गया, फिर नहीं आया। कहाँ है वह, किसी को नहीं पता। पर बाबूजी का परिवार सदा उसका ऋणी रहेगा।

डी-२, सेक्टर-४८, नोएडा-२०१३०१ (उ.प्र.)
दूरभाष : ९८६८१३४१४१

हमारे बाबूजी

● उर्वशी अग्रवाल 'उर्वी'

: एक :

कमरे के कोने में रक्खी, ख़ाली कुर्सी बाबू की,
बिन बोले ही बातें करती, ख़ाली कुर्सी बाबू की।

मन की आँखों से यदि देखो ज़रा न ख़ाली दिखती है,
तन्हा सी सबको है तकती, ख़ाली कुर्सी बाबू की।

कमरे में जब भी जाते हैं स्वागत सबका करती है,
सबके सीने से है लगती, ख़ाली कुर्सी बाबू की।

बैठी है बोझिल-बोझिल सी, जाने किसकी आस इसे है,
मैंने लेते देखी हिचकी, ख़ाली कुर्सी बाबू की।

अब तक ताँता लगा हुआ था आने जाने वालों का,
नए बरस ने रोकर देखी ख़ाली कुर्सी बाबू की।

ख़ामोशी की बोली समझे, बोले भी ख़ामोशी से,
सुनती है फ़रियादें सबकी, ख़ाली कुर्सी बाबू की।

यादें कितनी जुड़ी हुई हैं, ख़ाली-ख़ाली कमरे में,
देख सभी की आँखें झरतीं, ख़ाली कुर्सी बाबू की।

ज़रा न हिलते-डुलते देखी, गहन नींद में सोई अब,
अब न ये रातों को जगती, ख़ाली कुर्सी बाबू की।

ऐसा अकसर लगता है कि, बैठे हैं बाबूजी तुझपर,
सच पूछो तो हरपल ठगती, ख़ाली कुर्सी बाबू की।

दुख इसका इससे पूछो तो कुछ न कहती है, लेकिन,
घर-दफ़्तर दोनों में रोती, ख़ाली कुर्सी बाबू की।

बेदिल सी बेजान भले है, लेकिन बाबा साथ रही,
सबको है प्यारी सी लगती, ख़ाली कुर्सी बाबू की।

जी चाहे मैं पूजूँ इसको फूलों से शृंगार करूँ,
जैसे सूरत मेरे रब की, ख़ाली कुर्सी बाबू की।

'उर्वी' इसको जब भी देखे भीगी-भीगी आँखों से,
देती प्यार-दुलार की थपकी, ख़ाली कुर्सी बाबू की।

: दो :

जीवन का यह पथ दिखलाकर चले गए तुम बाबूजी,
ख़ुशियों के सावन बरसाकर चले गए क्यों बाबूजी

एक आपके दम से बाबू घर में मेला लगता था
आने जाने वालों का तो हर दिन रेला लगता था
सब रिश्ते नाते तरसाकर चले गए क्यों बाबूजी

इतना सुंदर घर बनवाया ख़ूब हमें संस्कार दिए
हर दिल में बगिया महकाई रिश्ते सब गुलज़ार किए
जीते जी घर स्वर्ग बनाकर चले गए क्यों बाबूजी

महका सबके एहसासों का देखो कोना-कोना था
सभी उपस्थित यहाँ अगर तो तुमको भी तो होना था
अपनी अंतिम सभा सजाकर चले गए क्यूँ बाबूजी।

urvashi@dsalert.org

एक कुशल प्रशासक व नेक इनसान

● गोपाल चतुर्वेदी

श्री त्रिलोकी नाथ चतुर्वेदी (१८-०१-१९२९ से ०५-०१-२०२०) का जन्म तिरवा नामक एक छोटे से कस्बे (जिला औरैया, उ.प्र.) में हुआ। उन्होंने प्रयाग विश्वविद्यालय से उच्च शिक्षा ग्रहण कर १९५० में लोक सेवा आयोग के माध्यम से भारतीय प्रशासनिक सेवा में सफलता प्राप्त की। वे राजस्थान कैडर के उच्चाधिकारी बने। अपने समय के समकालीन तथा अन्य जानने वालों में उनकी ख्याति एक ऐसे विरल अधिकारी की रही, जिसे पढ़ने-लिखने का शौक ही नहीं बल्कि यही उसके जीवन का नशा था। वे जिस शहर में भी जाते, वहाँ की प्रसिद्ध पुस्तकों की दुकानें, पूर्व परिचितों की तरह उनकी प्रतीक्षा करतीं। जब तक वहाँ जाकर कोई नई किताब खरीद नहीं लेते, वे चैन से नहीं बैठ पाते। मैं कई ऐसे व्यक्तियों को जानता हूँ, जो अपने ड्राइंगरूम में पुस्तक सजाने और दिखाने के लिए रखते हैं, टी.एन. भाई साहब उनका उपयोग पढ़ने के लिए करते थे। उनसे किसी भी विषय की चर्चा में उनके गहन अध्ययन का पक्ष अपने आप ही उभरकर आता था। हमारे ऐसे हर प्रकार से उनके छोटे, यानी ज्ञान, आयु, अनुभव, अध्ययन आदि में स्नेह से वशीभूत होकर उन्हें 'भाई साहब' कहकर बुलाने लगते। पहली बार मिलने पर 'सर' कहने के उपरांत कब वे 'भाई साहब' हो गए, यह पता ही नहीं चला। इसके मूल में शायद उनका सहज, सरल व स्नेहिल स्वभाव ही रहा होगा। मुझे आज भी याद है। वे लखनऊ आकर राजभवन में ठहरे थे रामनाईकजी के आग्रह पर। दिन का भोजन वे हमारे साथ करनेवाले थे। आने के पूर्व ही उन्होंने मुझसे इच्छा जताई, "तुम्हारे घर चलने के पूर्व मुझे हजरतगंज में राम आडवाणी की पुस्तक की दुकान पर जाना है और उसके बाद रामकृष्ण त्रिवेदीजी के यहाँ। तुम चाहो तो घर चलो, नहीं तो मेरे साथ।"

मेरे सिर पर भाई साहब के आतिथ्य की चिंता सवार थी। त्रिवेदीजी से फोन पर अनुमति लेकर हम अकसर उनके दर्शनार्थ जाते रहते। उनका स्वभाव भी टी.एन. भाई साहब से मेल खाता, सहजता और स्नेह में आपको लगता कि आप किसी बुजुर्ग के पास बैठकर उसकी बातें सुन रहे हैं, विशेषकर उनकी पढ़ी हुई पुस्तकों की अथवा तरतीब से लगे बगीचे की, नहीं तो नक्सल प्रभावित क्षेत्रों की। त्रिवेदीजी सचिव (कार्मिक) व तदुपरांत मुख्य सतर्कता आयुक्त रह चुके थे। उनके पास चर्चा के इतने विषय थे कि टी.एन. भाई साहब के समान वे भी बेहद कम, अपने बीते शासकीय जीवन की चर्चा करते। इसके उलटे उनकी फिक्र चाय की चीनी और उसके साथ पकौड़ी के स्वाद, किसी महापुरुष की जीवनी या शहर अथवा देश की प्रमुख ताजा घटनाओं की अधिक रहती, बाकायदा संवाद की तरह। "इस बारे में तुम्हारा क्या विचार है," ऐसे प्रश्न करके वे आपको बातचीत में शामिल कर लेते। मुझे लगा कि इन दोनों सफल शासकीय जीवन की यात्रा को संपन्न करने वाले बड़े लोगों की शैली यही है। वह अपने सन्मुख बैठे व्यक्ति पर बड़े पदों के भार से हावी नहीं होते हैं, बल्कि उसका मत या राय पूछकर उसे समानता का दर्जा देते हैं। यह उनके बड़प्पन का अंश है। जब कोई मिलता है तो उनकी महानता का अंश साथ लेकर लौटता है।

जब तक वे 'साहित्य अमृत' से जुड़े रहे, पाठक चतुर्वेदीजी की संपादकीय टिप्पणियों से बेहद प्रभावित हुए। संपादक को लिखे पत्र इसके साक्षी हैं। तथ्य और तर्क का सुंदर सम्मिश्रण, संदर्भानुसार विद्वानों के विचार, सधी हुई भाषा में व्यक्त वस्तुनिष्ठ टिप्पणी किसे आकर्षित नहीं करेगी! उसे पढ़कर मुझे हमेशा यही लगा कि इन टिप्पणियों की प्रेरणा उनके शासकीय और प्रशासनिक जीवन का निचोड़ है। जब तक वे राजस्थान कैडर के अधिकारी रहे, उन्होंने जिलाधिकारी के बतौर ऐसे कार्य किए, वह भी ईमानदारी और लगन से कि उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा हुई। अजमेर शरीफ श्रद्धालुओं का पवित्र स्थल है। वहाँ नई सड़कों की व्यवस्था, पुरानी सड़कों की मरम्मत, कई नई सड़कों का निर्माण और समुचित रोशनी का प्रबंध आदि कुछ ऐसे महत्त्वपूर्ण कार्य हैं, जिन्हें लोग आज भी याद करते हैं। हर प्रशासनिक सेवा के अफसर

की मनोकमाना रहती है कि वह भारत सरकार के बड़े मंत्रालय का सचिव बने। टी.एन. भाई साहब राज्य के बाद केंद्र में आए और उन्होंने मुख्य सचिव, दिल्ली प्रशासन, संयुक्त निदेशक, राष्ट्रीय प्रशासनिक अकादमी, मसूरी; निदेशक इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ एडमिनिसट्रेशन, चीफ कमिश्नर, चंडीगढ़, आदि में नियुक्ति के दौरान अपनी प्रशासनिक क्षमता का प्रदर्शन किया। अपने प्रशासनिक जीवन में उच्च पदों का कार्यभार उन्होंने इस योग्यता से निभाया कि उनके साथ कभी कोई विवाद नहीं जुड़ा। इसी निष्ठा का परिणाम है कि वे शिक्षा, संस्कृति और खेलकूद मंत्रालय के सचिव ही नहीं रहे बल्कि उन्हें गृहसचिव भी बनाया गया। १९८४ में उन्होंने भारतीय प्रशासनिक सेवा से इस्तीफा देकर भारत के सी.ए.जी. का कार्यभार सँभाला।

उन्होंने जिस किसी मंत्रालय का कार्यभार सँभाला, वहाँ अपनी छाप छोड़ी कि भारत सरकार के शिक्षा सचिव के दौरान विद्वान् शिक्षा शास्त्री के रूप में उन्हें जानने लगे। वे आई.आई.पी.आई.ए. (इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ पब्लिक मैनेजमेंट) में निदेशक रहे तो उनकी ख्याति प्रबंधन विशेषज्ञ के रूप में खुद-ब-खुद हो गई। उल्लेखनीय है कि इस विषय पर उनकी दो पुस्तकें भी हैं। निदेशक का पद सफलता से निभाने के बाद वे आई.आई.पी.ए. की गवर्निंग काउंसिल के एक मुखर प्रभावी सदस्य भी रहे। जब वे श्रीमती गांधी के द्वारा गृह सचिव बनाए गए, तब वे उनके सच्चे सलाहकार रहे, जो उन्हें ईमानदार, तथ्य आधारित तथा स्वतंत्र सलाह देते रहे। 'ठकुरसुहाती' उनके स्वभाव के विपरीत थी। न वे ऐसा कर सकते थे, न उन्होंने ऐसा किया। इसके बावजूद प्रतिभा व कार्यकुशलता के बल पर शासकीय क्षेत्र में वे ऐसे सफलताएँ अर्जित करते रहे, जैसे उपलब्धियाँ उनकी बाट जोह रही हों।

भारतीय प्रशासनिक सेवा तजकर वे १९९४ से लेकर भारत के नियंत्रक व महालेखा परीक्षक के पद पर रहे। १९९१ में अपने प्रशासनिक योगदान के लिए भारत सरकार ने चतुर्वेदीजी को 'पद्म विभूषण' की उपाधि से सम्मानित किया। अपने नियंत्रक व महालेखा परीक्षक रहने के दौरान बोफोर्स तोप की खरीद की जाँच महालेखानिरीक्षक के कार्यालय द्वारा की गई। राजीव गांधी तब प्रधानमंत्री थे। इस रिपोर्ट में कमीशन आदि के जिक्र के कारण संसद् में विरोधी दल के सदस्यों ने शासकीय दल के विरुद्ध हंगामा मचा दिया। एक बार बोफोर्स के बारे में उन्होंने स्वयं बताया था कि 'छोटी सी छह-सात पन्ने की रिपोर्ट थी। इसमें किसी पर भी व्यक्तिगत दोषारोपण नहीं था। संभव है कि सरकार ने इसे ठीक से 'हैंडल' नहीं किया था, विरोधियों ने व्यर्थ का बखेड़ा खड़ा कर दिया।' इस रिपोर्ट के आधार पर सरकार को सत्ता से हाथ धोना पड़ा।

इसके पश्चात् चतुर्वेदीजी कर्नाटक व केरल के राज्यपाल रहे और उसके पहले राज्यसभा के सदस्य। भूतपूर्व कैबिनेट सचिव के. चंद्रशेखर चतुर्वेदीजी के प्रशिक्षार्थी थे, जब चतुर्वेदीजी १९७० में राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी में संयुकत निदेशक थे। उनके अनुसार चतुर्वेदीजी 'संवेदनशील व दयालु' थे। बहुत कम ऐसे प्रशासक हैं, जिनकी प्रशंसा में उनके वरिष्ठ तथा कनिष्ठ सभी तरह के अधिकारी एकमत हैं। श्री चतुर्वेदीजी उनमें से एक हैं। इतना ही नहीं, वे स्वयं एक ऐसे अधिकारी रहे, जो सरकारी सेवा से तो सेवानिवृत्त हुए, पर जीवन से कभी रिटायर नहीं हुए। वे हमेशा किसी-न-किसी रचनात्मक पद पर बने रहे। लोक प्रशासन के भारतीय संस्थान (आई.आई.पी.ए.) के निदेशक ही नहीं, वर्षों तक वे उसके चेयरमैन भी रहे। 'साहित्य अमृत' के संपादक के रूप में पाठक उनकी टिप्पणियों को हमेशा याद रखेंगे। लोक प्रशासन के क्षेत्र में उनका स्वर्गवास एक 'अपूर्णनीय क्षति' है। ऐसे महान् प्रशासक कम ही होते हैं, जो अजातशत्रु ही नहीं, एक दयालु, संवेदनशील तथा जीवन के प्रति सार्थक दृष्टिकोण रखनेवाले ही नहीं, बेहद अध्ययनशील व्यक्ति भी हों। उनका पूरा जीवन सरकारी पदों के साथ ही उपयोगी सामाजिक कार्यों में बीता है। हिंदी के भी वे विलक्षण अध्येता थे, जैसे और विषयों के।

यह बहुत कम लोगों को पता होगा कि पुस्तकों की खरीद में उनके वेतन का काफी अंश निकल जाता था। उन्होंने जहाँ भी काम किया, उनकी लोकप्रियता का, वह भी सामान्य इनसानों के बीच, अनुमान लगाना कठिन है। मुझे आज भी याद है कि जब उनकी पत्नी मृत्यु-शैया पर थीं तो उनसे कुछ जरूरतमंद व्यक्ति कन्नौज से मिलने आए। शिरडी के साईं बाबा की प्रार्थना सभा के बीच मैंने उन्हें तंग करना उचित नहीं समझा। सभा स्थल से बाहर आकर मैंने आगंतुकों को समझाया कि इस गंभीर स्थिति में भाई साहब से भेंट संभव नहीं है। किसी ने उन्हें अवश्य सूचित किया होगा, वे आए। उन्होंने आवेदन लिये। ग्यारह बजे दूसरे दिन दफ्तर में मुलाकात के लिए समय दिया। चाय-पानी का निर्देश दिया और अंदर चले गए। भाई साहब पत्नी की दशा से स्वयं दुखी और पीड़ा के पहाड़ को झेल रहे थे। इसके वाबजूद घर आए अजनबियों के प्रति उनका सौम्य व्यवहार उनकी 'एंपैथी' का ही द्योतक है, वरना अपने दु:ख के आगे दूसरे के दु:ख-दर्द का सोचता ही कौन है? उसका अहसास करना तो और भी मुश्किल है। न हम भगवान् से मिले हैं, न किसी देवता से। हमें विश्वास है कि यदि कोई देवपुरुष होता तो कतई टी.एन. चतुर्वेदीजी जैसा ही होता। हमारी तरह 'साहित्य अमृत' के हजारों पाठक और उनके अनगिनत परिचित उन्हें अश्रु-पूरित हृदय से श्रद्धांजलि दे रह होंगे। हमें लगता है कि नश्वर शरीर को एक-न-एक दिन माटी में मिलना है, पर कुछ ऐसे महान् व्यक्ति भी हैं, जो अपने कर्मों से हमेशा सामान्य व्यक्ति के मानस में जीवित रहेंगे। त्रिलोकी नाथ चतुर्वेदीजी एक ऐसे ही युग-पुरुष हैं, जो सफल प्रशासक के रूप में ही नहीं, एक बेहद नेक संवेदनशील इनसान के रूप में स्मृति में अंकित रहेंगे। ऐसे आदर्श और अनुकरणीय पुरुष कम ही जन्म लेते हैं।

साअ
९/५, राणा प्रताप मार्ग
लखनऊ-२२६००१
दूरभाष : ९४१५३४८४३८

हँसी और हँसी-व्रत

मूल : **श्रीकुल शइकीया**

अनुवाद : **महेंद्रनाथ दुबे**

रात की वेला में लिया गया एक विशेष मुहूर्त का कोई निर्णय अथवा मन में उभर आई कोई क्षणभर चमककर खत्म हो जानेवाली कोई प्रतिज्ञा या शुरू हो रहे नए वर्ष के आरंभ की उत्तेजनापूर्ण वेला में निरर्थक बानरघुड़की, किसी दूसरे व्यक्ति को देख लेने, किसी की चुनौती को स्वीकार कर उसे भयानक आघात पहुँचाने की धमकी, जिसे कई दिनों तक दुहरा-दुहराकर बनाए रखने की खोखली या कुछ अच्छी बात भी समझी जा सकती है; ठीक उसी तरह जैसे कोई निर्णय उसने लिया नहीं। इस बार जो दृढ़-व्रत उसने लिया है, कम-से-कम उसे वह अपने दैनंदिन जीवन के स्वाभाविक क्रियाकलापों के साथ इस तरह घुला-मिला देगा, उसे एकरस कर देगा, ताकि वह अलग-थलग रहे ही नहीं, जिस तरह मनुष्य की श्वास-प्रश्वास जुड़कर निरंतर चलती रहती है, ठीक उसी तरह अपने इस प्रण को भी अपनी प्राणदायिनी शक्ति बना लेगा।

आज लिया गया यह व्रत पहले के उस व्रत के जैसा नहीं होगा, जिसमें उसने तीन-तीन कसमें खाकर आगे फिर सिगरेट न पीने का व्रत लिया था, किंतु थोड़ा समय बीतते ही दौड़ता हुआ हरकांत सेठ की दुकान पर जाकर वहाँ से सिगरेट का एक पूरा पैकेट खरीद लाया था और धूम्रपान विरोधी की गई अपनी सारी नारेबाजी को सिगरेट-पर-सिगरेट पी-पीकर धुएँ की तरह ही उड़ा दिया था कि इस तरह की कारसाजी अब इस बार हरगिज नहीं करेगा। इस प्रकार के अत्यंत दृढ़-चरित्रवाले के रूप में अपने को भलीभाँति तैयार कर लेने के बाद रात की वेला के चार-पाँच घंटे की गहरी नींद के गड्ढे में गोता लगा चुकने के बाद उसके मोह के गहरे अँधेरे में गिरकर वह स्वयं के दृढ़ व्रत से भी पतित हो जाएगा। इसी बात पर वह एकाएक विश्वास नहीं कर सका था—

"रात में लिये गए व्रत और उसका निर्वाह करने के लिए खाई गई कसमें भूल गए क्या?"

"कैसा व्रत, कैसी कसम? अरे हाँ, यही न कि धूम्रपान नहीं करूँगा। अपने काम करने के कार्यालय में देरी करके नहीं पहुँचूँगा, समय पर पहुँचा करूँगा।"

"सारी चर्चा-परिचर्चा, प्रण-व्रत-सिद्धांत निबाहने का जो संकल्प लिया था, वह सभी कुछ इतनी जल्दी धूल में मिला दिया क्या? मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि तुम किसी भी बात को सँभाले नहीं रख सकते। दरअसल किसी भी सिद्धांत, किसी भी कसम को निबाहने के लिए जितनी अधिक मानसिक शक्ति की आवश्यकता होती है, उसकी तनिक सी भी क्षमता तुममें नहीं है। यदि ऐसी क्षमता तुममें सचमुच होती तो एक दिन ली गई शपथ को फिर दूसरे दिन, इस बात के बाद उस बात की शपथ लेकर उसका निर्वाह करने का प्रस्ताव घोषित करते हो, हाथ की मुट्ठी बाँधकर झटकारते हुए ऐसी भाव-मुद्राएँ बनाओगे, जैसे सबकुछ कर गुजरने की ताकत तुममें वर्तमान है। तुम सहज-सरल विश्वसनीय मनवाले हो, इस प्रकार का नाटकीय प्रदर्शन नाटक खेलनेवाले अभिनेताओं की तरह सबके सामने दिखलाते हो, जबकि सच्चाई यह है कि जहाँ तक तुम्हारे मन की असलियत का प्रश्न है—तुम्हारी मानसिक शक्ति की जगह एक विराट् शून्य भर है, सबकुछ खाली-खाली है।"

सोए रहने की अवस्था से निवृत्त हो अपने बिछावन से अभी वह उठा ही नहीं कि नींद की झिलमिल चौंधियाहट के मायाजाल ने उसके शरीर-मन-आँख आदि सभी अंगों को अपनी जकड़न में लेकर अपनी आखिरी गतिविधि चलाए हुए है, फर्क बस इतना भर हुआ है कि नींद की गहराई से थोड़ा बाहर निकल आया है। बस इतने भर में ही ऐसी सब उपदेश-आदेशपरक बातें, ऐसी भाषणबाजी किसके साथ होती रही? उसकी जानकारी के बगैर ही यह सब कैसे हुआ? इसका थाह-पता लगाने की उसने सोची।

मेरी ओर अपना मुँह घुमाओगे तो तुरंत ही तुम्हें उस व्रत की याद आ जाएगी, जो तुमने रात की वेला में लिया था और उसे बहुत लंबे समय तक निबाहने की प्रतिज्ञा की थी। इस समय जो तुम याद नहीं कर पा रहे हो, उसका कारण यही है कि नींद ने चाहे थोड़ी देर के लिए ही सही, पर तुम्हारी स्मृति की सुरक्षा-प्रणाली को उखाड़-पछाड़ दिया है। जिसके कारण उसने अपनी आँखों को बड़ा करते हुए खोल दिया, जिस तरह कोई हड्डी-पसली-विहीन जीव तह-पर-तह चपटा पड़ा हो। इस अवस्था से छुटकारा पाने के लिए उसने अपने शरीर के

विभिन्न अंगों को रेखागणित के विभिन्न कोणों की तरह मोड़कर एक लंबी अँगड़ाई लेते हुए सामने की उस लोहे की अलमारी, जिसमें एक बड़े आकार का आईना जड़ा हुआ है, जो अब तक सजने-सँवरने की मेज का काम करता रहा है, उसकी ओर देखा।

"'हा-हा-हा-हा' करके अट्टहास करता रहूँगा, इसी बात को लेकर ही तो तुम···"

इतने समय तक चुप्पी साधे पड़े रहनेवाले आईने ने उसे सचमुच ही याद दिला दिया कि उसे हँसना चाहिए। इस बात का व्रत उसने कल की रात में ही ले लिया था। जीवन को हँसते-हँसते ही बिताना होगा। क्योंकि हँसने की कला न जानने, हँसी-मजाक-फुरतीबाजी से जीवन चलाना न जानने से मानसिक, बौद्धिक, शारीरिक, सभी प्रकार की आपदाएँ, आफत, विपदा, आकस्मिक परेशानियाँ आती रहती हैं। बीते कई वर्षों से वह उच्च रक्तचाप और हृदय-रोग से पीड़ित हो गया है। मन में लगातार बना रहनेवाला मृत्यु का भय उसके दिन-प्रति-दिन के जीवन के हर एक क्षण की सुख-शांति को विनष्ट कर रहा है। इस प्रकार के दुर्गम, नाना प्रकार की विघ्न-बाधाओं से दबे-पिसे जीवन का मूल कारण यही है कि अपनी इस जिंदगी में वह दिल खोलकर हँसनेवाली निर्मल हँसी कभी हँस नहीं पाया। हँसी का जो अनंत विस्तारमय माधुर्य है, उसे उसने आगे बढ़कर कभी अपनी गलबहियों में, अपने आलिंगन में लेकर कलेजे से नहीं लगाया। फलस्वरूप षड्यंत्रकारी-महाविनाशकारी चक्रव्यूह के फंदे में पड़कर वह हँसी-मजाक केलि-क्रीड़ामय जीवन से दूर होकर ऐसी दशा में जा गिरा है और ऐसी षड्यंत्रकारी दुष्ट स्थिति ने उसका ऐसा हाल कर दिया है कि उसका जीवन हँसी-विहीन हो गया है। उसके लिए प्रत्येक दिन की वेदनाओं से अक्रांत होने के कारण सहने की सीमा के पार होकर असहनीय हो गया है। जीने की मानसिक प्रेरणा ही उससे दूर हो गई है। जिजीविषा ही नष्ट हो गई है। जैसे कोई मशीन चलती है, ठीक उसी प्रकार लोहा-लक्कड़-स्प्रिंग, बियरिंग, बिजली के उत्ताप से धक्के खा-खाकर प्राणशक्ति से रहित उसका जीवन मशीनी मानुष—रोबोट की तरह चल रहा है, जिसके किसी भी क्षण-विशेष में, तमाशा, मजाक आदि कभी भी हँसी आती ही नहीं। मानसिक अवसाद, थकान आदि को दूर भगा देनेवाले स्फूर्तिदायक गीत उसके जीवन में कभी आते ही नहीं। जहाँ किसी भी समय जीवन का स्पंदन अनुभव होता ही नहीं।

नहीं, इस तरह की प्रक्रिया से जीवन को चलाने देना बिल्कुल ठीक नहीं। इसे ऐसे चलने नहीं दे सकते! देह, जो क्षणभंगुर है, उसकी इस क्षणभंगुरता को इतनी दुर्दशा की स्थिति में ही गुजार देना बिल्कुल ठीक नहीं। प्राण को उसकी जो निजी मधुरिमा है, सुखमय अनुभूति है, रंग-तरंग-आनंदमय, जो उसकी सहज प्रवत्ति है, उसे उसी आनंदोत्सवमय जीवन के रूप में ही आगे बढ़ाते रहने की जरूरत है। उसकी जो निजी भंगिमा है, उसे खाद-मिट्टी-पानी देकर उसके अंकुर को पर्याप्त ऊर्जा देकर दृढ़ और सबलता से बढ़ने लायक बनाने की जरूरत है। अरे, अब और बचे ही कितने दिन हैं!

अभी दो दिन पहले ही तो उसने किसी जगह पढ़ा है कि हँसी के समान कोई दूसरा व्यायाम नहीं है। हँसते समय शरीर की दो सौ से भी अधिक मांसपेशियों का व्यायाम हो जाता है। भौतिक दृष्टि से जो इतना बड़ा लाभ होता है, उसके ऊपर मानसिक स्तर पर भी प्राणवंत होने की अलौकिक शक्ति-सामर्थ्य आ जाती है। हँसी के दृढ़-व्रती में ऐसी मानसिक शक्ति आ जाती है कि वह दूर पड़ी स्टील की चम्मच को भी अपने सबल दृष्टि-निक्षेप से टेढ़ा कर सकता है। नहीं, वह इजराइल के उस प्रसिद्ध कलाकार की तरह हँसी की जादुई शक्ति से दूरस्थ पदार्थों को टेढ़ा-मेढ़ा कर जादूगरी का प्रदर्शन करने की इच्छा नहीं होती, जिससे पूरी दुनिया को अचंभित कर सके। परंतु उस शक्ति से वह जीवन के कुछ दिन या दिन की जगह वर्ष भी हो सकता है, अत: हम कह सकते हैं कि जीवन के कुछ वर्ष, संक्षेप में कहें तो जो आयु शेष बची है, उसे अपने जीवन को पूरी प्राणशक्ति से आनंद-आह्लादपूर्वक उपभोग कर सकेगा, जहाँ बीमारी-बरबादी की जलन नहीं होगी, न होगी दु:ख-दर्द भरी चीख-चिल्लाहट। अभी उसी दिन तो उससे किसी ने कहा था, या फिर कहीं उसने पढ़ा था कि हँसना जानने की प्रवृत्ति का मनुष्य के जीवन से वंशानुगत संबंध है, अर्थात् मनुष्य के रूप में जन्म लेते से ही हँसी रूपी मधु-छत्ता उसकी जीवन-डाल से चिपका-लटका रहता है। इतने दिनों तक वह भले ही भुला नहीं पाया, फिर भी एक और बात अधिक महत्त्व दिए जाने योग्य थी कि उसके एक रिश्तेदार ने कुछ समय पहले ही 'महान् अभिनेता' की उपाधि पाई थी।

चलते-फिरते रंगनाटक, यात्रा-पार्टी लोकनाट्यों के मंचन में जन-समारोहों में किए जानेवाले कीर्तनों-भजनों में वे जो गीत-संगीत गाते, व्यंग्य-विनोद-कौतुक करते, बोलने और शरीर के विभिन्न अंगों के भाँति-भाँति के संचालनों से जो मुद्राएँ बनाते, वे उन सबसे एकत्र जन-समुदाय को हँसी-आनंद की बाढ़ से भिगोकर उनकी सारी जड़ता-थकान को धो-नहलाकर साफ-सुथरा-तरोताजा बना दिया करते थे। बहुत दूर-दूर के लोग भी अपने यहाँ होनेवाले नाना प्रकार उत्सवों-पर्वों-समारोहों में उनकी उपस्थिति के लिए जी-जान से कोशिश करते थे। इसका अत्यंत सहज-सरल अर्थ यह है कि खुश रहने की जो आनुवंशिक क्षमता मनुष्य को प्राप्त है, जीवन को हँसी-मजाक करते हुए अत्यंत सहज-सरल ढंग से, किसी प्रकार की गंभीर चिंता के बोझ से मुक्त कर हलके-फुलके ढंग से जीवन जीने का जो सहज कौशल है, वह उनका जो जन्म लेने के वंशवृक्ष का अपना मूल तना है, वृक्ष जैसे अपने तने में सन्निविष्ट होता है, उसी तरह उनके जीवन रूपी तने में हँसी की प्रवृत्ति भी सन्निविष्ट है। आज इतने वर्षों बाद बहुत संभव है कि वातावरण में जो नाना प्रकार की विरोधी परिस्थितियाँ बनी हैं, उनके खिंचाव-दबाव के कारण उस मूल मानवीय प्रवृत्ति में कुछ बदलाव आया हो या फिर जो मूल प्रवत्ति थी, जो आधारभूत मानवीय गुण-धर्म थे, वे पूरी तरह चूर्ण-विचूर्ण होकर समाप्त नहीं हुए हैं। इस कदर तो हरगिज ही नहीं हुआ है कि वह अगर हँसना चाहे, हँसी-मजाक, आनंद-उत्साह मनाना चाहे तो वैसे कर ही न पाए। हँसी तो उसके लिए इतनी सहज है कि काँख में जरा सा गुदगुदाते ही वह खिलखिलाकर हँस पड़ेगा।

''कल जो फाइलें देखने-जाँचने से रह गई थीं, उन्हें ला दूँ क्या?''

इतने लंबे समय तक वह कुरसी पर बैठकर हँसी से संबंधित बातें, उसके संबंध में जो महानतम सिद्धांत स्थापित हुए हैं, उसके संबंध में सोचने-समझने, तुलनात्मक ढंग से उनकी समीक्षा करने आदि के गंभीर प्रश्नों पर विचार करने में वह निमग्न था कि हरिदास चपरासी ने आकर ऐसा प्रश्न पूछ लिया तो यदि पहले जैसी सामान्य परिस्थिति होती तो उसमें उसके सकपकाकर अचानक चकपका जाना ही स्वाभाविक था, क्योंकि स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ रहा था कि कार्यालय के अपने काम से वह पूरी तरह अन्यमनस्क था। कार्यालय के परिश्रमपूर्ण—कठोर कर्म से विरत रहकर वह स्मृति की रसमयी दुनिया में मानसिक रूप से भाव-विभोर होकर कुलाँचें भर रहा था।

बहुत सावधानी से सँभल-सँभलकर कह उठने के साथ ही वह समझ गया कि कार्यालय की कुछ आवश्यक फाइलों पर उसे जितना ध्यान देना चाहिए था, वस्तुतः उसने उनपर उतना ध्यान दिया नहीं। फिर भी उसने निश्चय किया कि फाइलों को निपटाने से अनावश्यक थकान होती है, जिससे घृणा सी पैदा हो जाती है। वह कम-से-कम आज तो उसकी उस प्रसन्नता को नष्ट न कर सके, जिस प्रसन्नता का भाव हँसी का चिंतन करते हुए उसे आज सहज रूप से मिला है।

''ठीक है, लाना चाहते हो तो लेकर ही आना न।''

बहुत सावधानी से सँभल-सँभलकर कह उठने के साथ ही वह समझ गया कि कार्यालय की कुछ आवश्यक फाइलों पर उसे जितना ध्यान देना चाहिए था, वस्तुत: उसने उनपर उतना ध्यान दिया नहीं। फिर भी उसने निश्चय किया कि फाइलों को निपटाने से अनावश्यक थकान होती है, जिससे घृणा सी पैदा हो जाती है। वह कम-से-कम आज तो उसकी उस प्रसन्नता को नष्ट न कर सके, जिस प्रसन्नता का भाव हँसी का चिंतन करते हुए उसे आज सहज रूप से मिला है। उसने सोचा कि अब वह इस तरह खिलखिलाकर इतनी जोर से हँसे कि जो प्रसन्नता उसे हँसी से प्राप्त हुई है, वह प्रसन्नता हरिदास के हृदय में भी महसूस होने लगे। अत: खिलखिलाकर हँसते हुए उसने कहा, ''अरे, फाइल ले आना न! यह सब दफ्तरी काम तो चलता ही रहता है और चलता ही रहेगा भी। अत: चिंता छोड़कर हँसी-मजाक भरा मस्ती का जीवन जीना होगा, समझे न! नहीं तो दु:ख-दरिद्रता-निराशा से दबे-कुचले रहकर शीघ्र ही किसी दिन अकाल मृत्यु मरकर परलोक सिधार जाएगा। और हाँ, तुमने जो छुट्टी पाने के लिए प्रार्थना-पत्र दिया था, उसका क्या हुआ? छुट्टी पा गया? वैसे नहीं भी पाए हो तो भी कोई चिंता करने की जरूरत नहीं है। सबकुछ चल जाता ही है। समझते हो न कि इस तरह बराबर चिंताओं के बोझ से सिर झुकाए रहने से मनुष्य की आयु छोटी हो जाती है। बीमारी, ज्वर-जड़ाय की पीड़ा आदि होती रहती है। अत: सुख-सुविधापूर्ण स्थिति पाने की उम्मीदें छोड़ जो पाया है, बस उतने भर से। अरे-अरे! तेरे बेटे ने तो हाई स्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण कर ली है न! उसे खूब अच्छी तरह पढ़ाना। इस सबसे ही तुम आनंद पाओगे।"

वे कहते गए, किंतु हरिदास ने उनकी कही पिछली बातों की ओर ध्यान नहीं दिया। बस, हामी भरकर वह अब एक दूसरी ही परिस्थिति का मुकाबला करने की तैयारी करने की सोच रहा है—

''देखो, तुम बिना किसी डर-घबराहट के, निस्संकोच जो कुछ भी मुझसे पूछना चाहते हो, पूछ सकते हो! डरने का कोई कारण ही नहीं है। तुम मुझे प्रसन्न-चित्त रहने दो, मैं तुम्हें हँसी-खुशी व स्फूर्ति से भरा हुआ बना रहने दूँगा। हमें बराबर यही कोशिश करनी चाहिए। तुमने हास्य-योग का नाम सुना है? आज के युग में एक नए प्रकार की सोच-समझ विकसित हुई है, नए ढंग का विचार-विमर्श शुरू हुआ है। विचारशील मनुष्य आज हँसने के लिए, जी खोलकर उन्मुक्त हँसी हँसने के लिए अपने व्यस्त समय में से समय निकालकर अब 'विश्व हास्य दिवस' मनाने का निर्णय ले चुके हैं। इसका आधारभूत कारण यह है कि वैसी ऊँचे दर्जे की जी-खोलकर हँसनेवाली हँसी-अट्टहास हँसने से हृदय के अंतरतम तक के सभी अंगों को असीम शक्ति-सामर्थ्य पैदा करने की क्षमता उत्पन्न होती है, रोग-व्याधि को दूर करने के औषधीय गुण पैदा होते हैं, आयु बढ़ा देने की महाक्षमता वाली पौष्टिक ताकत मिलती है। तुम लोग चूँकि इस ओर विशेष ध्यान नहीं देते, इसकी महिमा को महत्त्व नहीं देते, इसी से बहुत कम उम्र में ही···

''अरे हाँ रे! बता तो तुम्हारी उम्र कितनी है? अधिक-से-अधिक दो-बीसी अर्थात् चालीस वर्ष की ही तो होगी! किंतु इसी उम्र में तुम्हारा शरीर साठ वर्ष के बूढ़े जैसा हो गया हो, ऐसा लगता है, हा, हा, हा···''

इतनी सारी बातें सुनने के लिए हरिदास कभी भी तैयार नहीं रह सकता। इतने लंबे समय की अपनी नौकरी में इस प्रकार की कोई भी और अस्वाभाविक परिस्थिति उसके सामने आई हो, ऐसी कुछ की तो उसे याद ही नहीं आ रही।

''आज के दिन से ही मन में याद किए रखना कि मैंने बातों को किस रूप में लिया है। मेरे मुख से हँसी कभी गायब नहीं होगी। अर्थात् किसी भी प्रकार की कठिनाई, किसी प्रकार की हानि पहुँचाने की परिस्थिति भी मेरे हँसमुख चेहरे की मधुरता को हटा नहीं पाएगी, इसे भली-भाँति समझ लेना। जैसे कि अभी आज की ही घटना को ही देखो न, आज सवेरे-सवेरे नींद से जगते ही मैंने जाना कि घर पर दूध पहुँचानेवाले ग्वाले ने दूध का दाम बढ़ा दिया है। सरकार ने बिजली का किराया भी बढ़ा दिया है। हमारी गृहस्थी की जो मासिक आमदनी और खर्च की स्थिति है, उसमें अचानक बहुत नुकसानदायक आघात लगा है। इन सब चोटों की सूचना मेरी बड़ी बहन के चहरे पर छाए भावों ने मुझे प्रात:काल ही दे दी। परंतु इतना कुछ जानकर भी इन सबका सामना करने के संबंध में मैं क्या कुछ सोच रहा हूँ, जानते हो?"

"हाँ साहेब, आप सभी कुछ को हँसी से···"

हा-हा-हा! ठीक समझा है तुमने। अरे, जो कुछ भी होना होगा, वह तो होगा ही। अभी आज इस महीने की पंद्रह तारीख ही है, जबकि यह

सारा झमेला तो महीने के अंत में आएगा, यानी पंद्रह दिन बाद में; फिर आज ही मैं अपनी हँसी-खुशी गँवाकर उन्हीं सब चिंताओं में डूबा रहूँगा क्या? नहीं, ऐसा कतई नहीं होगा। अब आज की ही यह घटना देखो न। मैं जब नगर बस-सेवा की सीट पर बैठकर आ रहा था, तब दो नौजवान छोकरे अपने चेहरे और जबान को ऐंठ-पैंठकर मुझे चिढ़ाने के अंदाज में यह कहते हुए कि 'तया को उसकी सीट से उठा दो!' मेरा मजाक उड़ाते हुए मुझे चिढ़ाने की कोशिशें करने लगे। ऐसी व्यंग्य-विद्रूप भरी उनकी हरकतों पर अगर ध्यान दें तो वह मेरे पुरुषत्व को ललकारने और मेरा तिरस्कार कर मुझे उत्तेजित कर प्रतिक्रिया में कुछ कर गुजरने का सीधा चैलेंज-सा था। और कुछ नहीं तो कम-से-कम उसके प्रत्युत्तर में उन्हें दो-चार बातें तो सुना ही सकता हूँ, लेकिन मैंने ऐसा कुछ नहीं किया; क्योंकि मैं जानता हूँ कि ऐसी छोटी-छोटी घटनाओं से अपने अंतरतम की भावनाओं को ठेस पहुँचाकर हीन-दीन-बेचारा बन जाने से तो काम नहीं चलेगा। अधिकाधिक क्रोध करने पर मेरे शरीर की रक्तपेशियों के उत्तेजक तत्त्व (हारमोंस) बढ़ जाने से मेरे अपने शरीर के प्रति ही अन्याय होगा। मेरी मानसिक प्रसन्नता नष्ट हो जाएगी। ये सारी संभावनाएँ तो मेरी जानी-परखी हैं। अत: मैंने अपने चेहरे पर ऐसे भाव बनाए, जैसे कुछ हुआ ही न हो। फिर वे सब अच्छी तरह सुन सकें, इस उद्देश्य से मैं जोर-जोर से खिलखिलाकर हँस पड़ा।

हँसी की नकली मुद्राओं से चेहरे पर उभर आई लकीरों से हरिदास के मुख पर भी हँसी का ऐसा भाव आया कि उसका चेहरा कुछ टेढ़ा हो गया। बोला, "अभी थोड़ी देर पहले ही मेरी घरवाली ने घर से फोन करके सूचना दी है कि मेरे बेटे की नौकरी नहीं लग पाई है। वैसे मेरा बेटा पहले से ही जानता था कि नौकरी के लिए घूस का पैसा न देने पर नौकरी कदापि नहीं लगेगी।"

उसको मैंने बतलाया कि कोई बात नहीं है। इन सबके बीच ही मौज-मस्ती से जीवन जीना चाहिए। और फिर समझाया कि जाकर कोई हिंदी सिनेमा देख आए। अगर वह भी न हो पाए तो जाकर अपनी ही भाषा का कोई रोचक नाटक या सिनेमा देख आए, जिसे देखने से मन खुलकर हँसी हँस सके। ऐसे में चार्ली चैपलिन की पिक्चरें ज्यादा लाभदायक होतीं, मगर आजकल तो ये कहीं दिखाई ही नहीं जा रहीं।

इसी बीच उधर हरिदास बाहर निकलने के लिए मौका तलाश रहा था।

उसकी छटपटाहट देखकर मैंने कहा, ''तुम चले जाओ! जो कुछ फाइलें यहाँ लानी हैं, उन्हें अमिय के हाथों भेज दो। उससे कहना कि मैंने उन्हें मँगवाया है। वह बड़ा ही मस्तमौला लड़का है। बीते दो वर्षों में मैंने जो उसे यहाँ पाया है, निरखा-परखा है, उससे अनुभव किया है कि जीवन जीने का अर्थ वह खूब अच्छी तरह जानता है। हँसी-मजाक, ठट्ठा-ठिठोली करता हुआ वह अपनी उम्र पच्चीस वर्ष पर ही ठहराए रख सकेगा। उसके मुख पर बनी रहनेवाली हँसी, जो दूसरों को भी हँसने की प्रेरणा देती है, सदा-सर्वदा खिला-खिला सा उसका मुखमंडल चिंता-भावना से दूर ऐसे आनंद का स्रोत है कि उसे मेरी भी उम्र के आगे बढ़ती हुई घड़ी और आगे न बढ़कर पीछे की ओर मुड़ जाती है। मैं पहले की अपेक्षा नौजवान हो जाता हूँ। वह जीवन जीने की कला जानता है। वह हृष्ट-पुष्ट युवक है। इसी प्रकार वह एक सौ वर्ष तक जिंदा रह सकेगा। रोग-कष्ट-बीमारी की तो कोई बात ही नहीं है। तुम सभी को उसका अनुसरण करना उचित है। बहुत दिनों···''

हरिदास द्वार की देहरी तब पहुँच गया था, मगर वहाँ से लौट आया। उसने जो-जो बातें कहीं, उसके प्रत्येक शब्द उसके कानों में नहीं समा सके, क्योंकि उसके द्वारा प्रत्येक शब्द का अर्थ-विश्लेषण करके समय नष्ट करने का कोई अर्थ ही नहीं है। वे कही गई तमाम बातों का मूल भाव समझ गए। फिर भी उन्हें तो हँसते ही रहना होगा। उन्होंने हँसते रहने का व्रत स्वीकार किया है। उनके हँसते रहने के निश्चय पर कहीं कोई हेर-फेर नहीं हुआ है। ऐसे दिखावा करते हुए उन्होंने उस मूलभाव की गंभीरता को हँसी में उड़ा देने की सोची, अट्टहास करने लगे—"हा, हा, हा।''

हरिदास वहाँ से हट गया। कमरा अब पूरी तरह खाली हो गया है। उनके सिवा वहाँ और कोई भी नहीं है। वे जिस कमरे में बैठे हैं, उसके सटे प्रसाधन-कक्ष (बाथरूम) में जो बड़ा सा आईना लगा है, उसके सामने खड़े होकर उन्होंने एक बार अपना मुखड़ा गौर से निरख-परख लिया। सभी तरह से ठीक-ठाक बिना किसी मिलावट के मोह-माया से मुक्त विशुद्ध हँसी उसके मुख पर फैली हुई है। आँखों के कोनों में छलछला आए दो बूँद पानी को उन्होंने आँसू मानना स्वीकार नहीं किया। ऐसी स्थिति में वे सचमुच हँस रहे हैं, इस बात में कोई संदेह नहीं है।

"अमिय आज के बाद से अब कभी कार्यालय नहीं आएगा। सड़क पर किसी ने उसे गोलियों से छलनी कर मार डाला है।"

कई दिनों बाद उसका जो बासी शव मिला, उस बासी पड़ गए शव के मुख पर जो हँसी मौजूद थी, वह अभी इस समय मेरे मुख पर जो हँसी लटकी हुई है, ठीक इसी तरह दिखाई पड़ रही है—उसने विचारा। "नन्हे बच्चे की तरह हिचक-हिचककर रो रहे हो किसलिए?" आईने में हँसता हुआ उसका जो मुख-प्रतिबिंब दिखाई पड़ रहा है, उस मुखड़े ने ही उससे पूछा।

हृदय में उभरी असहनीय प्रचंड वेदना की विषैली चोट के बावजूद वह हँसता ही रहा—हा-हा-हा।

भवन सं. २, दयाबाग कॉलोनी
जगनपुर बेला, खेलगाँव मार्ग
दयालबाग, आगरा-२८२००५
दूरभाष : ९४१०८३८०२१

डॉ. गंगाप्रसाद विमल : चिरस्थायी है वह मोहक मुसकान

● लक्ष्मीशंकर वाजपेयी

तब मुझे आकाशवाणी के राष्ट्रीय चैनल में आए बहुत समय नहीं हुआ था। दिल्ली की साहित्यिक दुनिया से भी सीधा साक्षात्कार उतना नहीं हो पाया था। मंत्रालय से एक डॉक्यूमेंटरी प्रसारित करने का निर्देश था। समय बहुत कम था और तलाश थी किसी लेखक की, जो बहुत कम समय में राष्ट्रीय चैनल की प्रतिष्ठा के अनुरूप लिख सके। मेरे वरिष्ठ अधिकारी ने सुझाया कि इस स्थिति में डॉ. गंगाप्रसाद विमल ही मददगार हो सकते हैं। डॉ. विमल से संपर्क हुआ। वे राष्ट्रीय चैनल आए, रेडियो रूपक लिखा, जो बहुत उत्कृष्ट कार्यक्रम बना। १९८९ में एक 'वार्त्ताकार' के रूप में जिन डॉ. विमल से भेंट हुई, वे अपनी सहजता, सरलता एवं आत्मीयता के कारण एक ही मुलाकात में बहुत हद तक अपने हो गए। मैं डॉ. विमल की कविताओं, कहानियों तथा लेखों से परिचित था, किंतु उन्होंने 'रेडियो रूपक' जैसी कठिन विधा में जिस अनूठे ढंग से लिखा था, वह उनकी लेखनी का ही कमाल था।

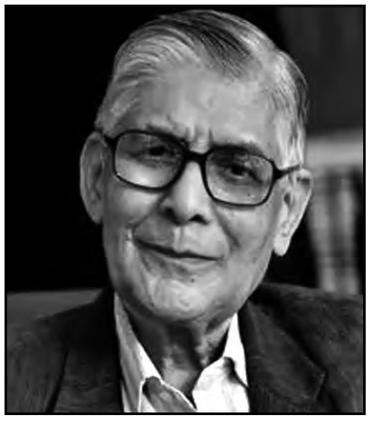

डॉ. विमल की कविताओं का मैं बहुत पहले से ही प्रशंसक था। उनकी कविताओं में जहाँ वर्तमान समय की अनेकानेक छवियाँ मिलती हैं और हमारी जिंदगी की जटिलताएँ व्यक्त होती थीं, वहीं उनमें कहीं-न-कहीं एक दार्शनिक स्पर्श प्रभावित करता था। मुझे उनकी एक बहुत पुरानी कविता का स्मरण हो रहा है, जिसके कुछ अंश आपसे साझा कर रहा हूँ—

हम सब गुफाओं से आए लोग हैं
वहीं जाएँगे
उजाले की सुरंग से
अदृष्ट का दिया
आलोक
धकेल रहा है अँधेरे की ओर
और खुश हैं हम
वहीं लौटेंगे
जहाँ अहसास का प्रतिरूप नहीं
जड़ता भरा ठहराव है!
हमने खुद गुफाएँ बनाईं
अदृश्य
और उनमें जब-तब जाते रहे
खुद से भी छिपने के लिए
अपने ही तर्कों के परदों से
ढक रहे हैं अपने इरादे
जब तक साधना-स्थल कहते रहे
खुली गुफाओं को··
रहस्य स्वयं ही जोड़ दिए
स्वगत
भूलते रहे असली गुफाओं को··

यह लंबी कविता जैसे मनुष्यों के द्वारा स्वयं बुने भ्रमजालों की पड़ताल करती है। उनकी कविताओं में मौजूद दर्शन-अध्यात्म का स्पर्श निश्चय ही पहाड़ों की देन है, जिसे उन्होंने जीवन भर अपने विचार-जगत् में जीवित रखा। उनकी कहानियों तथा उपन्यासों में भी पहाड़ एवं पहाड़ी जीवन की भरपूर उपस्थिति है।

'बोधिवृक्ष', 'इतना कुछ', 'तलिस्मा', 'सन्नाटे से मुठभेड़', 'मैं वहाँ हूँ', 'कुछ तो है' आदि कविता-संग्रह, 'कोई शुरुआत', 'अतीत में कुछ', 'इधर-उधर', 'बाहर न भीतर', 'खोई हुई थाती' जैसे कहानी-संग्रह; 'अपने से अलग', 'कहीं कुछ और', 'मरीचिका', 'मृगांतक' तथा 'मानुषखोर' जैसे उपन्यासों के अतिरिक्त अनेक लेखों, यात्रा-वृत्तांतों, संस्मरणों तथा अनुवादों आदि के माध्यम से हिंदी-साहित्य को उनके मूल्यवान योगदान के साथ-साथ साहित्य के प्रचार-प्रसार में उनकी 'लिटेरेरी एक्टीविस्ट' वाली भूमिका भी उल्लेखनीय रही है। चाहे केंद्रीय हिंदी निदेशालय का उनका कार्यकाल हो अथवा राष्ट्रीय सिंधी परिषद् तथा राष्ट्रीय उर्दू परिषद् एवं राष्ट्रीय उर्दू परिषद् को दी गई उनकी बहुमूल्य सेवाएँ हों, सभी में उन्होंने एक विशिष्ट छाप छोड़ी। साहित्यिक आयोजनों में उनकी भागीदारी का मैं प्रत्यक्ष गवाह भी हूँ तथा अनेक मंचों पर साझेदार भी। हिंदी में विचारधारा के स्तर पर अनेक बँटवारे किसी से छुपे नहीं हैं, किंतु विमलजी सबके चहेते थे। उनकी सौम्यता, शालीनता, सबके बीच समन्वय की भावना एक सकारात्मक वातावरण बनाती थी। एक साहित्यिक कार्यक्रम में एक कृति पर हो रहे विमर्श में एक विद्वान् आलोचक ने अत्यंत कटु भाषा का प्रयोग किया, तब डॉ. विमलजी ने बड़ी शालीनता से विद्वान् आलोचक की बातों

को अपनी विद्वत्ता से एक नए परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया और उस आयोजन में पूरे सभागार ने डॉ. विमल की शालीनता तथा विद्वत्ता को अपार सराहना दी थी। छंदमुक्त कविता के प्रमुख प्रतिनिधि कवि होते हुए भी वे छंदबद्ध कविता के भी प्रशंसक रहे। युवाओं को आगे बढ़ाने में भी उनकी उल्लेखनीय भूमिका रही। 'साहित्य अमृत' की राष्ट्रीय कहानी प्रतियोगिता में निर्णायक के तौर पर उनकी टिप्पणी याद आती है—

"युवा हस्ताक्षरों को पढ़ना किसी विस्मय से कम रोमांचक नहीं है! संवेदना की सघनता कहें या अपने केंद्रीय मंतव्य को व्यक्त करने की छटपटाहट, हम तत्काल उनके सरोकारों से परिचित हो जाते हैं। अनजाने ही यह रहस्य उद्‌घाटित हुआ कि इसमें भाग लेने वाले युवा दूर-दराज के इलाकों के हैं—हिंदीतर और भारतेतर तथा इससे पनपनेवाली खुशी थी कि वे तर्क उभरने लगे, जिन्हें हम अकसर बहसों में एक-दूसरे से बाजी मारने के इरादे से आगे रखते हैं। पहले तो यही कि अंग्रेजी की गलाकाट स्पर्धा के युग में सृजनात्मक कार्यों के लिए उपयोगिता 'न' के बराबर है। इ-रिक्शा के इस युग में सत्यतापूर्ण न्याय के लिए अंग्रेजी स्वीकार नहीं है। उसकी जगह विकल्प है तो हिंदी। दूसरा यह कि भारत के प्रति अगाध प्रेम का कोई सूत्र है तो वह भारतीय भाषा ही है, अर्थात् सत्य और न्याय का पक्ष लेने के लिए सर्वोत्तम साधन है—स्वभाषा!"

डॉ. विमल के रचे विपुल साहित्य में उनका नवीनतम उपन्यास 'मानुषखोर' निश्चय ही उनकी साहित्य-यात्रा में मील का पत्थर है। उत्तरांचल के विस्तृत फलक पर रचे गए इस उपन्यास में स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व से लेकर अद्यतन कालखंड तक के इतिहास को बड़े कौशल से प्रस्तुत किया गया है। इस क्षेत्र की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं ऐतिहासिक प्रवृत्तियों के विस्तृत विवेचन के साथ ही वहाँ के लोकजीवन में प्रचलित रूढ़ संस्कारों, अंधविश्वासों, परंपरापोषित अनुष्ठानों, सामाजिक व्यवहारों आदि का अत्यंत मार्मिक आख्यान किया गया है। ब्रिटिश शासन के अवशेषों तथा प्रभावों का भी चित्र मिलता है। आर्थिक अभावों, शिक्षा, स्वास्थ्य संबंधी दुर्व्यवस्थाओं के साथ-साथ आधुनिक युग में अंकुरित हो रही चेतना को भी उपन्यास में बखूबी रेखांकित किया गया है। एक अनिवासी परिवार के माध्यम से सांस्कृतिक संक्रमण और मातृभूमि मोह का भी सुंदर चित्रण किया गया है।

कहा जाता है कि समग्र जीवन की अभिव्यक्ति उपन्यास की विशेषता एवं अनिवार्यता है। इस दृष्टि से 'मानुषखोर' उपन्यास उत्तरांचल के जीवन को समग्रता में व्यक्त करता है। यद्यपि यह उत्तरांचल केंद्रित है, फिर भी समग्र भारतीय जीवन को भी प्रतिबिंबित करने में सफल है। निश्चय ही 'मानुषखोर' उपन्यास डॉ. विमल को कथा-संसार में स्थायी कीर्ति देगा।

डॉ. विमल का अचानक से चले जाना बेहद पीड़ाजनक रहा, वह भी एक दर्दनाक दुर्घटना में। दुर्घटना में उनकी प्रतिभावान बेटी तथा नाती की अकाल मृत्यु भी हृदयविदारक है। हमेशा सबको अपनी हास-परिहास भरी बातों से प्रसन्न रखनेवाले इतने प्यारे इनसान का यों जाना, करोड़ों साहित्यप्रेमियों के लिए कभी न भरने वाले घाव दे गया, लेकिन डॉ. विमल की वह मोहक मुसकान तो हमारे मन-मस्तिष्क पर हमेशा जीवंत रहेगी ही।

सा.अ.
ए-९०६, कृष्णा गार्डन अपार्टमेंट,
सेक्टर-१९बी, द्वारका, नई दिल्ली-११००७५
दूरभाष : ९८९९८४४९३३

कवि तथा प्रसारणकर्ता; प्रतिनिधि भारतीय कवि के रूप में एक दर्जन से अधिक देशों में कविता पाठ; वेनेजुएला में 'विश्व कविता महोत्सव' में भारत से एकमात्र कवि; एक दर्जन देशी-विदेशी भाषाओं में कविताओं का अनुवाद हुआ है। सात विश्वविद्यालयों से मीडिया विषय पर अतिथि व्याख्याता तथा परीक्षक रूप में संबद्ध। १०० से अधिक राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय समारोहों की कमेंट्री।

एडल्टरी

लघुकथा

• सत्य शुचि

घर लंबे अरसे से काफी कशमकश में चल रहा था, लेकिन वह अचानक अभी एक गहरी उदासी-संकट से उबर चुका था। लड़की ने घरवालों की बात समझ-मान रख ली थी कि वह उनकी पसंद के लड़के से शादी को सहमत-तैयार है और अनायास ही घर में खुशियों के पर लग गए, मगर लड़की ने तत्काल अपने प्रेमी को इस निर्णय की जानकारी दी और लगे हाथ उसने यह भी जोड़ा, शादी हो जाने दो···परंतु, शादी के बाद भी तुमको मैं अपने से दूर नहीं रखूँगी, समझे···! बस, थोड़ा इंतजार करो, समय का।

"चलो, जैसे-तैसे हमारी समस्या का कहीं समाधान तो निकला!" लड़का फोन पर चहककर रह गया।

और अल्पकाल में ही लड़की एकबारगी बुदबुदाई, आज वह पति की मिल्कियत-जागीर तो नहीं रही है और फिर विवाहेतर संबंध से उसे कतई एतराज-परहेज भी तो नहीं है।

सहसा वह अब दो परिवारों के पारिवारिक संतुलन से आश्वस्त हो गई।

सा.अ.
साकेत नगर, ब्यावर-३०५९०१ (राजस्थान)
दूरभाष : ९४१३६८५८२०

मृतकों का मार्ग

मूल : **चिनुआ अचेबे**

अनुवाद : **सुशांत सुप्रिय**

अपेक्षा से कहीं पहले माइकेल ओबी की इच्छा पूरी हो गई । जनवरी, १९४९ में उसकी नियुक्ति नड्यूम केंद्रीय विद्यालय के प्रधानाचार्य के पद पर कर दी गई। यह विद्यालय हमेशा से पिछड़ा हुआ था, इसलिए स्कूल चलानेवाली संस्था के अधिकारियों ने एक युवा और ऊर्जावान व्यक्ति को वहाँ भेजने का निर्णय किया। ओबी ने इस दायित्व को पूरे उत्साह से स्वीकार किया। उसके जहन में कई अच्छे विचार थे और उन पर अमल करने का यह सुनहरा मौका था। उसने माध्यमिक स्कूल की बेहतरीन शिक्षा पाई थी और आधिकारिक रिकॉर्ड में उसे 'महत्त्वपूर्ण शिक्षक' का दर्जा दिया गया था। इसी वजह से उसे संस्था के अन्य प्रधानाचार्यों पर बढ़त प्राप्त थी। पुराने, कम शिक्षित प्राध्यापकों के दकियानूसी विचारों की वह खुलकर भर्त्सना करता था।

"हम यह काम बखूबी कर लेंगे, है न?" अपनी पदोन्नति की खुशखबरी आने पर उसने अपनी युवा पत्नी से पूछा।

"बेशक," पत्नी बोली, "हम विद्यालय परिसर में खूबसूरत बगीचे भी लगाएँगे और हर चीज आधुनिक तथा सुंदर होगी।" अपने विवाहित जीवन के दो वर्षों में वह ओबी के 'आधुनिक तौर-तरीकों' के विचार से बेहद प्रभावित हो चुकी थी। उसके पति की राय थी कि 'ये बूढ़े सेवानिवृत्त लोग शिक्षा के क्षेत्र की बजाय ओनित्शा के बाजार में बेहतर व्यापारी साबित होंगे' और वह इससे सहमत थी। अभी से वह खुद को एक युवा प्रधानाचार्य की सराही जा रही पत्नी के रूप में देखने लगी थी, जो स्कूल की रानी होगी। अन्य शिक्षकों की पत्नियाँ उससे जलेंगी। वह हर चीज में फैशन का प्रतिमान स्थापित करेगी।

फिर अचानक उसे लगा कि शायद अन्य शिक्षकों की पत्नियाँ होंगी ही नहीं। चिंतातुर नजरें लिए उम्मीद और आशंका के बीच झूलते हुए उसने इसके बारे में अपने पति से पूछा।

"हमारे सभी सहकर्मी युवा और अविवाहित हैं।" उसके पति ने जोश से भरकर कहा, पर इस बार वह इस जोश की सहभागी नहीं बन सकी।

"यह एक अच्छी बात है।" ओबी ने अपनी बात जारी रखी।

"क्यों?"

"क्यों क्या? वे सभी युवा शिक्षक अपना पूरा समय और अपनी पूरी ऊर्जा विद्यालय के उत्थान के लिए लगाएँगे।"

नैंसी दुखी हो गई । कुछ मिनटों के लिए उसके दिमाग में विद्यालय को लेकर कई सवालिया निशान लग गए; लेकिन यह केवल कुछ मिनटों की ही बात थी। उसके छोटे से व्यक्तिगत दुर्भाग्य ने उसके पति की बेहतर संभावनाओं के प्रति उसे कुंठित नहीं किया। उसने अपने पति की ओर देखा जो एक कुरसी पर अपने पैर मोड़कर बैठा हुआ था। वह थोड़ा कुबड़ा-सा था और कमजोर लगता था, लेकिन कभी-कभी वह अचानक उभरी अपनी शारीरिक ऊर्जा के वेग से लोगों को हैरान कर देता था। किंतु अभी जिस अवस्था में वह बैठा था, उससे ऐसा लगता था, जैसे उसकी संपूर्ण शारीरिक ऊर्जा उसकी गहरी आँखों में समाहित हो चुकी थी, जिससे उन आँखों में एक असामान्य भेदक शक्ति आ गई थी। हालाँकि उसकी उम्र केवल छब्बीस वर्ष की थी, वह देखने में तीस साल या उससे अधिक का लगता था। पर मोटे तौर पर उसे बदसूरत नहीं कहा जा सकता था।

"क्या सोच रहे हो, माइक?" नैंसी ने पूछा।

"मैं सोच रहा था कि हमारे पास यह दिखाने का बढ़िया अवसर है कि एक विद्यालय को कैसे चलाया जाना चाहिए।"

नड्यूम स्कूल एक बेहद पिछड़ा हुआ विद्यालय था। श्री ओबी ने अपनी पूरी ऊर्जा स्कूल के कल्याण के लिए लगा दी। उसकी पत्नी ने भी ऐसा ही किया। श्री ओबी के दो उद्देश्य थे। वे शिक्षण का उच्च मानदंड स्थापित करना चाहते थे। साथ ही वे विद्यालय-परिसर को एक खूबसूरत जगह के रूप में विकसित करना चाहते थे। वर्षा ऋतु आते ही श्रीमती ओबी के सपनों का बगीचा अस्तित्व में आ गया, जहाँ तरह-तरह के रंग-बिरंगे, सुंदर फूल खिल गए। करीने से कटी हुई विदेशी झाड़ियाँ स्कूल-परिसर को आस-पास के इलाके में उगी हुई जंगली, देसी झाड़ियों से अलग करती थीं।

एक शाम जब ओबी विद्यालय के सौंदर्य को सराह रहा था, गाँव की एक वृद्धा लँगड़ाती हुई स्कूल-परिसर से होकर गुजरी। उसने फूलों भरी एक क्यारी को लाँघा और स्कूल की बाड़ को पार करके वह दूसरी ओर की झाड़ियों की ओर गायब हो गई। उस जगह जाने पर ओबी को गाँव की ओर से आ रही एक धूमिल पगडंडी के चिह्न मिले, जो स्कूल परिसर से गुजरकर दूसरी ओर की झाड़ियों में गुम हो जाती थी।

"मैं इस बात से हैरान हूँ कि आप लोगों ने गाँववालों को विद्यालय-परिसर के बीच से गुजरने से कभी नहीं रोका। यह कमाल की बात है।" ओबी ने उसमें से एक शिक्षक से कहा, जो उस स्कूल में पिछले तीन वर्षों से पढ़ा रहा था।

वह शिक्षक खिसियाए से स्वर में बोला, "दरअसल यह रास्ता गाँववालों के लिए बेहद महत्त्वपूर्ण लगता है। हालाँकि वे इसका इस्तेमाल कम ही करते हैं, पर यह गाँव को उनके धार्मिक-स्थल से जोड़ता है।"

"लेकिन स्कूल को इससे क्या लेना-देना है?" ओबी ने पूछा।

"यह तो पता नहीं, पर कुछ समय पहले जब हमने गाँववालों को इस रास्ते से आने-जाने से रोका था तो बहुत हंगामा हुआ था।" शिक्षक ने कंधे उचकाते हुए जवाब दिया।

"वह कुछ समय पहले की बात है। पर अब यह सब नहीं चलेगा।" वहाँ से जाते हुए ओबी ने अपना फैसला सुनाया, "सरकार के शिक्षा अधिकारी अगले सप्ताह ही स्कूल का निरीक्षण करने यहाँ आनेवाले हैं। वे इसके बारे में कैसा महसूस करेंगे? गाँववालों का क्या है, हो सकता है निरीक्षण वाले दिन वे इस बात के लिए जिद करने लगें कि वे स्कूल के एक कमरे का इस्तेमाल अपने कबीलाई रीति-रिवाजों के लिए करना चाहते हैं। फिर?"

पगडंडी के स्कूल-परिसर में प्रवेश करने तथा बाहर निकलनेवाली दोनों जगहों पर मोटी और भारी लकड़ियों की बाड़ लगा दी गई। इस बाड़ को सुदृढ़ करने के लिए कँटीली तारों से इसकी किलेबंदी कर दी गई।

तीन दिनों के बाद उस कबीलाई गाँव का पुजारी ऐनी प्रधानाचार्य ओबी से मिलने आया। वह एक बूढ़ा और थोड़ा कुबड़ा आदमी था। उसके पास एक मोटा-सा डंडा था। वह जब भी अपनी दलील के पक्ष में कोई नया बिंदु रखता था तो अपनी बात पर बल देने के लिए आदतन उस डंडे से जमीन को थपथपाता था।

शुरुआती शिष्टाचार के बाद पुजारी बोला, "मैंने सुना है कि हमारे पूर्वजों की पगडंडी को हाल ही में बंद कर दिया गया है।"

"हाँ, हम स्कूल-परिसर को सार्वजनिक रास्ता बनाने की इजाजत नहीं दे सकते।" ओबी ने कहा।

"देखो बेटा, यह रास्ता तुम्हारे या तुम्हारे पिता के जन्म के भी पहले से यहाँ मौजूद था। हमारे इस गाँव का पूरा जीवन इस पर निर्भर करता है। हमारे मृत संबंधी इसी रास्ते से जाते हैं और हमारे पूर्वज इसी रास्ते से होकर हमसे मिलने आते हैं। लेकिन इससे भी ज्यादा जरूरी बात यह है कि जन्म लेनेवाले बच्चों के आने का भी यही रास्ता है।"

ओबी ने एक संतुष्ट मुसकान के साथ पुजारी की बात सुनी।

"हमारे स्कूल का असल उद्देश्य ही इस तरह के अंधविश्वासों को जड़ से उखाड़ फेंकना है। मृतकों को पगडंडियों की जरूरत नहीं होती। यह पूरा विचार ही बकवास है। यह हमारा फर्ज है कि हम बच्चों को ऐसे हास्यास्पद विचारों से बचाएँ।" ओबी ने अंत में कहा।

"जो आप कह रहे हो, हो सकता है वह सही हो। लेकिन हम अपने पूर्वजों के रीति-रिवाजों का पालन करते हैं। यदि आप यह रास्ता खोल देंगे तो हमें झगड़ने की जरूरत नहीं पड़ेगी। मैं हमेशा से कहता आया हूँ, हम मिल-जुलकर रह सकते हैं।" पुजारी जाने के लिए उठा।

"मुझे माफ करें, किंतु मैं विद्यालय परिसर को सार्वजनिक रास्ता नहीं बनने दे सकता। यह हमारे नियमों के विरुद्ध है। मैं आपको सलाह दूँगा कि आप अपने पूर्वजों के लिए स्कूल के बगल से होकर एक दूसरा रास्ता बना लीजिए। हमारे स्कूल के छात्र उस रास्ते को बनाने में आपकी मदद भी कर सकते हैं। मुझे नहीं लगता कि आपके मृतक पूर्वजों को इस नए रास्ते से आने-जाने में ज्यादा असुविधा होगी!" युवा प्रधानाचार्य ने कहा।

"मुझे आपसे और कुछ नहीं कहना।" बाहर जाते हुए पुजारी बोला।

दो दिन बाद प्रसव-पीड़ा के दौरान गाँव की एक युवती की मृत्यु हो गई। फौरन गाँव के ओझा को बुलाकर सलाह ली गई। उसने स्कूल-परिसर के इर्द-गिर्द कँटीली तारोंवाली बाड़ लगाने की वजह से अपमानित हुए पूर्वजों को मनाने के लिए भारी बलि चढ़ाए जाने का मार्ग सुझाया।

अगली सुबह जब ओबी की नींद खुली तो उसने खुद को स्कूल के खँडहर के बीच पाया। कँटीली तारोंवाली बाड़ को पूरी तरह तोड़ दिया गया था। करीने से कटी विदेशी झाड़ियों और रंग-बिरंगे फूलोंवाले बगीचे को तहस-नहस कर दिया गया था। यहाँ तक कि स्कूल के भवन के एक हिस्से को भी मलबे में तब्दील कर दिया गया था···। उसी दिन गोरा सरकारी निरीक्षक वहाँ आया और यह सब देखकर उसने प्रधानाचार्य के विरुद्ध एक गंदी टिप्पणी लिखी। बाड़ और फूलों के बगीचे के ध्वंस से ज्यादा गंभीर बात उसे यह लगी कि "नए प्रधानाचार्य की गलत नीतियों की वजह से विद्यालय और गाँववालों के बीच कबीलाई-युद्ध जैसी विकट स्थिति पैदा हो गई है।"

ए-५००१, गौड़ ग्रीन सिटी,
वैभव खंड, इंदिरापुरम्, गाजियाबाद-२०१०१४
दूरभाष : ८५१२०७००८६

आत्मीय निर्मल विमल

• श्रीधर द्विवेदी

मुश्किल से पंद्रह दिन भी नहीं बीते होंगे, जब हिंदी के लोकप्रिय कथाकार, कवि, अनुवादक और उपन्यासकार श्री गंगा प्रसाद विमल अपराह्न को मेरी क्लीनिक में पधारे थे। अस्सी वर्षीय श्री विमल अत्यंत शांत, सरल, निस्पृह और मिष्टभाषी व्यक्ति थे। आते ही बोले, 'डॉक्टर साहब, मैंने आपकी रचना 'आँसुओं की त्रिधारा' पढ़ी। बहुत अच्छी लगी। आप बी.एच.यू., काशी की परंपरा को जीवित रखे हुए हैं। कितनी खुशी की बात है। सच पूछिए तो मेरे एक छात्र ने मुझे फोन कर बताया कि आपके डॉक्टर साहब की कहानी 'साहित्य अमृत' में छपी है। कितना अच्छा लिखते हैं। यह मुझे नहीं मालूम था।' यह कहते समय उनके चेहरे पर जो सरल, निर्विकार और आत्मीय हास्य था, शायद वह अब कभी भी देखने को नहीं मिलेगा। मेरा उनसे सर्वप्रथम परिचय आज से नौ महीने पूर्व छह अप्रैल को हुआ था। उन्होंने अपने पिताश्री का नाम श्री वी.डी. उनियाल बताया। मैं समझ गया, वे उत्तराखंड, पहाड़ से होंगे, क्योंकि बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में मुझे अपने छात्र जीवन में ही उनियाल, थपलियाल, नौटियाल, घिल्डियाल, सेमवाल, सनवाल आदि अनेक उपनामों से परिचय हो चुका था। वे सबके सब अत्यंत सरल, निष्कपट और मृदुभाषी गुरुजन-परिजन थे। विमलजी का जन्म ३ जुलाई, १९३९ में उत्तरकाशी में हुआ था। उस धरती ने हिंदी साहित्य को कई रत्न प्रदान किए हैं—सुमित्रानंदन पंत, इलाचंद्र जोशी और शिवानी। आखिर देवभूमि है वह। उनकी प्रारंभिक शिक्षा गढ़वाल में हुई, फिर ऋषिकेश, उसके बाद इलाहाबाद और यमुनानगर, फिर पंजाब विश्वविद्यालय में संपन्न हुई। वे बहुपठित, बहुश्रुत और बहुआयामी व्यक्ति थे। उन्हें उस्मानिया, पंजाब, जे.एन.यू. और जाकिर हुसैन कॉलेज (दिल्ली विश्वविद्यालय) में अध्यापन और शोध-निर्देशन का लंबा अनुभव था। उनकी कतिपय पुस्तकों में 'अपने से अलग', 'कहीं कुछ और', 'इतना कूचा' प्रमुख हैं।

श्वेतकेशी, जीवंत और सुगठित शरीर के धनी श्री विमल को विगत पच्चीस वर्षों से डायबिटीज और ब्लड प्रेशर था। हृदय की दो नसों में रक्त अवरोध के कारण निकट के अस्पताल में एंजियोप्लास्टी हो चुकी थी। बढ़ती उम्र के चलते इधर कुछ वर्षों से प्रोस्टेट भी कष्ट देने लगा था। प्रोस्टेट का मीडियन खंड मूत्रपथ (यूरेथ्रा) को दबा रहा था। इस कारण मूत्र-प्रवाह में कष्ट था। रात में दो बार पेशाब की तीव्र इच्छा होती थी। दवाई और पथ्य के प्रति उनकी सजगता ने इन विपरीति परिस्थितियों को भली-भाँति नियंत्रण में रखा था। इस बार जब वे आए तो हमेशा की भाँति खुले हृदय से बात करने लगे। बोले—देखिए, मैं अपने छह भाई-बहनों के बीच में अब अकेला बचा हूँ। पत्नी है। एकाकी होने के कारण थोड़ा परेशान रहती है। एकमात्र पुत्र आशीष बाहर विदेश में बस गया है। पुत्री कनुप्रिया विवाह के बाद अपने घर में। रोज हाल-चाल लेती है। पर दिन-प्रतिदिन घर आकर हाजिरी तो लगा नहीं सकती। पत्नी को समझाता हूँ कि देखो, जब पक्षी बड़े हो जाते हैं तो स्वतंत्र विहार करते हैं। अपना अलग आशियाना बना लेते हैं। उनकी अपनी अलग दुनिया होती है। यह स्वाभाविक भी है। यही नैसर्गिक नियम है। पर पत्नी को यह तर्क गले नहीं उतरता। वह इस बात को लेकर मानसिक रूप से उद्विग्न रहती है। यह कहते-कहते वे थोड़ा गंभीर और सजल हो गए।

कक्ष के बाहर और भी मरीज प्रतीक्षारत थे। इसलिए मैंने उनका जल्दी से ब्लड प्रेशर लिया, जो अत्यंत सामान्य था (१२४/८०)। हीमोग्लोबिन, खून में लोहे की मात्रा जरूर थोड़ी कम (१०.७) थी। रक्त शर्करा का त्रैमासिक स्तर हीमोग्लोबीन Ac (७.१) संतोषजनक था। मैंने दवाइयाँ लिखीं। पथ्य बताया, जाते-जाते विमलजी बोले—नए वर्ष के उपलक्ष्य में बाहर जा रहा हूँ। जा सकता हूँ? मैंने कहा, अवश्य जाइए। लौटकर आने पर नए वर्ष में भेंट होगी। हँसकर बोले, अवश्य। वास्तव में मुझे तथा विमलजी दोनों को वाराणसी में प्रसिद्ध हिंदी विद्वान् स्वर्गीय श्री विद्यानिवासजी मिश्र की स्मृति में विद्याश्री न्यास द्वारा आयोजित १०-१२ जनवरी के बीच साहित्यिक संगोष्ठी में सम्मिलित होना था। उन्हें गांधी तथा कविता के सत्र की अध्यक्षता करनी थी।

'हाँ' कहते समय उन्हें क्या मालूम था कि विधि की कुछ और ही

प्रस्तावना थी। ऊपर विधाता ने अपना अलग कार्यक्रम बना रखा था। नियति के इस परम गोपनीय नियोजन का पता मुझे आज तब मिला, जब ग्रंथालय में मेरी दृष्टि २६ दिसंबर के दैनिक हिंदुस्तान के उस पृष्ठ पर पड़ी, जिसमें श्री गंगा प्रसाद विमल के अकस्मात् निधन का समाचार छपा था। मुझे तो मानो काठ मार गया। उसमें मृत्यु के कारणों पर कुछ भी प्रकाश नहीं डाला गया था। मैं परेशान था। आखिर इन पंद्रह दिनों के अंदर क्या हुआ कि वे हमसे हमेशा-हमेशा के लिए छिन गए। कहीं भीषण हृदयाघात तो नहीं हुआ? मस्तिष्क में अत्यंत उग्र रक्तस्राव तो नहीं हुआ? गूगल महाराज की शरण में गया तो पता चला, उनकी अकस्मात् मृत्यु तेईस दिसंबर को श्रीलंका में एक कार दुर्घटना में हो गई। कहा जाता है, ड्राइवर को झपकी आ गई और वह सीधे किसी बड़े वाहन से टकरा गई। दुर्घटनाग्रस्त गाड़ी में उनके साथ उनकी बेटी, दामाद और नाती भी थे। इस हादसे में पुत्री और वौहित्र की भी मृत्यु हो गई। दामाद को चोट लगी है। वे अस्पताल में हैं।

श्रीमती विमल का क्या हाल होगा? यह सोचकर दिल भर आता है। लेखनी थम जाती है। मन निशब्द हो जाता है। हाय री विधिना! उस वृद्धा के विषय में कुछ तो सोचा होता, जो पहले से ही दु:खिता थी। अकेले आवास में अपने सुहाग, दिल के टुकड़े नाती, बिटिया-दामाद की बाट जोह रही होगी। तूने उसका एकमात्र सहारा ही नहीं छीना, वरन् उसके साथ-साथ दु:ख-सुख में हालचाल पूछनेवाली उनकी पुत्री भी लील ली।

चिकित्सा विषय पर हिंदी में लिखनेवाले प्रतिनिधि लेखक। एम.डी., पी-एच.डी., एफ.ए.एम.एस., एफ.आर.सी.पी. (लंदन), भूतपूर्व डीन, हमदर्द इंस्टिट्यूट ऑफ मेडिकल साइंसेज; संप्रति वरिष्ठ हृदय रोग विशेषज्ञ, नेशनल हार्ट इंस्टिट्यूट, ईस्ट ऑफ कैलास, नई दिल्ली। 'हृदयवाणी' काव्य-संग्रह प्रकाशित, 'तंबाकू चित्रावली' इनकी दूसरी प्रमुख हिंदी रचना है।

नन्हे-मुन्ने नाती तक को भी नहीं बख्शा। तू इतनी क्रूर और निर्दयी कैसे हो सकती है? वह तो गंगा प्रसाद थे। विमल थे। और तू पाषाण-हृदय, भावहीन, लिखी-लिखाई लकीर पर चलनेवाली नियति।

नमन श्री विमल। हे चिरंतन परम नियंता, आप उनकी आत्मा को शांति और श्रीमती विमल को इस निरभ्र वज्रपात को सहने की शक्ति प्रदान करें। यही हम सबकी आपसे करबद्ध प्रार्थना है।

सा.अ.

वरिष्ठ हृदय रोग विशेषज्ञ
नेशनल हार्ट इंस्टिट्यूट
ईस्ट ऑफ कैलास, नई दिल्ली
दूरभाष : ९८१८९२९६५९

लेखकों से अनुरोध

- मौलिक तथा अप्रकाशित-अप्रसारित रचनाएँ ही भेजें।
- रचना फुलस्केप कागज पर साफ लिखी हुई अथवा शुद्ध टंकित की हुई मूल प्रति भेजें।
- पूर्व स्वीकृति बिना लंबी रचना न भेजें।
- केवल साहित्यिक रचनाएँ ही भेजें।
- प्रत्येक रचना पर शीर्षक, लेखक का नाम, पता एवं दूरभाष संख्या अवश्य लिखें; साथ ही लेखक परिचय एवं फोटो भी भेजें।
- डाक टिकट लगा लिफाफा साथ होने पर ही अस्वीकृत रचनाएँ वापस भेजी जा सकती हैं। अतः रचना की एक प्रति अपने पास अवश्य रखें।
- किसी अवसर विशेष पर आधारित आलेख को कृपया उस अवसर से कम-से-कम तीन माह पूर्व भेजें, ताकि समय रहते उसे प्रकाशन-योजना में शामिल किया जा सके।
- रचना भेजने के बाद कृपया दूरभाष द्वारा जानकारी न लें। रचनाओं का प्रकाशन योजना एवं व्यवस्था के अनुसार यथा समय होगा।

वसंत की उत्कंठा : जीवन की सौभाग्यश्री

● श्यामसुंदर दुबे

जीवन एक उम्मीद है—संसार के साथ चलने की, संसार में रमे रहने की। आसक्ति का अपनेपन से उपजा बोध जब ऊर्जा का स्रोत बन जाता है, तब जीवन के अनेक अर्थ प्रकट होने लगते हैं। ऐसा अर्थवान जीवन समय के टेढ़े-मेढ़े गलियारों में से गुजरते हुए न केवल अपना रास्ता बनाता है, बल्कि दूसरों के लिए भी उसे प्रशस्त करता है। सृष्टि-चक्र उम्मीद की धुरी पर घूमता है। कितना विनाश, कितना ध्वंस अहर्निश घटित हो रहा है! इन सबके बीच जीवन की ललक जागती रहती है। पतझड़ की विषण्ण वेला में जब संपूर्ण वन-प्रदेश वीतरागी बनकर उजाड़-सा हो जाता है, तब कोई एक कलिका चुपके-चुपके किसी शाखा में मुसकान बिखेरती हुई फूट पड़ती है—साधना की सिद्धि बनकर, जीवन की जय-यात्रा बनकर! उसके साथ ही समूचा जंगल खिलखिला उठता है। वसंत का राग-बोध चतुर्दिक् गूँजने लगता है। वसंत एक उत्कंठा है—ऋतुओं के भीतर से जागती, समय को सरस बनाती। उत्कंठा कहाँ नहीं है—सब में समाई है, सबको गतिशील किए हुए है! वसंत की उत्सुकता जीवन-सौभाग्य की उपलब्धता है।

वसंत को पाने के लिए कुछ खोना पड़ता है। त्याग के वैभव की संप्राप्ति का नाम ही वसंत है। सबके अपने-अपने वसंत हैं। सिद्धार्थ ने क्या नहीं छोड़ा? राजभवन से लेकर पत्नी-पुत्र तक को त्यागकर सिद्धार्थ ने बुद्धत्व का वसंत प्राप्त किया। इस वसंत की सुगंध युगों के अंतरालों को भेदकर आज भी अपना मादन-भाव बिखेर रही है। गांधी ने लँगोटी धारण करके जिस आत्म-ऐश्वर्यपूर्ण जीवन को अपनाया, वह आज के प्रतिहिंसक विश्व की धधकती मरुभूमि में शांति का सौरभ विकीर्ण करने की सामर्थ्य सँजोए है। कितने निदाघ, कितनी पावस, कितने शरद, हेमंत, शिशिर सहकर वसंत उगता है। रीतिकालीन कवि बिहारी ने वसंत की साधाना की ओर संकेत करते हुए लिखा है—"नाहिं पावसु ऋतुराज यह, तजि तरवर चित्त भूल। अपनु भये बिनु पाइहै, क्यों नव-दल फल-फूल।" हे तरुवर! तू अपने मन में यह मत भूल कि यह वर्षा ऋतु नहीं है। यह ऋतुराज वसंत है, इसे प्राप्त करने के लिए अपत्र होना ही पड़ता है, तभी तो नए पल्लव, फल और फूल प्राप्त किए जा सकते हैं। पतझड़ के बिना वसंत संभव नहीं होता है।

सुपरिचित कवि-लेखक। दो उपन्यास, तीन ललित निबंध-संग्रह, तीन नवगीत-संग्रह, दो लोकसाहित्य, एक कहानी-संग्रह, एक समसामायिक निबंध-संग्रह प्रकाशित। 'बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' पुरस्कार', 'वागीश्वरी पुरस्कार', 'श्रेष्ठ कला आचार्य सम्मान' सहित अनेक पुरस्कारों एवं सम्मानों से सम्मानित।

पतझड़ भले ही वन का विपत्ति काल लगता हो, किंतु मेरे लिए तो यह वन का आंतरिक समृद्धि काल है। वृक्ष का वैराग्य काल है। अपने राग-अनुभव को अपनी आत्मिक गहराइयों में परिपक्व करने का यह काल एक नई सामाजिकता का उद्‌गीथ रचता है। कोई एक अकेला वृक्ष नहीं, कोई एक अकेली नस्लवाला वृक्ष नहीं, सभी वृक्ष, पूरा जंगल एक साथ अपने पत्तों को त्याग देते हैं। बड़े-से-बड़ा वृक्ष और छोटे-से-छोटा गुल्म सब इस कठिन समय में एक से हैं, एक हैं। यह रस के परिपाक का समय है। पतझड़ में वृक्ष सूखता नहीं है, भीतर-ही-भीतर अपना रस संग्रह करता है; रंगों, रूपों, ध्वनियों, स्पर्शों, आस्वादों में बदलने की अद्‌भुत सृजन क्षमता का अनोखा विधान अपनी शाखाओं-प्रशाखाओं में आयोजित करता हुआ। ऊपर से रूखी दिखनेवाली डालें भीतर-ही-भीतर जीवन की गहन आसक्तियों से परिपूर्ण हैं। निराला यदि कहते हैं कि "रूखी री यह डाल वसन वासंती लेगी।" तो वे इसी ओर संकेत करते हैं कि डाल रूखी जरूर है, पर सूखी नहीं है। वे आशान्वित हैं कि इस डाल पर वासंती वस्त्रों की रंग-बिरंगी प्रदर्शनी खिल उठेगी। वसंत अपने संपूर्ण आभरणों से इसे शृंगारित कर देगा। वसंत की उत्कंठा इसे नूतन बना देगी।

वसंत के आगमन की आशा एक अवलंब है। एक ऐसी जगह पर, जहाँ सबकुछ छूट जाने के बाद अनंत रिक्तियों का सामना करना पड़ता हो। जहाँ अकेले पड़ते आदमी का साहस चुक रहा हो। स्मृतियों में आबद्ध सुख के झिलमिलाते से क्षण जहाँ आँसुओं की टपकती-ढुलकती आभा में झलक रहे हों। जहाँ पत्रहीन कंटकित गुलाब के पेड़ में एक भी फूल न बचा हो, फूलों की गंध का झोंका जहाँ कभी-कभी चक्कर लगा जाता हो। भला ऐसे भंडाफोड़ परिवेश में रस-लुब्धक

भ्रमर क्या करेगा? उसे भाग जाना चाहिए, उड़ जाना चाहिए कहीं और जगह! कविवर बिहारी कहते हैं, "जिन दिन देखे वे कुसुम गई सु बीत बहार। अब अलि रही गुलाब की अपत कँटीली डार।" भ्रमर! जा भाग जा। बहार बीत गई है। अब इन काँटों में तू क्या करेगा? कवि ही यदि जीवन से पलायन का विषम राग अलापने लगे तो फिर वसंत की उत्कंठा को जगाएगा कौन? कवि इस संसार का वसंत है। उसे लगता है कि पलायनवाद उसका इष्ट नहीं है। वह एक सुखद और प्रफुल्लित परिवेश लौटाना चाहता है। वह भ्रमर के भीतर गहन आस्था का जीवन के प्रति एक चरम आसक्ति का भाव सुरक्षित करना चाहता है। "इहीं आस अटक्यो रहलु अलि गुलाब के मूल। लै हैं फेरि वसंत ऋतु इन डारन वे फूल।" गुलाब के पौधे की जड़ में भ्रमर इसी आशा से अटक जाता है कि फिर वसंत आएगा और रूखी डालों में फूल खिल जाएँगे। जड़ की रस-स्राविनी शक्ति से जैसे भ्रमर परिचित है। पौधे के भीतर जो जीवनी-शक्ति है, वह भविष्य की उज्ज्वल संभावना की ओर ही संकेत करती है। वसंत अनंत संभावनाएँ लेकर आता है। रस, रूप, गंध, स्पर्श और ध्वनि का मेला लगानेवाला वसंत जीवन के अनेक लुभावने दृश्य रचता है। पतझड़ के प्रहारों का प्रतिकार करनेवाली जड़ों में जीवन-रस का संचित मधु कोष सुरक्षित रखना ही वसंत की उत्कंठा का आधार है।

जड़ों का रस सूख रहा है और वसंत की उत्कंठा की कलिका में कोई कीड़ा प्रविष्ट हो गया है। मुझे निराला फिर याद आ रहे हैं—'पत्रोत्कंठित जीवन का विष बुझा-बुझा है।' यह कथन उन्हीं निराला का है, जो कहते थे, "अभी-अभी ही तो आया है मेरे वन में मृदुल वसंत! अभी न होगा मेरा अंत।" आशा दुराशा में बदल गई। कोपल आने-आने को थी कि उसी समय उसके उद्भवन बिंदु पर जहर की बूँद टपक पड़ी। वसंत की उत्कंठा को दग्ध किया जा रहा है। जड़ पर विषबुझा बाण चला दिया गया है। मेरा वसंत ठिठक गया है। गाँव के भीतर सूनापन है। जंगल का वसंत जब गाँव तक आता था, तब वसंत जीवन की जागृति का जरिया बनता था। तभी वह चारुतर वसंत होता था। कालिदास ने इसी वसंत को याद किया था, "द्रुमा: सपुष्पा: सलिलं सपद्मं स्त्रियं सकामा पवन: सुगन्धि:। सुखा: प्रदेषा: दिवसश्च रम्या: सर्वं प्रिये चारुतरं वसन्ते।" यह वसत चारुतर तभी है, जब इसमें रमनेवाला मनुष्य अपने भीतर के वसंत से भरापूरा हो, अन्यथा फूले बबूल और अनफूले कचनारों से उसे क्या मतलब? जो पुष्पित वे, और जो अपुष्पित वे भी उस मनुष्य के किस काम के, जो मशीनों के जंजाल में खट रहा है, जो बीस मंजिल भवन-निर्माण के लिए मटेरियल बना सीढ़ियाँ नाप रहा है। जो ट्रेन के तीसरे दर्जे में गठरी-पुटरी बना धक्कम-मुक्की में पिचक रहा है, पिस रहा है। उस आदमी के लिए मंजरित आम, सुगंधित पवन, खिले कमल दल, रमणीय दिवस और सुखी रात्रियाँ किस प्रयोजन कीं?

मनुष्य जब इस सृष्टि में संभव नहीं हुआ होगा, तब भी प्रकृति अपने इसी रूप में विहँसती होगी, तब भी वह चारुतर वसंत की मल्लिका बनती होगी; किंतु मनुष्य के बिना यह सब एक प्राकृतिक घटनामात्र थी। प्रकृति तो मनुष्य की सापेक्षता में ही अपनी संवेदनात्मक सार्थकता का विस्तार करती है। प्रकृति और मनुष्य की साझेदारी की वसंत को सकाम बनाती है। मनुष्य के अभाव में वसंत का अभिन्न सहचर कंदर्प किस पर अपने पंच प्रसून बाण छोड़ेगा? ऐंद्रियक उत्तेजनाओं को उद्दीप्त करनेवाला वसंत जिन कला-संवेदनाओं में उपस्थित होता रहा है, वे कला प्रतिमान तो मनुष्य ने गढ़े हैं। राग-मालाएँ, चित्र-बीथिकाएँ, नृत्य-नाटिकाएँ, नर्म क्रीड़ाएँ और इन्हें आस्वादित करनेवाली रस-धारणाएँ अपनी प्रस्तुति में मनुष्य और प्रकृति के समन्वित आचरण की ही आरण्यकाएँ हैं। मनुष्य के भीतर खिलते वसंत और प्रकृति के अंतराल में लीलारत वसंत जब एकमेक होते हैं, तभी वसंत की कविता रची जाती है।

जंगलों, बाग-बगीचों में जितने रंग के फूल खिलते थे, वे सभी रंग मेरे गाँव के परिधानों पर नमूदार हो उठते थे—वासंतिक त्योहार होली पर। तब केमिकल से बने रंग प्रचलन में नहीं थे। रंग गाँवों में ही बनाए जाते थे। टेशू के फूल से केसरिया रंग बनता था। कनेर, गुड़हल, कचनार जैसे फूलों के रंग उतारने के लिए आसवन प्रक्रिया अपनाई जाती थी। हरा रंग पत्तों से उतारा जाता था, जिसे जंगलिया नाम दिया गया था। जैसे रंगपात्र में जंगल की रंगदारी ही उड़ेली गई हो। ये रंग पिचकारियों में भरकर जब डाले जाते थे, तब इनकी तेज बौछार से अच्छे-अच्छों के छक्के छूट जाते थे, इसलिए इस रंग-प्रहार को पिचकारी मारना कहा था। शिकायत होती कि "न मारो पिचकारी, मोरी भीगी रंग सारी।" ऐसी पिचकारी मत चलाओ, मेरी पूरी साड़ी भींज गई है। साड़ी ही नहीं भींजती थी, मन भी भींज जाते थे। रंगों की बौछार के पहले रंग की गंध से सराबोर होनेवाली कहती थी, "मो पे रंगा न डारो, मैं तो ऊसई अतर में भींजी!" मैं तो वैसे खस-मोंगरा, बेला जैसे फूलों के इत्र में भीगी हुई हूँ, अब मेरे ऊपर रंग डालने की जरूरत नहीं है। मेरे भीतर मेरे अपने मन में तो तुम्हारे प्रेम का

इत्र खुशबू बिखेर रहा है, मुझे उसी में डूबी रहने दो। तब तन भींजते थे और मन गीले हो जाते थे। गीले मन ही गाँव में प्रेम का पारावार रचते थे। प्रत्येक व्यक्ति के मन में यह ललक रहती थी कि वह होली में रंग-बिरंगा हो उठे, ऐसी होली खेले कि उसका अहं गल जाए। वह पहचानहीन हो जाए। वह हुरिहारों की भीड़ बन जाए।

अब न वे रंग-गुलाल में सननेवाले गाँव बचे, न वे फगुवारे, जिनके बोल अमराइयों में गूँजते थे तो मुकुलित आम से पिंग पराग ऐसे झड़ने लगता था, जैसे अमराई भी पीला गुलाल उड़ा रही हो। गाँव खाली हो गया है। पता नहीं, कहाँ-कहाँ मेरा गाँव मारा-मारा फिर रहा है! पेट के खातिर खटने के लिए चक्करघिन्नी हुआ मेरा गाँव अब भारतीय कहाँ रहा! पर वह प्रांतीय होकर कभी किसी प्रांत से खदेड़ा जा रहा है, कभी किसी प्रांत से। अपनी जड़ों से बेदखल होकर लोगों को पाँव जमाने की जगह नहीं मिल रही है। जड़ें सूख रही हैं। वे जड़ें, जो गाँव को रससिक्त बनाए रखती थीं। आल्हा, कजरी, दिवारी, होली, फाग से लेकर व्रत-त्योहार, नाच-माच जैसे कला आयोजनों से गाँव में वसंत बगरा रहता था। अब छातीजार अकाल-दुकाल गाँव को घेरे हुए हैं। खेती ठेका पर यंत्रों और रासायनिक उर्वरकों के भरोसे! बोया बीज नहीं मिल पाता। बैंकों का कर्ज और मुफ्तखोरी की सरकारी आदतों ने गाँव को निकम्मा बना दिया। नई पीढ़ी गाँजा, सट्टा, जुआ और शराब में डूबी है। समाज की नीरंध्र इकरसता दरारों से पीड़ित है। ताना बाना से लड़ रहा है। एक रंग दूसरे रंग के विरुद्ध तनकर खड़ा है। रंग-बिरंगा मेरा देश कितना बदरंग हो गया है! स्वतंत्रता के मुकुलित वसंत पर निरंतर तुषारापात हो रहा है। अब न तो गाँव का चैन लौटाया जा सकता है, न हल बक्खर लौटाए जा सकते हैं, न वे लोकगीत, जिनके आसरे आड़े समयों को लोक काट लेते थे। फिर भी मेरा देश बदल रहा है। मोबाइल पर पूरी दुनिया मुट्ठी में लेकर चलनेवाला मेरा गाँव बदल रहा है। किसी में बल-बूता नहीं, जो इस बदलाव को रोक सके; इसलिए बीते हुए समय पर सियापा करने की बजाय परिवर्तनों को जड़ों से जोड़ने की हिकमतें तलाशना जरूरी हैं, चाहे वे हिकमतें महात्मा गांधी में मिले, चाहे आदिगुरु शंकराचार्य में मिलें, चाहे विवेकानंद में मिलें, इन हिकमतों में ही मेरे देश की जड़ों का जीवनी-रस समाया हुआ है। इस रस से आपूरित जड़ें ही इस देश में वसंत की प्रतिमूर्ति हैं।

अब न वे रंग-गुलाल में सननेवाले गाँव बचे, न वे फगुवारे, जिनके बोल अमराइयों में गूँजते थे तो मुकुलित आम से पिंग पराग ऐसे झड़ने लगता था, जैसे अमराई भी पीला गुलाल उड़ा रही हो। गाँव खाली हो गया है। पता नहीं, कहाँ-कहाँ मेरा गाँव मारा-मारा फिर रहा है! पेट के खातिर खटने के लिए चक्करघिन्नी हुआ मेरा गाँव अब भारतीय कहाँ रहा! पर वह प्रांतीय होकर कभी किसी प्रांत से खदेड़ा जा रहा है, कभी किसी प्रांत से। अपनी जड़ों से बेदखल होकर लोगों को पाँव जमाने की जगह नहीं मिल रही है। जड़ें सूख रही हैं। वे जड़ें, जो गाँव को रससिक्त बनाए रखती थीं।

कालिदास के 'अभिज्ञान शाकुंतलम्' में एक दृश्य आता है। राजा दुष्यंत को वह अँगूठी प्राप्त होती है, जो उन्होंने शकुंतला को भेंट की थी। अँगूठी प्राप्त होते ही दुष्यंत शकुंतला की याद से पीड़ित हो उठते हैं। यह आसन्न वसंत का समय था। वे विकट व्यथित होकर आदेश देते हैं कि वसंत से कह दो कि वह मेरे राज्य में न आए। आम्र-बौरों को मुकुलित होने से रोका जाए। वसंत को स्थगित करने का यह आदेश कितना परिपालित हुआ? मैं यह तो नहीं जानता, किंतु इतना जरूर जानता हूँ कि वसंत का रुतबा चक्रवर्ती नरेश से भी ज्यादा है; इसलिए वह आया होगा, जरूर आया होगा! मनुष्य के भीतर जो अदम्य जिजीविषा है, वह उसे प्रत्येक विपरीत के मध्य खड़े होने का साहस देती रहेगी। यह जिजीविषा ही उम्मीदों का पर्याय है। वसंत उम्मीदों के जागरण की अकुलाहट देता है। उम्मीदों को पल्लवित और पुष्पित तथा फलभरित भी करता है। वसंत की उत्कंठा केवल ऋतु की ही उत्कंठा नहीं है, वह मनुष्य के भीतर का सौभाग्य है। मनुष्य के भीतर उमड़ती-घुमड़ती उत्सवचारुता की कविता है। यह कविता कभी मरती नहीं है, कभी जीर्ण-शीर्ण नहीं पड़ती। "पश्य देवस्य काव्यं न जीर्णयति न ममारयति।"

श्री चंडीजी वार्ड
हटा, दमोह-४७०७७५
दूरभाष : ०९९७७४२१६२९

इस अंक की चित्रकार

अनुभूति गुप्ता

५ मार्च, १९८७ को हापुड़ (उ.प्र.) में जन्म। कविता, कहानी, लघुकथा, हाइकु, क्षणिकाएँ लेखन। अब तक 'बाल सुमन' (बालकाव्य-संग्रह), 'कतरा भर धूप' (काव्य-संग्रह), 'अपलक' (कहानी-संग्रह) एवं पुस्तकों और विभिन्न पत्रिकाओं में तीन सौ से अधिक कविताएँ तथा रेखांकन प्रकाशित। 'नारी गौरव सम्मान', 'प्रतिभाशाली रचनाकार सम्मान', 'साहित्य-श्री सम्मान', 'के.बी. नवांकुर रत्न सम्मान' तथा 'साहित्य मंडल' श्रीनाथद्वारा से 'संपादक शिरोमणि सम्मान' से सम्मानित।

संपर्क : १०३, कीरतनगर,
निकट डी.एम. निवास,
लखीमपुर-खीरी-२६२७०१
दूरभाष : ९६९५०८३५६५

द्विरागमन

● सीमा वर्मा

राम चौदह वर्षों बाद अयोध्या लौटे थे, ऐसा बाल्यकाल से ही सुन रखा था। परंतु स्वयं के जीवन में भी यह घटित होगा, इसकी तो उसे कल्पना भी नहीं थी। आज चौदह वर्षों बाद पितृगृह की ड्योढ़ी पर खड़ी वह यही सोच रही थी।

ईश्वरीय इच्छा के आगे सभी नत-मस्तक हैं। पहले माताजी और फिर पिताजी के स्वर्गवास ने उसके हृदय से मायके पुन: जाने की इच्छा को ही मार दिया था। इतने वर्षों बाद जब एक विवाहोत्सव में सम्मिलित होने के लिए वह अपने मायके की नगरी में पहुँची तो पितृगृह देखने की अदम्य इच्छा को और रोक नहीं पाई। एयरपोर्ट से घर तक का रास्ता भूले-बिसरे नुक्कड़-चैराहों से होता हुआ कब पूरा हुआ, उसे पता भी नहीं चला।

चौदह वर्षों का लंबा अंतराल अविश्वसनीय सा प्रतीत हो रहा था। घर की चौखट पर खड़ी वह वर्तमान से जुड़ने का भरसक प्रयास कर रही थी। परंतु अतीत के गलियारों से निकलकर सुनाई देते स्वर्गवासी माता-पिता के स्वर मानो कानों के पट फाड़ रहे थे। बीते हुए कल के भावसिंचित क्षण पैरों के तलवों में चुभकर उसे वर्तमान में लौटा रहे थे।

आँखों में उमड़ते आँसुओं को पीछे धकेलते हुए उसने शिथिल पड़ते पग आगे बढ़ाए। इतने वर्षों में आना क्यों नहीं हुआ? उत्सुक मेजबान की आतुरता और नमस्कार दोनों को उसने एक वैरागी की भाँति सांसारिक औपचारिकता मात्र समझकर सहज मुसकान के साथ स्वीकार किया। माता-पिता के स्वर्ग सिधारने के पश्चात् गृह के बाकी सदस्य भी अपना निवास परिवर्तन कर चुके थे। वापस लौटने का कोई अन्य कारण भी नहीं बचा था। एक फीकी मुसकान के साथ अभिवादन स्वीकार करते हुए कुछ ऐसा ही उलझा-अनबुझा सा उत्तर उसने दिया। घर के अंदर वह आज भी उतनी ही सहमी सी प्रविष्ट हुई, जैसे वर्षों पहले स्कूल से देरी से लौटने पर होती थी। मन आज भी उतना ही आशंकित था कि अंदर पिताजी प्रश्नों की सूची के साथ तैयार बैठे होंगे और माँ परिस्थिति को सँभालने के प्रयास में अनावश्यक रसोई में व्यस्त होंगी।

घर के अंदर का बदला हुआ परिवेश एक लंबे अंतराल के बाद भी कमोवेश वैसा ही था। पिता का घर ईंट-चूने का स्मृति-चिह्न मात्र न होकर स्वयं पिता के रूप में उसका स्वागत कर रहा था। समय की मार से धूमिल पड़ी दीवारों में उनका उच्च गौर वर्ण झलक रहा था, घर में बसी पुरानी महक माँ के शरीर की मातृगंध सी प्रतीत हो रही थी। उसकी आँखें तो मेजबान के मुख पर टिकी थीं, परंतु मन माता-पिता से बातें कर रहा था। पुरानी यादें मन-मस्तिष्क में भूचाल सा ला रही थीं।

मेजबान की औपचारिकता और स्वागत को बीच में ही रोकते हुए उसने घर को देखने की इच्छा जताई, उन कमरों और बरामदों से गुजरते हुए उसने बीता हुआ बचपन और युवावस्था को मानो एक बार फिर जी लिया हो। हर एक पग के साथ कई हँसी-ठहाके, भाई-बहनों के साथ हुई लड़ाई, कितने ही सारे सपने, सब फिर से जीवित हो उठे। सीढ़ियों से चढ़कर माँ का पूजागृह आता था। आज भी वह वहीं था। जबसे होश सँभाला था, माँ की बजरंगबली के प्रति अटूट आस्था की वह प्रत्यक्ष साक्षी थी। एक अजीब सी झनझनाहट उसने अपने पूरे शरीर में महसूस की, लगा कि माँ आज भी वहाँ बैठी पूजा कर रही है। उसने सुन रखा था, अपने जीवन के अंतिम क्षण में भी उन्होंने स्वयं चलकर मध्य रात्रि को मंदिर के द्वार खोलकर अपने हनुमानजी से अंतिम विदाई ली थी। मंदिर के अंदर सभी देवी-देवता भी धूल-धूसरित होकर समय के चक्र का परिणाम भुगत रहे थे। धूमिल पड़ी तसवीरों और देवमूर्तियों ने उसे फिर से याद दिलाया। वास्तव में राम अयोध्या चौदह वर्षों बाद लौटे थे। सब कुछ यथावत् देखकर उसे थोड़ी शांति मिली। तभी उसने देखा, पूजागृह के केंद्र में स्थापित माँ के सर्वाधिक प्रिय हनुमानजी का चित्र नदारद था।

मानव स्वभाव की विचित्रता उसे चकित कर गई। अस्पताल में पिता के कमरे के बाहर ध्यानमग्न बैठी माँ की छवि एकाएक मन में कौंधी। मानो आज भी उसके आने की आहट पहचानकर गहरे ध्यान में डूबी माँ की अधमुँदी आँखें कह रही हों, "उस पूजाघर में तो कोई जाता नहीं है, कल से हनुमानजी ऐसे ही बैठे होंगे, घर जाना तो पूजा कर देना।" मन में उमड़ते सारे प्रश्नों को उसने निष्ठुरता से दबा दिया। शायद सौभाग्यशालिनी माँ के सहज, सात्त्विक महाप्रयाण ने उसके बजरंगबली का मान और बढ़ाते हुए उन्हें अगली पीढ़ी की नई पाई हुई आस्था का आधार-स्तंभ बनाकर इस पूजा-गृह से प्रवासी बना दिया था। वहाँ रुकना अब उसके लिए असहनीय सा हो गया, उसने वहीं खड़े-खड़े माता-पिता को मानसिक प्रणाम किया। इस अनोखे द्विरागमन की मार्मिकता उसे विचलित कर रही थी और रुकना संभव न था। ऐसा कहकर वह टैक्सी में बैठ एयरपोर्ट की ओर निकल पड़ी।

किशोरावस्था से ही समय-समय पर अपने अंदर उमड़ते विचारों तथा समाज और परिवार के बीच में उपलब्ध मानव जीवन के मूल्यों तथा स्वभाव की विचित्रताओं को कहानी, कविता अथवा संस्मरण के रूप में उकेरा। अब स्वतंत्र लेखन और निरंतर कहानियाँ एवं कविताओं का प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशन।

ओ-१२०४
पैन ओएसिस सोसाइटी, नोएडा (उ.प्र.)
दूरभाष : ९६५०९९५०८३

हमारे कर्मयोगी बाऊजी

• सोनाली अग्रवाल

जब मैं २००६ में बाऊजी के परिवार में उनके मँझले बेटे (प्रभात कुमार) की बहू बनकर आई तो मुझे मम्मी और बाऊजी की शीतल छाया मिली। उनके मृदुल और सौम्य व्यवहार ने मन को भीतर तक छू लिया और मैं बहू की बजाय घर की बेटी बन गई। मुझे याद है कि जब मैं शादी के बाद पहली बार पीहर से घर वापस आई तो बाऊजी ने मेरे माथे और दोनों हाथों को चूमकर कहा—'बेटा, तेरे बिना यह घर सूना हो गया था। तुमसे ही इस घर में जीवंतता है, रौनक है।' उनके वात्सल्य और अपनेपन ने मुझमें उनके प्रति और भी श्रद्धा जगा दी। बाऊजी हमेशा रिश्तों को सींचने और उन्हें लगातार खाद-पानी देने की सलाह देते थे। घर में कोई भी अतिथि आता तो बाऊजी उसके स्वागत-सत्कार में कोई कमी नहीं छोड़ते थे। वे मुझे आनेवालों की रुचि के अनुसार खाना बनाने को कहते और जब मेहमान मेरे बनाए खाने की प्रशंसा करते तो वे ठहाका लगाकर कहते कि ये बहुत बड़ी 'शेफ' है। मुझे प्रोत्साहित करने के लिए वे सदैव तत्पर रहते थे।

चूँकि मैं घर में पहली बहू थी, इसलिए मुझ पर बाऊजी का सदैव विशेष स्नेह रहा। कार्यालय जाने के पहले वे और मैं साथ बैठकर चाय पीते थे और उसी समय वे मुझे अपने जमाने के किस्से सुनाते थे। वे कहते थे कि उनके पिताजी, यानी हमारे बाबा (दादाजी) शिवचरण लालजी गुप्त ने 'शून्य से शिखर' को चरितार्थ किया था। उन्होंने सबकुछ छोड़कर अपने बलबूते मथुरा में 'पुस्तक मंदिर' खड़ा किया था। बाऊजी ने भी १९५८ में दिल्ली आकर इसी संघर्षगाथा को जारी रखा। वे बताते थे कि जब उन्होंने चावड़ी बाजार में किराए पर दुकान लेकर 'प्रभात प्रकाशन' खोला तो शुरू के तीन-चार महीने कोई भूल से पता पूछने के लिए भी ऊपर नहीं चढ़ता था, ग्राहक की तो बात ही छोड़ दीजिए। तब भी उनका उत्साह मंद नहीं पड़ा; वे बहुत कम—न के बराबर—साधनों से केवल और केवल अपनी कर्मठता और लगन से काम में जुटे रहे और प्रकाशन को देश के अग्रणी संस्थानों में स्थापित कर दिया। इस विकास-यात्रा में उनके साथ कंधे-से-कंधा मिलाकर काम करनेवाले सहयोगियों के प्रति उनका विशेष स्नेहभाव था; वे उन सबको अपने परिवार का हिस्सा मानते थे। यही कारण है कि उनकी समर्पित टीम ने न दिन देखा और न रात; और सब मिलकर संस्थान के उत्कर्ष में लगे रहे।

बाऊजी को हमारी सासू माँ के रूप में आदर्श जीवन-संगिनी मिलीं, जिन्होंने अभावों में रहकर भी कभी बाऊजी से कोई गिला-शिकवा नहीं किया। चावड़ी बाजार से दो कि.मी. दूर जगत सिनेमा के पीछे दो कमरों के छोटे से किराए के घर में मम्मी-बाऊजी के साथ पाँच बच्चे लगभग सत्ताईस साल संतोषपूर्वक रहे। इसी घर में प्राय: मथुरा, आगरा से नाते-रिश्तेदार आते ही रहते थे, पर हमारे मम्मी-बाऊजी का दिल इतना बड़ा था कि दो कमरों का छोटा घर भी कभी छोटा नहीं पड़ा। बाऊजी ने कम खर्चे में जीवन जीया और हम सबको भी हमेशा अपनी आवश्यकताएँ सीमित करने की सलाह दी।

बाऊजी इलाहाबाद में अपनी पढ़ाई के समय के अनेक किस्से सुनाया करते थे कि कैसे अपने सरल-सहज स्वभाव और अच्छा विद्यार्थी होने के कारण वे अपने शिक्षकों के प्रिय विद्यार्थी बन गए थे; यहाँ तक कि बाऊजी उनके घर तक भी चले जाते थे। उन्हें इस बात का गर्व था कि उन्होंने 'ऑक्सफोर्ड ऑफ द ईस्ट' से उच्च शिक्षा प्राप्त की। लॉ करने के बाद भी उन्होंने वकालत केवल इसलिए नहीं की, क्योंकि उसमें अनेक बार झूठ और प्रपंच का सहारा लेना पड़ता है, जो उनके स्वभाव में नहीं था।

इलाहाबाद में पढ़ाई के समय के उनके परममित्र आदरणीय धर्मप्रकाश चाचाजी और शशि चाचीजी जब घर आते थे तो बाऊजी की खुशी का ठिकाना नहीं रहता था; घंटों बैठकर वे पुराने समय की यादें ताजा करते थे। ऐसे ही देवेंद्र स्वरूप ताऊजी और बाऊजी के बचपन के सहपाठी विजेंद्र चाचाजी से भी बाऊजी देश-समाज की बातें करते थकते न थे। मैं उस समय सोचती थी कि ये किस मिट्टी से बने लोग हैं, जो केवल शुरू के ५-७ मिनट घर-परिवार की बातें करते हैं और बाकी घंटे-डेढ़ घंटे देश की समस्याओं पर चिंता करते हैं। बाऊजी का मानना था कि देश को शिखर पर ले जाने के लिए सबसे पहले जरूरी है कि हर नागरिक स्वयं को पीछे रखे और देश को सबसे आगे। कभी-कभी देश की स्थितियों को देखकर वे बहुत दु:खी होते थे। पर मुझे याद है कि २०१४ में भाजपा की सरकार बनने पर वे बहुत खुश और संतुष्ट दिखे थे। उनमें एक अद्‌भुत आशावाद

था और वे हमेशा कहते थे कि वह दिन दूर नहीं, जब इंग्लैंड, अमेरिका के लोग भी नौकरी के लिए और इलाज करवाने के लिए भारत आया करेंगे।

व्यवसाय में अपार सफलता पाने के बाद भी उनकी सरलता में कोई कमी नहीं आई। अहंकार उन्हें छू भी नहीं गया था। जो उनसे मिलता, वह उनके अपनेपन से प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। कर्मशीलता उनके जीवन का मूलमंत्र रही, उन्होंने कभी छुट्टी नहीं ली, कभी घूमने नहीं गए। 'काम ही उनकी पूजा थी और काम ही उनकी प्राणवायु'। तभी तो वे स्वर्ग सिधारने से पहले दिन, यानी २७ दिसंबर, २०१९ तक भी 'अपने मंदिर यानी प्रभात प्रकाशन कार्यालय' में बैठे थे। उनका जीवन एक जीवंत उदाहरण है—लगन, परिश्रम, कर्मठता और देश के प्रति सरोकारों का। पिछले एक वर्ष में खराब स्वास्थ्य के बावजूद उनके उत्साह और इच्छाशक्ति में कोई कमी नहीं आई थी। एक बार तो उन्होंने अस्पताल से लौटने के बाद मजाक में कहा—'बड़े जोर-शोर से आई थी, पर पता नहीं किस गली में गायब हो गई', यानी मृत्यु के मुँह से लौटने के बाद भी उनकी विनोदप्रियता कम नहीं हुई थी। उन्होंने एक आदर्श पति, आदर्श पिता, आदर्श मित्र, आदर्श प्रकाशक और आदर्श नागरिक के रूप में बहुत संतुष्ट और सार्थक जीवन जीया। बाऊजी ने अपने नेत्रदान करके एक सामाजिक जिम्मेदारी को भी निभाया। अपने इन्हीं गुणों और जीवन-मूल्यों के माध्यम से वे सदा हमारे बीच, हमारे कार्य-व्यवहार में उपस्थित रहेंगे। बाऊजी, आपको कोटि-कोटि नमन और श्रद्धापूर्ण भावांजलि।

सा.अ.

sonali3009@gmail.com

ज्योति का हो संस्फुरण

● इंदिरा मोहन

सुपरिचित लेखिका। अब तक 'पेड़ छनी परछाइयाँ', 'पीछे खड़ी सुहानी भोर' (गीत-संग्रह), 'कहाँ है कैलास' (मुक्त छंद-संग्रह), 'धरती रहती नहीं उदास' (गीत-संग्रह), 'योगवसिष्ठ अनुशीलन' ग्रंथ चर्चित। कई साहित्यिक संस्थाओं द्वारा सम्मानित-पुरस्कृत।

नवल गति का संचरण

विविध ध्वनियों को जगाएँ
ज्योति का हो संस्फुरण,
वीथियों से निकलकर हो
राष्ट्रहित शुभ-जागरण।
वृद्धि का वरदान पाकर, संतुलन धारण करें,
रात-दिन सम नभ-धरा पर, सत्य का शोधन करें।
सूक्ष्म लय से जुड़ सकें
हो नवल गति का संचरण।
चेतना का सूर्यदर्शन, प्रथम जां हमने किया,
प्रगति चिह्नों को बदलकर, भागवत हमने किया।
जलज-पंकज से खिले नित,
तमस युग का हो क्षरण।
ऊर्ध्व मुख विज्ञान धारें, शक्ति अपनी आँक लें,
ग्राम संस्कृति को तपाकर दिव्यता को नाप लें।
संग्रही उन्माद त्यागें,
शुद्ध-सात्त्विक आचरण।
गंध से बेला गमकती, तृप्ति का आस्वाद पूरा,
द्वंद्व की सौगात भय है, ध्येय बिन जीवन अधूरा।
अस्मिता की बेल सींचें,
भरत कुल का आश्रयण।

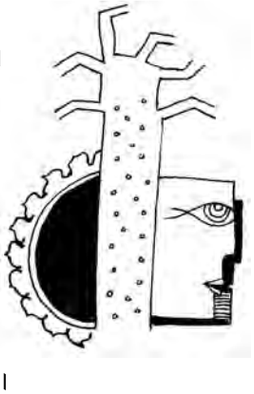

□

लाल किला

टँगा मुँड़ेरों पर है चंदा,
धुला-धुला, उजला-उजला,
आए-गए न जाने कितने
सोच रहा है लाल किला।
कितनी बदली हैं सत्ताएँ, सिंहासन कितने डोले,
कभी बुलंदी छुए कंगूरे, राख हुए कितने शोले।
गली-गली इतिहास सहेजे,
कथा सुनता गाँव-जिला।
सूत कपास छिपा माटी में, उगना, बढ़ना, मुरझाना,
सत्य कहोगे किसको बोले, रँगा हुआ ताना-बाना।
चित्र विचित्र उकेरे जिसने,
चित्रकार छलिया निकला।
पूरनमासी का उजियारा, मावस का नभ काला-काला,
आँख-मिचौली करता पल-पल, आदि-अंत का वह रखवाला।
शेष रहा है कौन यहाँ पर,
आज मिला, कल नहीं मिला।

सा.अ.

६०९-बी, मैगनोलिया
डी.एल.एफ. फेज-५
गुरुग्राम-१२२००९ (हरियाणा)
दूरभाष : ९८११५०४३६४

फकीरचंदजी की मृत्यु

● भरतचंद्र शर्मा

कड़ाके की ठंड पड़ रही थी। शीतलहर का भयंकर प्रकोप, सात दिन से मावठ के कारण बरसात अलग हो रही थी। ऐसे विकट समय में जब इस पृथ्वी का भार उतारने कृष्ण-कन्हैया ने कंस के तगड़े पहरे के बावजूद जन्म लिया था। यहाँ महँगे प्राइवेट अस्पताल में नौ माह से बिस्तर पर पड़े फकीरचंदजी ने देह त्याग दी। उनकी जीवात्मा ने अंग-उपांग में लगी कष्टप्रद नलियों को अँगूठा दिखा ही दिया। वेंटिलेटर के किस छेद से न जाने कब उनके प्राण-पखेरू उड़ गए। डॉक्टरों ने फकीरचंदजी को मृत घोषित कर दिया।

चूँकि फकीरचंदजी तो अपनी काया का कल्याण करते हुए मर गए तो राय देनेवाले तमाम रायचंद श्रेणी के लोग सक्रिय हो गए। लाश को रात भर अस्पताल में ही पड़ी रहने दो, रात को घर ले जाकर खुद की और पूरे मोहल्ले की नींद हराम करके क्या करोगे?

अस्पताल के बरामदों के बाहरी बाकड़ों पर बड़े-बड़े कंबल और गरम लबादे ओढ़े अनेक रायचंद अनेक तरह की कानाफूसी कर रहे थे। फकीरचंदजी एक भरा-पूरा परिवार, जो कश्मीर से कन्याकुमारी लाँघता हुआ न्यूयॉर्क, लंदन, सिडनी तक अपनी संतानों के रूप में विजय पताकाएँ फहराते हुए पूरा वैश्वीकरण हो जाने के बाद मरे थे।

रायचंद की राय थी कि विदेश वाले पोते-पोतियों का तो अंत्येष्टि में आना संभव नहीं होगा, पर देश में रहनेवाले रिश्तेदारों को फोन करो, ताकि कल सुबह तक पहुँच जाएँ। अखबारों में फकीरचंदजी की बड़ी तसवीर के साथ अंतिम यात्रा की टाइम-टेबल दे दो।

महिला मंडल में जो रायचंदजी किस्म की महिलाएँ थीं, वे कह रही थी—"सबसे पहले तो फकीरचंदजी के शव को घर ले जाओ। इनको अच्छी तरह नहलाकर घर के फर्श पर लिटाओ और मुँह में गंगाजल डालो। इनकी काया ने तो बहुत कष्ट भोगा है, अब जीव की गति-मुक्ति का इंतजाम करो।"

उधर कोई लड़का फुसफुसा रहा था कि अभी तो गंगा को सीरियस ले लिया है। न जाने कितने फकीरचंद मरेंगे, तब ठीक होगी।

इन सबके बीच एक ऐसी घटना घट रही थी, जिससे सब अनभिज्ञ थे। फकीरचंदजी की जीवात्मा मध्यरात्रि को देह छोड़ चुकी थी, पर देह से उसका मोह नहीं छूटा था, जो लाश के आसपास चक्कर काटते हुए देह में पुनः प्रवेश करने की नाकाम चेष्टाएँ कर रही थी।

सुपरिचित व्यंग्य लेखक। अब तक दो कहानी-संग्रह, एक कविता-संग्रह, एक बालकथा-संग्रह एवं एक व्यंग्य-संग्रह तथा राष्ट्रीय स्तर की पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ निरंतर प्रकाशित। 'पं. झाबरमल साहित्य सम्मान', 'साहित्य समर्था कहानी सम्मान', 'साहित्य गुंजन सम्मान' एवं अन्य सम्मान प्राप्त।

उनके शरीर को लग रहा था कि वे अभी मरे नहीं हैं, बल्कि अधमरे हैं। बाबू देवकीनंदनजी खत्री के चंद्रकांता संतति उपन्यासों की तरह काल के ऐयारों ने उनकी मुश्कें बाँध दी हों, अतः उनका हिलना-डुलना-बोलना बंद था। उन्हें विश्वास था कि अभी डॉक्टर कोई जड़ी-बूटी खिला दें, जिससे उनके शरीर का कोई बंद द्वार खुल जाए और उनकी जीवात्मा फिर भीतर प्रवेश पा जाए। उनकी जीवात्मा को पहली आपत्ति तो यह है कि घर-परिवार के घनिष्ठ और आत्मीय बंधु-बांधव भी उनको मृत घोषित किए जाते ही आँखों पर रूमाल रखकर बाहरी बरामदों में खिसक गए हैं। गंभीर मंत्रणाएँ कर रहे हैं कि उनकी देह को शीघ्रातिशीघ्र पंचतत्त्व में कैसे विलीन कर दिया जाए, ताकि वे दुबारा सिर न उठा सकें। यदि इन निर्दयी रिश्तेदारों का बस चले तो स्ट्रेचर को घर न ले जाकर सीधे मोक्षधाम ही ले जाएँ, ताकि कल की छुट्टी भी बच जाए। जाति-समाजवाले अलग व्यथा बखान रहे थे—''ये मरनेवाले बिना देखे ही पंचक में मर जाते हैं। अब तक एक ही माह में दस छुट्टियाँ कौन देगा और चुनाव आचार-संहिता अलग, जो कलेक्टरों के पास जाकर इनके नाम का रोना लेकर गिड़गिड़ाओ।''

एक युवक कह रहा था, ''जब नाइट में क्रिकेट मैच हो सकते हैं, लंबी दूरी की बसें चल सकती हैं तो अंतयेष्टि क्यों नहीं हो सकती? ये उस जमाने की बातें हैं, जिस जमाने में बिजली नहीं थी।''

फकीरचंदजी की जीवात्मा को गुस्सा आ रहा था कि ये नालायक मुझे जलाने की इतनी जल्दी मचा रहे हैं। वे तो लाचार हैं, क्योंकि

जीवात्मा देह के बाहर है, वरना खींचकर एक लप्पड़ इसको लगाते। भाई की मझली छोकरी का छोकरा दिख रहा है, बचपन में कितने प्रेम से कंधे पर झुलाया था, आज इसका यह एहसान चुका रहा है।

उनकी लाश लावारिस लाश की तरह पड़ी है। पूरे शरीर पर सफेद चद्दर ढकी है! जीवात्मा भीतर पुन: प्रवेश करे तो कहाँ से करे। जीवन में हर जगह पतली गली खोजकर अपना काम निकाल लिया, पर हाय री विवशता कितनी निरुपाय है जीवात्मा! बाहर खड़े लोग आगे की व्यवस्था कर रहे थे। कुछ लोग और आगे की व्यवस्थाएँ देखने घर जा चुक थे।

इधर पूरा जीवन रील की तरह घूम रहा था। बाहर कोई कह रहा था कि अच्छा ही हुआ, जो फकीरचंदजी को ऊपरवाले ने बुला लिया। वो तो डोकरे ने शुद्ध घी खूब खाया था। बासमती के चावल के सिवा खाने को हाथ भी नहीं लगाता था। वह तो दाढ़ का सच्चा था, जो अठासी रन की पारी खेल गया। हमारी पीढ़ी तो साठ में ही टाँय-टाँय-फिस्स है।

उधर लाश पर भन्नाती जीवात्मा फिर भड़क उठी—ये नादान लोग इतना भी नहीं जानते कि शास्त्रों ने हमारी आयु सौ वर्ष निर्धारित की थी, उस हिसाब से अभी 12-14 वर्ष बाकी हैं। यह कोई मामूली अवधि नहीं है। इतने समय में तो रामजी और पांडव, दोनों का वनवास पूरा हो जाए। ज्यादा-से-ज्यादा फाउल मानें तो यही है कि उनकी शादी 20 वर्ष में करा दी थी, सो पाँच वर्ष पूर्व ही उनके गृहस्थ धर्म ने ब्रह्मचर्य भंग कर दिया। उस हिसाब से तो उन्हें सैकड़े पर 5 वर्ष के बोनस अंक मिलने चाहिए। काली-कमोद खाई, प्योर घी पिया तो किसी के बाप का तो नहीं खाया, गाँठ की पसीने की कमाई खर्च कर खाया है।

अब उन्हें दो बातों का बहुत पछतावा है—पहला यह कि ईश्वर ने भारत के बजाय मिस्र में जन्म क्यों नहीं दिया? वहाँ कम-से-कम रसायन लेपकर जीवात्मा के लौटने की प्रतीक्षा तो करते हैं। इस तरह घर फूँककर तमाशा तो नहीं करते। दूसरा दु:ख, उन्होंने समय रहते अपने आप को साधु-संत घोषित क्यों नहीं कर दिया, जिससे वे कह सकते थे कि जीवात्मा समाधि में है, देह को हाथ लगाने की जुर्रत न करना। पर इन भूलों के अब पछतावे ही शेष हैं।

मध्यरात्रि के तत्काल बाद उनके शव को एंबुलेंस में रख दिया गया। रात के उस भयावह अँधेरे में भी उनकी देह पर मँडराती जीवात्मा आत्मीय लोगों के नाटकीय चेहरे साफ-साफ देख रही थी। अधिकांश लोग तो चाहते भी नहीं थे कि लाश को रात में घर ले जाकर और लोगों की रात खराब की जाए।

जीवन में पहली बार और संभवत: अंतिम बार उनका ही घर उनके गृह-प्रवेश पर दहाड़ें मारकर उनके नाम का रोना रो रहा था।

उनकी पार्थिव देह गृह-प्रवेश कर रही थी। उनकी जीवात्मा लगातार देह-प्रवेश की नाकाम चेष्टा कर रही थी। आँसुओं की इस धारा में उनकी पत्नी प्यारी की लंबी चीत्कारें सबसे आगे थीं। विलाप के भीतर इतना गुणगान था कि जीवात्मा की हँसी छूट गई। इतने महान् गुणों का खजाना थे, वे स्वयं अनभिज्ञ थे। जिस राम प्यारी के प्यार को वे जीवन भर समझ नहीं पाए, आज जब वे स्वयं रामजी को प्यारे हो गए, तब वह रुदाली रुदन में प्यार का अर्थ खोज रही है। उनके जीवात्मा ने उनकी ही देह को धिक्कारा कि जिसने राम प्यारीजी के सहयोग से आठ-दस बच्चे उत्पन्न किए, इसी उत्पादकता को वे प्यार समझते रहे।

उनकी पार्थिव देह गृह-प्रवेश कर रही थी। उनकी जीवात्मा लगातार देह-प्रवेश की नाकारा चेष्टा कर रही थी। आँसुओं की इस धारा में उनकी पत्नी प्यारी की लंबी चीत्कारें सबसे आगे थीं। विलाप के भीतर इतना गुणगान था कि जीवात्मा की हँसी छूट गई। इतने महान् गुणों का खजाना थे, वे स्वयं अनभिज्ञ थे। जिस राम प्यारी के प्यार को वे जीवन भर समझ नहीं पाए, आज जब वे स्वयं रामजी को प्यारे हो गए, तब वह रुदाली रुदन में प्यार का अर्थ खोज रही है! उनके जीवात्मा ने उनकी ही देह को धिक्कारा कि जिसने रामप्यारीजी के सहयोग से आठ-दस बच्चे उत्पन्न किए इसी उत्पादकता को वे प्यार समझते रहे।

जिस मकान को बड़े प्रेम से बनवाया था, उसकी संगमरमरी टाइलों पर बिना कुछ बिछाए निर्दयतापूर्वक उन्हीं के आत्मीय स्वजनों ने भीषण ठंडी रात में नंगे बदन लिटा दिया। जीवात्मा भौंरे की तरह उनकी देह के आसपास मँडरा रही थी। लड़के-लड़कियाँ दहाड़ें मारकर रोते हुए बार-बार उनके शव पर गिर रहे थे, जीवनकाल में कभी ऐसे आत्मीय आलिंगन नहीं देखे गए।

अड़ोसी-पड़ोसी बच्चों को घेरकर बाहर ले गए, फिर किसी रायचंद ने मूल्यवान राय दी। रुदन बंद करो, नहीं तो फकीरचंदजी की जीवात्मा घेरे में पड़ जाएगी, फिर उनकी गति-मुक्ति नहीं होगी। तुम लोग अच्छी सेवा कर अपना कर्तव्य पूरा कर चुके हो, अब आगे का काम हमको करने दो।

अब रात्रि को शेष समय में गीतावाचन करो। इधर गीतावाचन शुरू हुआ, उधर जीवात्मा की बैचेनी बढ़ गई।

'जातस्य हि ध्रुवो मृत्यु।' अर्थात् आत्मा कभी नहीं मरती है। पुराने वस्त्रों की तरह आत्मा देह त्याग करती है।

फकीरचंदजी की जीवात्मा प्रतिवाद कर रही है कि मेरी देह का वस्त्र फट गया है और यह फटा वस्त्र पहनने में भी मुझे कोई शर्म नहीं है। मेरे फटे वस्त्र को भस्मीभूत करने का अधिकार इन लोगों को किसने दिया? जिस देश में कई लोग गरीबी के कारण अधनंगे घूमते हैं, उससे तो मेरा फटा वस्त्र लाख दर्जे अच्छा है।

ऊपर से झाँसा और दे रहे हैं कि फकीरचंदजी वैकुंठवासी हो गए, स्वर्गवासी हो गए। जीवात्मा सोच रही है—क्या पता, आगे ले जाकर कहाँ पटकेगा? मनुष्यों की आबादी तो पहले ही बहुत है। वहाँ तो

सरकारी नौकरी की तरह कोई वैकेंसी दिखती नहीं है। कोई खास सत्कर्म भी उनके हृदयागार में दिखाई नहीं देते हैं। क्या पता, किस कुंभीपाक में ले जाकर पकाएगा? इससे तो अच्छा है कि किसी गधे की पोस्ट खाली हो और वह मिल जाए तो भी अहो भाग्य!

घर के लोगों को यह रात लंबी लग रही थी, जीवात्मा को बहुत छोटी लग रही थी। सूर्योदय होते ही ये समस्त षड्यंत्रकारी दुष्टात्माएँ मेरी देह का तीया-पाँचा कर देंगे। जीवात्मा के देह पुन:प्रवेश का अंतिम विकल्प भी समाप्त हो जाएगा।

काश, यह चुनाव की आचार-संहिता अंत्येष्टि पर भी लागू होती। जिस तरह सरकारी काम रुके पड़े हैं, ऐसे ही उनकी लाश भी पड़ी रहती। फकीरचंदजी की कतई इच्छा नहीं थी कि यह जमा-जमाया घर, यह भरा-पूरा परिवार छोड़कर कहीं जाएँ।

फकीरचंदजी को सबसे बड़ा आश्चर्य तो यह हो रहा था कि मृत्यु-सूचक संकेत भी नहीं हुए। वे मर कैसे गए? यह यमराज के दफ्तर की कोई गलती लगती है। किस-किस को रोए, यमराज के दफ्तर में भी इतना चोरवाड़ा। छह महीने से न तो उनकी गली में कोई साँड़-ताडूका और न आधी रात को काला कुत्ता रोया, फिर वे मर कैसे गए!

जैसे-जैसे ब्राह्म-मुहूर्त का सूर्योदय निकट आ रहा है, जीवात्मा की बेचैनी बढ़ती जा रही है। किसी शायर ने ठीक कहा है—''जमाने के गम कम न होंगे, मगर अफसोस, कल तेरी दुनिया में हम न होंगे!''

सवेरा हो गया। जाति-समाज, इष्ट-मित्र इकट्ठे होने लगे। पंडितजी को बुला लाया गया। क्रियाविधि हेतु नाई भी पत्थर पर उस्तरा चमकाने लगा। बाहर खड़े लोग अलग-अलग जत्थों में बतिया रहे थे—''फकीरचंद आज क्या मरा है, कई लोगों को मार गया है! भीषण सर्दी में दाँत किटकिटा रहे हैं। मावठ की बरसात में शव जलने में भी जाने कितना समय लगेगा!''

भीतर पंडितजी उनके लड़कों को लाश के पास बिठाकर क्रियाविधि करा रहे थे। जीवात्मा नर्वस होती जा रही थी। ये लोग फकीरचंद के पुनर्जीवित होने की समस्त संभावनाओं को नकार रहे थे। पंडितजी ने फुटबॉल के आकार के पाँच पिंड लड्डू बनवाए, एक तो फकीरचंद की छाती पर और चार पार्श्व में रख दिए। फकीरचंद को जोरों की भूख लग रही थी, उनका बस चलता तो उठकर पाँचों लड्डू अभी ही खा जाते। पर उनकी तो मुश्कें बँधी हुई थीं। भूख लगने का कारण भी जायज था, तीन माह से तो उनको नारियल का पानी नाक की नली से डाला जा रहा था, जो पेशाब की नली से त्वरित गति से निकल जाता था। पिछले 15 घंटों से, जब से मृत घोषित किया है, उल्लू के पट्ठों ने वह भी बंद कर दिया। अब पंडित कह रहा है कि आगे का रास्ता लंबा है, अत: ये पंथ के लड्डू कलेवा हैं।

फकीरचंदजी की जीवात्मा रुआँसी हो गई। अपने ही घर में, अपनी ही छाती पर लड्डू होने के बावजूद भूखे ही अंतिम यात्रा पर निकल रहे हैं।

बाहर मोक्षवाहिनी देखकर कुछ लोगों के चेहरों पर प्रसन्नता खिल उठी। बुड्ढा वैसे ही भारी था, मरकर और भारी-भरकम हो गया होगा। अच्छा है, जो यह मोक्षवाहिनी आ गई, वरना कंधे ही टूट जाते।

लुगाइयों को लगभग बाहर निकालते हुए अंत्येष्टि निष्णात आठ-दस मुस्टंडे 'रामनाम सत्य' की टेर लगाकर अरथी को लेकर भीतर प्रवेश कर गए। त्वरित गति से उनके शरीर को अरथी पर बाँधने लगे, जैसे कोई कैदी कहीं भाग न जाए। 'रामनाम सत्य' की टेर लगाते हुए अरथी कंधों पर उठा ली। जीवात्मा रुआँसी होकर चीत्कार कर उठी—'फकीरचंद असत्य है, रामनाम सत्य है।'

जैसे बरात की गाड़ी में दूल्हे की सीट रिजर्व होती है, वैसे ही मोक्षवाहिनी में बर्थ रिजर्वेशन में ही उनका स्लीपर रिजर्व था। बैंड बाजा बज रहा है, पर कोई नाच नहीं रहा है। कौन नाचे, वे तो बँधे हुए हैं और जीवात्मा रो रही है। बैंडवाले भी गांधीजी के गाए भजन बजा रहे हैं। श्मशान घाट पर अनेक रायचंद सक्रिय हुए। कौन सा लकड़ा कहाँ रखना है, छाती पर कौन सा बोंगड़ा रखना है, साइड में कौन से भड़े रखें, ताकि फकीरचंदजी की लाश बिना अनुशासनहीनता दिखाए जल जाए।

फकीरचंदजी कभी-कभी फ्रेंच बॉथ लेते थे। आज उनके कुल-गोत्र के लोग उनको लगभग अनावृत करते हुए फ्रेंच बॉथ करवा रहे थे। उनके शरीर के अंग-उपांग में रखा मैल पूरी तरह साफ कर रहे थे।

जीवन में जितने हार उन्होंने कभी नहीं पहने, उतने उनकी अरथी पर पड़े थे। फूल उदास थे, उनको उठाकर एक तरफ फेंक दिया गया। उनकी जीवात्मा समझ चुकी थी कि वह जीवन की लड़ाई हार चुकी है।

उनके पूरे शरीर पर इतना घी मला गया, जितना पूरे जीवन में उन्होंने नहीं खाया था। आँखों में मोती तथा मुँह में मूँगा डाला गया, जिससे उनको अत्यधिक मात्रा में अंतिम-यात्रा हेतु बाइफोकल चश्मा तथा गले में मोबाइल मिल जाए। जीवात्मा छाती कूटती ही रह गई और फकीरचंजी की देह को आग के हवाले कर फूँक दिया गया।

तभी किसी ने उन्हें झिंझोड़ा, ''उठो, आज उठना नहीं है क्या? आज तो हमारी वेडिंग एनिवर्सरी है।'' फकीरचंदजी को लगा, जैसे अँधेरे कुएँ में उनकी रामप्यारी-प्राणप्यारी का हाथ उनकी ओर बढ़ रहा है।

उन्होंने उसे कसकर पकड़ लिया। इतना कसकर तो पाणिग्रहण में भी नहीं पकड़ा था। घबराए हुए बोले, ''अभी-अभी मैंने अपनी मृत्यु देखी है।''

पत्नी ने कहा, ''घबराओ नहीं, आपकी तो उमर बढ़ गई। हाँ, कोई दूसरा मरेगा जरूर।'' फकीरचंदजी किंकर्तव्यविमूढ़ थे—

'स्वप्न क्या है, सत्य क्या है?'

बाँसवाड़ा (राजस्थान)
दूरभाष : ९४१३३९८०३७

अपने सुहाग के लिए मुझे मरना पड़ा

● गुंजन गुप्ता

आज मेरा ९०वाँ जन्मदिन है। मेरी दो बेटियाँ डॉ. दूर्वा और पूर्वा ने मेरा जन्मदिन एक पाँच सितारा होटल में मनाने का कार्यक्रम रखा है। दिसंबर का महीना है, ठंड शुरू हो चुकी है। आज हलका-हलका कोहरा भी है। सूर्य तो निकल आया है, पर अभी धूप पूरी तरह नहीं आ रही। सुबह के दस बज चुके हैं। मैं और मेरे कुछ रिश्तेदार यहाँ आ चुके हैं। जन्मदिन समारोह ग्यारह बजे शुरू होना है। मेहमान आते जा रहे हैं। हॉल, जहाँ कार्यक्रम है, उसके पास ही सुबह के नाश्ते का प्रबंध किया गया है। यहाँ आनेवाले अधिकतर लोग मुझसे छोटी उम्र के ही हैं, जो मेरे पैर छूकर व गले मिलकर अभिवादन-प्रणाम कर रहे हैं। मेरी तीन भानजियाँ व दो छोटी बहनें आ चुकी हैं। छोटा भाई भी आ चुका है। कुछ रिश्तेदार स्थानीय हैं, कुछ दूसरे शहरों से भी हैं। अधिकतर मेहमान नाश्ता कर रहे हैं। आज मेरे सम्मान में मेरे भानजे-भतीजों ने एक पुस्तक प्रकाशित की है, जिसका लोकार्पण भी होगा। जिस हॉल में यह कार्यक्रम है, उसके बाहर एक बोर्ड पर लिखा है—'श्रीमती सुनंदा देवी का ९०वाँ जन्मदिन समारोह।' ठंड के कारण मेहमान धीरे-धीरे आ रहे हैं।

जब तक यहाँ मेहमानों की प्रतीक्षा हो रही है, मैं बैठी सोच रही हूँ, 'मैंने कभी कल्पना भी नहीं की थी कि मेरा ९०वाँ जन्मदिन इतने भव्य रूप में मेरी दोनों बेटियाँ व पीहर के लोग मनाएँगे। मेरा जीवन तो बहुत कठिन रास्ते से गुजरा है। मेरा वैवाहिक जीवन कैसा रहा है, मैं ही जानती हूँ। लड़कियों को शादी के बाद खुशियाँ मिलती हैं, पति का प्यार मिलता है, पर उससे मैं वंचित रही हूँ। जो मैंने कष्ट सहे, उन्हें मैं भूल तो नहीं सकती, हाँ, पर अब मेरी वृद्धावस्था अच्छी व्यतीत हो रही है। मेरी बेटियाँ मेरा बहुत ध्यान रखती हैं। मैं एक प्रतिष्ठित परिवार की बेटी हूँ मेरे पिता प्रोफेसर थे। मेरी पढ़ाई अधिक नहीं हो सकी थी, क्योंकि उन दिनों लड़कियों को अधिक पढ़ाने का रिवाज नहीं था। स्कूल में मैं मात्र आठवीं क्लास तक ही पढ़ सकी। फिर कुछ हिंदी की प्राइवेट परीक्षाएँ अवश्य पास की थीं, जैसे विद्या विनोदिनी, प्रभाकर आदि। जब मैं १८ वर्ष की हुई तो पिताजी को मेरी शादी की चिंता हुई और उन्होंने तथा मेरे बड़े भाई व जीजाजी ने लड़का देखना शुरू किया। एक नामी वकील का लड़का पढ़ाई कर रहा था। उसे देखने मेरे बड़े भाई व जीजाजी गए और

सुपरिचित लेखिका। सामाजिक समस्याओं पर लेखन। अब तक विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लेख प्रकाशित। संप्रति जिंदल विद्या मंदिर स्कूल, विद्यानगर, तौरंगलू (कर्नाटक) में हिंदी की अध्यापिका।

उन्हें पसंद आ गया। उस जमाने में माता-पिता ही शादी तय कर देते थे। लड़के या लड़की की पसंद, नापसंद का प्रश्न ही नहीं होता था। परिवार अच्छा हो, लड़का पढ़ा-लिखा हो, यही सब देखा जाता था। जब मैं १९ वर्ष की थी तब मेरी शादी कर दी गई थी। शादी के बाद मैं अपनी ससुराल, जो एक तहसील हैं, में अपने सास-श्वसुर के पास रही। पति गिरीशचंद्र शहर में पढ़ाई कर रहे थे। मैं बीच-बीच में अपने पीहर जाती रही। मेरे पति कभी-कभी अपने घर माता-पिता के पास आते थे। पति की पढ़ाई पूरी होने के बाद उन्होंने वकालत शुरू कर दी थी। वे किराए के एक घर में अकेले रहते थे। मैं उनके पास रहना चाहती थी, परंतु वे कुछ-न-कुछ बहाना बनाकर मुझे अपने साथ रखने को टालते रहे।

कानपुर में पति संस्कृत में एम.ए. कर रहे थे, उसी शहर में वीना नाम की महिला भी संस्कृत में एम.ए. कर रही थी। दोनों सहपाठी थे। मेरे पति हमारी शादी के पहले बी.ए., एल-एल.बी. कर चुके थे और राज्य सरकार के कार्यालय में नौकरी भी कर चुके थे। वीना के परिवार से मेरे पति का पहले से मिलना-जुलना था। मेरी शादी के लगभग दो वर्ष बाद मेरे परिवारवालों को मेरे पति ने सूचित किया कि 'मैं अपनी कॉलेज की सहपाठिन से प्रेम करता हूँ और उससे विवाह करना चाहता हूँ। मेरे माता-पिता ने मेरी शादी सुनंदा से तय कर दी थी, तब मैं अपने माता-पिता के निर्णय का विरोध नहीं कर सका था। मैं सुनंदा को तलाक देना चाहता हूँ।' इस पर मेरे परिवारवाले राजी नहीं थे। मेरे बड़े भाई व पिताजी ने भी जब मुझसे पूछा कि क्या तुम अपने पति को तलाक देना चाहोगी, तो मैंने मना कर दिया। तलाक के बाद उस जमाने में लड़की की दूसरी शादी संभव नहीं थी; प्रतिष्ठा का प्रश्न भी था। और मैं कब तक अपने माता-पिता या भाई के साथ रह सकती थी! समय बीतता गया, मैं अपने पीहर आ गई।

अपने घर आकर मैंने अपनी पढ़ाई के विषय में सोचा कि मैं अपने पैरों पर खड़ी हो सकूँ, किसी पर बोझ न बनूँ। मैंने अपने पीहर अलीगढ़ में रहकर प्राइवेट माध्यम से हाई स्कूल किया, फिर इंटरमीडिएट पास किया। इधर मेरे पति ने मेरे परिवार के लोगों को सूचित किया कि 'ठीक है, यदि सुनंद तलाक नहीं देना चाहती तो मैं एक पत्नी के रहते दूसरी शादी नहीं कर सकता। यदि कुछ समय के लिए सुनंदा अलग रहे और आप लोग मुझे टेलीग्राम द्वारा सूचित कर दें कि सुनंदा का स्वर्गवास हो गया, तब मैं दूसरी शादी कर सकता हूँ और फिर बाद में सुनंदा को अपने साथ रख लूँगा।' मेरे पति ने जो सुझाव दिया, उसपर मेरे पिताजी राजी नहीं थे। मुझसे मेरे भाई और जीजाजी ने पूछा था, 'सुनंदा, क्या तुम अपने पति गिरीशचंद्र की बात स्वीकार करती हो?' मैंने कहा था, 'भैयाजी, मेरा जीवन अंधकार में है, कुछ समझ नहीं आता। वैसे भी अभी मैं कौन सुखी हूँ! मैं अपने पति के लिए सब सहन कर लूँगी, यदि दूसरे विवाह के बाद वे मुझे अपना लेंगे?' मैंने अपनी सहमति दे दी। मैं अपने बड़े भाई के पास ग्वालियर चली गई। वहाँ से मेरे भाई ने मेरे पति के नाम एक टेलीग्राम भेज दिया—'सुनंदा एक्सपायर्ड'। बस मेरी शादी के आठ वर्ष बाद मेरे पति ने अपनी सहपाठिन प्रेमिका वीना से आर्यसमाज रीति से विवाह कर लिया। श्रीमती वीना एक कॉलेज में पढ़ाने लगी थीं। उनकी शादी के एक वर्ष बाद मैं अपने पीहर से पति के पास आ गई थी। मेरे पति मुझे लेने स्वयं आए थे।

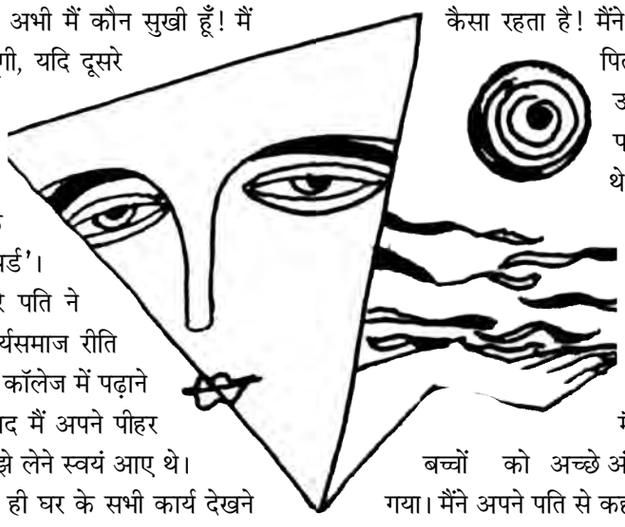

हमारी गृहस्थी चल रही थी। मुझे ही घर के सभी कार्य देखने होते थे। वीना ने एक लड़की, फिर एक लड़के को जन्म दिया। एक पत्नी को अपने पति से जो सुख मिलता है, वह मुझे नहीं मिला। मैं वहाँ आ जरूर गई थी, पर सुखी नहीं थी। मेरे पति के मित्रों को यह सच पता था। उन्होंने मेरे पति को समझाया कि अपनी पहली पत्नी को भी मातृत्व का सुख दो, तभी तुम्हारी गृहस्थी सुखी रहेगी। तब मेरे पति को समझ आई। मुझे भी दो पुत्रियाँ हुईं, बड़ी दूर्वा और छोटी पूर्वा। डिलीवरी के समय मुझे अपने पीहर में रहना पड़ा। उसके बाद मैं अपने पति के पास आ गई। बच्चों की प्राइमरी शिक्षा कानपुर में ही हुई। वहाँ रहकर मेरे बच्चों को पिता का प्यार-स्नेह नहीं मिल रहा था। वीना के बच्चों और मेरे बच्चों में भेद-भाव किया जाता था। मैं दुःखी रहने लगी। फिर जब बच्चे कुछ बड़े हुए, समझदार हुए, उन्हें लेकर मैं फिर पीहर आ गई। अपनी कोठी के पास लड़कियों का एक स्कूल है, उसमें मैंने दोनों बेटियों का दाखिला करा दिया। एक वर्ष बाद मैंने सोचा कि अब मैं अकेली नहीं हूँ, आगे पढ़कर, नौकरी करके अपने बच्चों को शिक्षित करूँगी, योग्य बनाऊँगी। इसलिए मैंने हिम्मत करके अपने पिताजी से कहा, 'बाबूजी, आप मुझे इजाजत दें तो मैं अपने पति को तलाक देना चाहती हूँ, क्योंकि इस तरह दुःखी रहकर जीने का क्या लाभ, जब बच्चों को पिता का प्यार भी न मिले।' पिताजी ने मेरे भाइयों से भी इस विषय में बात की, उन्होंने कहा कि जब सुनंदा स्वतंत्र रहकर प्रसन्न रह सकती है तो तलाक देने में कोई हर्ज नहीं। मेरे भाइयों की स्वीकृति के बाद मेरे बाबूजी ने वकील से तलाक के कागज बनवाकर मेरे पति को भेज दिए।

जब मेरे पति के पास हमारे तलाक के कागज पहुँचे तो वे घबरा गए, क्योंकि वे स्वयं वकील थे और जानते थे कि उन्होंने वीना से दूसरी शादी तब की थी, जब पहली पत्नी का स्वर्गवास हो गया था। इससे वे परेशानी में आ सकते थे। तब उन्होंने मेरे पिताजी को पत्र लिखा कि 'मैं सुनंदा को अपने पास रखूँगा, बच्चों का भी ध्यान रखूँगा। सुनंदा को मैं तलाक नहीं देना चाहता।' इस पत्र को पाकर मेरे परिवारवालों ने मुझे समझाया कि एक बार तुम देख लो कि उनका व्यवहार अब कैसा रहता है! मैंने भी यह सोचकर कि मेरे बच्चे अपने पिता का प्यार पा जाएँ तो खुश रहेंगे और उनकी पढ़ाई अच्छी तरह से होगी। मेरे पति शहर के बड़े वकीलों में गिने जाते थे। बड़ी प्रतिष्ठा थी उनकी। मेरे बाबूजी की स्वीकृति पाकर मेरे पति मुझे लेने अलीगढ़ आ गए। मेरी माँ ने मुझे और मेरे बच्चों को आशीर्वाद देकर विदा किया। मेरे पति का भी एक नारियल और कुछ रुपए भेंट कर टीका किया। मैं कानपुर आकर रहने लगी। मेरे दोनों बच्चों को अच्छे अंग्रेजी मीडियम स्कूल में भरती करा दिया गया। मैंने अपने पति से कहा था, 'वकील साहब! मैं भी अब आगे पढ़ना चाहती हूँ, ताकि मैं नौकरी कर सकूँ।' उनकी स्वीकृति के बाद मैंने प्राइवेट से बी.ए. किया, फिर एम.ए. और फिर बी.एड. भी। उसके बाद मुझे एक हाई स्कूल में हिंदी पढ़ाने की नौकरी मिल गई।

मेरे पति का व्यवहार पहले से कुछ ठीक हो गया। वे मेरे साथ मेरी छोटी बहन और छोटे भाई की शादी में भी शामिल हुए। अन्य भानते-भतीजों की शादियों में भी वे मेरे साथ गए। मेरी बड़ी बेटी लखनऊ मेडिकल कॉलेज में पढ़ने लगी। छोटी बेटी पूर्वा ने क्राइस्ट चर्च कॉलेज, कानपुर में रहकर बी.ए., एम.ए. और फिर बी.एड. भी किया। बी.एड करने के बाद उसने कुछ वर्ष एक स्कूल में पढ़ाया। उधर मेरी बड़ी बेटी डॉ. दूर्वा ने एम.बी.बी.एस. करने के बाद एम.डी. भी किया। हमें अपनी बड़ी बेटी के लिए लड़का नहीं ढूँढ़ना पड़ा, उसके साथ पढ़नेवाले डॉ. अपूर्व, जो सर्जन हैं, उनसे उसकी शादी धूमधाम से की। छोटी बेटी पूर्वा की शादी श्री रघुवीर, जिनका अपना निजी व्यापार है, से कर दी। वीना देवी के दो बेटे हैं, एक इंजीनियर है, एक डॉक्टर और दो बेटियाँ हैं—एक गृहणी है और दूसरी डॉक्टर। चारों के विवाह भी हो चुके हैं। वे सब सुखी हैं।

मेरे पति गिरीशजी का अभी तीन वर्ष पहले स्वर्गवास हो गया। वे

एक वर्ष बीमार रहे। वे गिर पड़े थे, बिस्तर पर ही लेटे रहते थे। मैंने ही उनकी बीमारी में सेवा की। उनकी देखभाल के लिए मेरी बेटी ने अपने अस्पताल का एक स्टाफ नर्स भेज दिया था, वही उनके पास बराबर रही। जब वे बीमार हुए, तब उन्होंने जाना था कि मेरी पहली पत्नी ने ही मेरा ध्यान रखा। मैं कहीं जाती थी, जैसे अपने पीहर तो घर के लोग कहते कि बहनजी, कुछ दिन और रुक जाओ तो मैं कहती कि वकील साहब को मेरी अधिक आवश्यकता है। वे मुझे ही पुकारते हैं। मैं भी बहुत वृद्ध हो गई हूँ, मुझे पेंशन भी मिलती है और मैं बड़ी बेटी के साथ लखनऊ में रही हूँ।

अब ग्यारह बज चुके हैं। अच्छी धूप निकल आई है। मौसम सुहाना हो गया है। होटल में अब लगभग सभी रिश्तेदार-मेहमान आ चुके हैं। मेरे जन्मदिन का कार्यक्रम शुरू हो गया है। लोग एक-एक कर मुझे उपहार, माला-गुलदस्ते भेंट कर रहे हैं, मेरे पैर छूकर आशीर्वाद ले रहे हैं। मेरे पीहर के लोगों ने अपने-अपने विचार प्रकट किए। बच्चों ने कविताएँ सुनाईं, उनकी स्वयं की बनाई हुई। कुछ ने कहा कि आप त्याग की मूर्ति हैं, महान् हैं। कुछ पुरानी यादों के साथ लोगों ने संस्मरण सुनाए। यह सब देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। मेरे प्रिय भानजे ने मेरे सम्मान में एक अभिनंदन-पुस्तिका प्रकाशित की। उसका लोकार्पण मेरी छोटी बहनों, भाभियों और छोटे भाई ने किया। इसी के साथ मुझे पश्मीने का एक शॉल और मोतियों की माला पहनाकर सम्मानित किया। आज मैं यह सब देखकर अपने जीवन में जो कष्ट भोगे, उन्हें भूल गई। मेरे सम्मान में जो पुस्तक तैयार कर मुझे भेंट की गई, उसका नाम है—'सुनंदा'।

आज अब मैं सोच रही हूँ, 'मुझे अपने सुहाग की खुशी के लिए मरना पड़ा था, क्या वह ठीक नहीं था? आज मेरी दोनों पुत्रियाँ डॉ. दूर्वा और पूर्वा संपन्न हैं। डॉ. दूर्वा और उसके पति डॉ. अपूर्व, जो सर्जन हैं, चार अस्पताल चला रहे हैं। छोटी बेटी पूर्वा के पति श्री रघुवीर का अपना, स्वयं का एक बड़ा उद्योग है। मेरे तीन नाती हैं, एक नातिन—चारों बहुत योग्य बच्चे हैं। मैंने जो निर्णय आज से लगभग साठ वर्ष पहले लिया था, क्या वह ठीक नहीं था? कार्यक्रम के अंत में मैंने लगभग सभी रिश्तेदारों-मेहमानों का आभार प्रकट किया। ईश्वर को धन्यवाद दिया, जो मुझे मेरी वृद्धावस्था में इतना मान-सम्मान व सुख दिया।'

०-१/२ जे.एस.डब्ल्यू. टाऊनशिप
विद्यानगर, तौरंगलू
जिला-बेल्लारी-५८३२७५ (कर्नाटक)
दूरभाष : ९४१६९९५४२२

गागर से सागर

गीत

• श्रीराम मीना

जीवन का आरंभ काव्य से, अंत कथा से है,
दोनों का संबंध प्रेम और मुई व्यथा से है।

एक भीतर से बाहर आए, दूजी बाहर से भीतर,
मर्म समझ में कभी न आए, उड़े हंस-तीतर।

माखन-मिश्री शहद काव्य का, गागर से छलके,
कथा-कहानी, उपन्यास में, सागर भी बहके।

शब्द ब्रह्म की माया कैसी, सोच रहे नागर,
गागर से सागर निकले हैं, सागर से गागर।

बार-बार मन करता

खुली आँखों से जो देखा, लिखा वो गद्य कहलाया,
आत्मा बंद आँखों से, हसीं कविता लिखा करती।

आत्मा की कलाकारी, मुई कविता में झाँके है,
अवचेतन के हसीं दृश्य, चेतन को आँके है।

अलौकिक अनुभव, आत्मा से निकलते हैं,
दिमागों के खजाने तो, कोरे अनुभव बटोरे है।

कथा-कहानी-उपन्यास, एक बार पढ़ा करते,
बार-बार मन करता, अच्छी कविता पढ़ने का।

राष्ट्र जागरण मंच
बाबई रोड, मालाखेड़ी
होशंगाबाद-४६१००१ (म.प्र.)
दूरभाष : ८७७१५१०२४०

हम सबके बाबूजी

● चारू अग्रवाल

बाबूजी मुझे प्यार से 'छुटकी' बुलाते थे। वे मुझे बहू कम, अपनी बेटी ज्यादा मानते थे। हमेशा कहते थे, ''मैंने बहुत पुण्य किए होंगे, जो मुझे तू मिली है। हमेशा ऐसे ही हँसती रहा कर। तुझे देखकर मेरा मन प्रसन्न हो जाता है।''

बाबूजी मुझसे हमेशा कहा करते कि रोज एक पेज अंग्रेजी और एक पेज हिंदी का लिखकर मुझे दिखाया करो। ऑफिस से प्रिंटआउट निकलवाकर ले आते थे और कहते थे कि मुझे इसका संपादन-संशोधन करके दिखाना। पत्र-लेखन की चार पुस्तकें छाँटकर वे मेरे लिए लाए, जिनसे वे मेरी पत्र-लेखन की भाषा-शैली ठीक करवाते थे। उन्हें अखबार से बहुत प्रेम था। पिछले एक साल से वे इतने छोटे अक्षर नहीं पढ़ पाते थे, इसलिए कई बार मैं उन्हें वे समाचार पढ़कर सुनाया करती थी। वे समाचार-पत्र में अंत तक महत्त्वपूर्ण खबरें रेखांकित किया करते और मुझसे उन खबरों की कटिंग करने को कहते थे, साथ ही बोलते थे कि इसे परिवार में सभी को पढ़ने के लिए देना, या फिर खुद ही सँभालकर रख लेते थे। लड़कियों की उच्च शिक्षा या लड़कियाँ विभिन्न क्षेत्रों में कितना आगे निकल गई हैं, इसे कई उदाहरण देकर मुझे बार-बार समझाते थे। वे बहुत खुश होते थे, जब अखबार में किसी लड़की की सफलता की बड़ी खबरें आती थीं।

बाबूजी रोज सवेरे पाँच बजे तक उठ जाते थे। मैं रोज सुबह चरण-स्पर्श के लिए उनके पास जाती थी और वे आह्लादित हो वात्सल्यभाव से मुझे अपना आशीर्वाद देते थे। बाबूजी अकसर हम सभी को ये अमूल्य शिक्षाएँ देते थे—

१. कर्तव्य सर्वप्रथम : जब देने की बारी आए तो सबसे आगे रहना और जब लेने की बारी आए तो सबसे पीछे।

२. सहन-शक्ति : बाबूजी कहते थे कि मन से ताकतवर इनसान सहनशील और कर्मठ होता है और तुम्हें वही बनना चाहिए।

३. हमेशा कुछ-न-कुछ पढ़ो : हमेशा कुछ अच्छा व श्रेष्ठ पढ़ते रहना। उसी से लिखने की प्रेरणा मिलती है।

४. नियम व अनुशासन : जीवन के हर क्षेत्र में कठोर नियम व अनुशासन से ही सफलता मिलती है।

५. सकारात्मकता : हमेशा सकारात्मक सोच रखनी चाहिए और किसी के प्रति नकारात्मक विचार नहीं रखने चाहिए।

बाबूजी की इच्छा-शक्ति बहुत मजबूत थी। वे जब भी बीमार पड़ते थे तो अपनी सकारात्मक सोच के कारण उससे बाहर निकल आते थे। लगभग चार महीने पूर्व जब वे वेंटिलेटर पर थे और मैं उनसे मिलने गई तो उनकी आँखों की चमक ने सबकुछ कह दिया था कि वे स्वस्थ होकर शीघ्र घर आ जाएँगे और वे पाँच दिन बाद मुसकराते हुए घर लौट आए थे।

बाबूजी ने एक सात्त्विक एवं परिपूर्ण जीवन जिया। वे कभी यह नहीं कहते थे कि मुझे अमुक चीज पसंद है, आज यह बना दो। उन्हें जो भी परोसा जाता, वे उसे आदरपूर्वक ग्रहण कर लेते थे। वे बहुत कम खाना खाते थे। वे खाना खाकर जब थाली वापस करते तो ऐसा लगता, जैसे धुली हुई हो। अन्न का एक कण भी व्यर्थ नहीं करते थे। बाबूजी बहुत ही परफेक्ट इनसान थे। एक साधारण सा उदाहरण यह है कि वे अखबार पढ़कर उसे इस तरीके से तह करते थे, जैसे किसी ने अभी अखबार पढ़ा ही न हो।

बाबूजी किसी संत के जैसे थे, वे अपनी जेब में एक भी रुपया नहीं रखते थे। वे कहते थे कि मेरी गाड़ी कृष्ण कन्हैया चला रहे हैं। मुझे किसी चीज की आवश्यकता नहीं। उन्होंने अपने लिए कभी भी दो जोड़ी कपड़ों से अधिक नहीं बनवाए।

बाबूजी व्यक्तित्व निर्माण के कुशल शिल्पी थे। कोई व्यक्ति कितना भी नौसिखिया हो, वे उसे माँजकर व तराशकर हीरा बना देते में यकीन करते थे। जो भी उनके संपर्क में आता, वह उनसे सदैव के लिए जुड़ जाता था। वे सबको साथ लेकर चलते थे और किसी के साथ भेदभाव नहीं करते थे। लोगों के गुणों पर उनका ध्यान रहता था। वे हमेशा कहते थे कि 'अभिमान' से दूर रहो।

पिछले कुछ समय से वे अकसर कहते थे कि मैंने अपना बिस्तरा बाँध लिया है। लगता है, उन्हें अपनी मृत्यु का आभास हो चुका था। जैसी प्रभु इच्छा!

संयम और प्रेरणा के संसार थे बाबूजी,
हम सबके आधार थे बाबूजी,
हमेशा सबका स्वाभिमान थे बाबूजी,
अब चमकता तारा हो गए हमारे बाबूजी।

बाबूजी हमारे पूरे प्रभात प्रकाशन परिवार के स्नेह, प्रेम और ज्ञान के प्रेरणास्रोत थे, जिनकी उपस्थिति से यह परिवार इंद्रधनुषी धागे में बँधा हुआ है और आगे भी उन्हीं के बनाए मार्ग पर चलता रहेगा।

वे एक सच्चे कर्मयोगी थे। इस संसार से विदा होने से एक दिन पहले तक वे कार्यालय गए और शाम तक वहाँ बैठकर अपने दायित्वों का निर्वाह किया।

एक सच्चे कर्मयोगी व तपस्वी बाबूजी, जिन्होंने प्रचंड मार्तंड की भाँति हजारों लोगों के जीवन को प्रकाशित व मार्गदर्शित किया, उनके संघर्षपूर्ण जीवन से यदि हम दशांश भी सीख पाएँ तो अपने जीवन को सार्थक बना सकते हैं।

hindi.charu@gmail.com

कविता

सिर में सुनामी

• संजीव ठाकुर

तुम ही करो कुछ

आँखों से निकल रहा है धुआँ
नाक से पानी
ओठ चुप हैं
सिर में सुनामी
छाती की धड़कन
बढ़ गई है बेतहाशा
घबड़ाहट, बेचैनी…
पैरों में झुनझुनाहट
कंपन हाथों में
नसें पड़ गईं ढीली
निशाचर खड़े हैं चारों ओर
अलग-अलग रंगों के झंडे लिये
अलग-अलग तरह के हथियार
मित्र बजा रहे ताली
हिजड़ों की तरह
भजन गा रहे हैं
निशाचरों की भक्ति में
सुंदरियाँ निहाल हो रही हैं!
अखाड़ा बन गया है अखबार
धोबियापाट खा गया गामा पहलवान
फेसबुक के टाइम लाइन पर
कच्छे का विज्ञापन कर रहा है।
नजर जिधर भी दौड़ाओ
नजर आते हैं सियार
आवाज जितनी भी लगाओ
सुनते नहीं सर्पराज।

सुपरिचित कवि-कथाकार तथा बाल साहित्यकार। संजीव ठाकुर की प्रमुख कृतियाँ हैं–'नौटंकी जा रही है', 'फ्रीलांस जिंदगी', 'अब आप अली अनवर से…' (कहानी-संग्रह), 'झौआ बैहार' (लघु उपन्यास) तथा 'इस साज पर गाया नहीं जाता' (कविता-संग्रह)। 'बड़ों का बचपन' तथा 'चुन्नू-गुन्नू का स्कूल' बाल साहित्य की चर्चित कृतियाँ हैं।

कोयल मतवाली होकर गा रही है
'दरबारी' राग!
गायें चुपचाप दूध रे रही हैं
चीतों ने खोल रखी हैं दुकानें
शिकार सिखाने की
भालू डमरू बजा रहे हैं
कर दिया है बंद
नापितों ने
नाखून काटने का काम
दाँत उखाड़ने की बजाय
दाँत के डॉक्टर
दाँतों में धार देने का काम
करने लगे हैं।
घोंसलों से निकाल-निकालकर
मारी जा रही हैं गौरैयाँ
कमंडलधारी
गिरा रहे वीर्य
भक्तों की झोली में
देवता देसी पीकर सो गए हैं
आकाश!
तुम ही करो कुछ
धरती तो हो गई है बेदम
पूरी तरह
हिलने की ताकत भी खो बैठी है।

अकेला

गंगा के किनारे
ऊँचे उठे टीले पर
टेढ़ा खड़ा वह पेड़
अकेला…
समा लिया
गंगा ने उसे अपने आगोश में
साल दो साल बाद
उतर आया है
वह पेड़
मेरे अंदर
कहाँ हो गंगा?

एस.एफ.-२२, सिद्धि विनायक अपार्टमेंट,
अभयखंड-३, इंदिरापुरम्,
गाजियाबाद-२०१०१०

आओ, चलें तीर्थराज चित्तौड़

● **प्रेमपाल शर्मा**

भारतभूमि महान् है, जो अध्यात्म के साथ-साथ इतिहास की गौरवशाली धरोहरें सँजोए हुए है। भारत की वास्तुकला, शिल्पकला एवं स्थापत्य कला अपने आप में बेमिसाल है। अपने बाल्यकाल में जब मैं कक्षा चार का विद्यार्थी था, तब मैंने कविवर श्यामनारायण पांडेय की देशभक्ति से परिपूर्ण एक कविता 'तीर्थराज चित्तौड़' पढ़ी थी। तब बालमन में बड़ी जिज्ञासा थी कि वह तीर्थराज कैसा होगा? क्या मैं कभी उसके दर्शन कर पाऊँगा? सौभाग्य से हिंदी दिवस के अवसर पर देशाभिमानियों के तीर्थ चित्तौड़ को देखने का कार्यक्रम बना तो १२ सितंबर, २०१९ को मैं और मेरे अनुजवत् मित्र भाई जीत शर्मा सायंकाल सराय रोहिल्ला, दिल्ली स्टेशन से चेतक एक्सप्रेस में सवार हो गए। प्रात: सवा पाँच बजे बिना किसी विलंब के गाड़ी चित्तौड़गढ़ स्टेशन पर रुकी तो हम भी नीचे उतर गए। देखते क्या हैं कि झमाझम बारिश हो रही है। उधर दिल्ली में प्रचंड गरमी और उमस से जीना मुहाल हो रहा है; इधर चित्तौड़गढ़ और इस पूरे इलाके में रिमझिम बारिश हो रही है, गरमी का नामोनिशान नहीं है, बल्कि ठंडी तेज हवा चल रही है, मौसम ऐसा सुहावना है कि शिमला को ठेंगा दिखा रहा है। शौच आदि से निवृत्त हो हम लोग एक-एक कर बड़े आराम से नहाए-धोए। बारिश अब भी हो रही है। आखिर एक घंटा हमने प्लेटफॉर्म पर टहलते और स्टेशन की दीवारों पर की गई चित्रकारी को देखते हुए बिताया। यहाँ पर मेवाड़ के रणबाँकुरों के चित्र सिलसिलेवार बड़े कलात्मक ढंग से चित्रित किए गए हैं। चित्रकारी को देखकर ही यह पता चल जा रहा है कि यह वीर प्रसूता भूमि चित्तौड़गढ़ है।

घूम-फिरकर समय बिताते हुए बारिश के रुकने का बेसब्री से इंतजार कर रहे हैं कि वर्षा रानी एक छोटा सा ब्रेक लें तो स्टेशन से बाहर निकलकर कुछ चाय-नाश्ता कर लें। वैसे वर्षा का वेग अब कुछ कम हो चला है। इसी समय एक पका हुआ नवयुवक हमें अपना विजिटिंग कार्ड दिखाते हुए बोला—सर, मैं आपको चित्तौड़गढ़ का किला घुमा सकता हूँ। पूछने पर उसने नाम बताया केशव राज। बातचीत से साँवले रंग का केशव हमें बड़ा स्पष्टवादी और व्यावहारिक लगा। उसने हमें किराया ५५० रुपए बताया। आखिरकार जीत भाई ने उसे ५०० रुपए पर राजी कर लिया।

सुपरिचित लेखक-संपादक। बुलंदशहर (उ.प्र.) के मीरपुर-जरारा गाँव में जन्म। देसी चिकित्सा लेखन में विशेष दक्षता। 'जीवनोपयोगी जड़ी-बूटियाँ', 'स्वास्थ्य के रखवाले', 'सचित्र जीवनोपयोगी पेड़-पौधे', 'घर का डॉक्टर', 'स्वस्थ कैसे रहें?' तथा 'शुद्ध अन्न, स्वस्थ तन' कृतियाँ चर्चित। 'साहित्य मंडल' नाथद्वारा द्वारा 'संपादक-रत्न' की मानद उपाधि। संप्रति 'सवेरा न्यूज' (साप्ताहिक) का संपादन एवं आयुर्वेद पर स्वतंत्र लेखन।

अब साढ़े आठ-नौ तो बज ही गए होंगे। रिमझिम वर्षा लगातार हो रही है। स्टेशन के बाहर केशव के साथ पहले तो हमने मिर्च-वड़ा का नाश्ता किया—बेहद सस्ता, दस रुपए प्लेट। खाते हुए स्वाद तो बहुत आया, परंतु नाश्ता खत्म करते-करते कान से धुआँ निकलने लगा। चालक-कम-गाइड केशव यहीं का रहनेवाला है, उसे यहाँ की बहुत अच्छी जानकारी है। वैसे उसने कहा भी कि आप चाहें तो गाइड कर लें। लेकिन हमने केशव पर भरोसा किया। विभिन्न मोड़ों से गुजरकर ऑटो सड़क पर दौड़ा जा रहा है।

किले से पहले एक नदी के पुल के बीचोबीच केशव ने ऑटो रोक दिया और बोला, 'सर, यह गंभीरी नदी है। यहाँ से ठीक सामने जो लंबा पहाड़ी क्षेत्र आप देख रहे हैं, यह तीन भागों में बँटा है। बाईं ओर के हिस्से में आदिवासियों के गाँव हैं, जो सदियों से यहाँ रह रहे हैं। बीच में किले का मुख्य भाग, यानी महल, मंदिर, छावनी, जलाशय आदि हैं तथा अंत में किले के बड़े क्षेत्र को वन क्षेत्र घोषित कर दिया गया है। इसमें शरीफे के पेड़ बड़ी संख्या में हैं। इसमें प्रवेश निषिद्ध है। वैसे पर्यटकों के लिए बीच का भाग ही दर्शनीय है। इसमें मुख्य-मुख्य ८-९ पॉइंट हैं, वे सभी मैं आपको दिखाऊँगा और जितनी मुझे जानकारी है, उनके बारे में बताऊँगा भी। चूँकि अब हम किले की ओर बढ़ रहे हैं तो इस दुर्ग के इतिहास से आपको परिचित कराए देते हैं।

चित्तौड़ भारत का महान् सांस्कृतिक तीर्थ है, यहाँ का कण-कण मातृभूमि के गौरव तथा हिंदुत्व की रक्षा के लिए बहाए गए वीरों के रक्त

से सिंचित है। इसका प्राचीन नाम 'चित्रकूट' है। मेवाड़ की राजधानी होने का गौरव प्राप्त करने के साथ-साथ ७वीं से १६वीं शताब्दी के मध्य तक राजपूत सत्ता का यह मुख्य केंद्र रहा। इस दुर्ग का निर्माण पहले-पहल मोरी वंश के राजा चित्रांगद ने सातवीं सदी में कराया था। महाराणा कुंभा ने अपने शासनकाल में इसके अधिकांश भवनों और मंदिरों का जीर्णोद्धार कराया। वैसे चित्तौड़ कई राजवंशों के अधिकार में रहा, जिसमें मोरी या स्थानीय मौर्य (७-८वीं सदी), प्रतिहार (९वीं सदी), परमार (१०-११वीं सदी), सोलंकी (१२वीं सदी) तथा गुहिलोत या सिसोदिया वंश प्रमुख रहे हैं। यह दुर्ग समुद्र तल से १३३८ फीट तथा जमीन से ५०० फीट ऊँची पहाड़ी पर ह्वेल मछली के आकार में बना है। यह आठ कि.मी. भूभाग पर फैला है। अपने दीर्घ इतिहास काल में यह दुर्ग आक्रमणकारियों से तीन बार आक्रांत हुआ—सन् १३०३ में अलाउद्दीन खिलजी ने आक्रमण किया; १५३५ ई. में गुजरात के सुल्तान बहादुर शाह ने और १५६७ में अकबर के समय में, और तीनों बार इसकी परिणति जौहर के रूप में हुई।

इस विशाल दुर्ग के अंदर कुंभा महल, पद्मिनी महल, रतनसिंह महल, विजय स्तंभ, कीर्ति स्तंभ, कालिका माता मंदिर, कुंभश्याम मंदिर, मीराबाई मंदिर, समिद्धेश्वर मंदिर, सतवीस देवरी, अद्भुतनाथ, क्षेमंकरी, पार्श्वनाथ, शृंगार-चौरी, जटाशंकर आदि मंदिर एवं जयमल-फत्ता तथा भामाशाह की हवेली, गौमुख कुंड, आठ विशाल जलाशय, छतरियाँ, प्रवेशद्वार (गेट) आदि यहाँ के महत्त्वपूर्ण स्मारक हैं, जो राजपूत स्थापत्य कला के श्रेष्ठ उदाहरण हैं। इस दुर्ग के सात विशाल दरवाजे बड़े प्रसिद्ध हैं—पद्म पोल, भैरव पोल, हनुमान पोल, गणेश पोल, जोठला पोल, लक्ष्मण पोल और राम पोल। लेकिन राम पोल, भैरव पोल और हनुमान पोल का निर्माण बाद में महाराणा कुंभा ने कराया था। यह भी कहा जाता है कि सोलंकी राजवंश की राजकुमारी से विवाह के उपरांत बप्पा रावल को यह दुर्ग दहेज में मिला था।

अब हमारा ऑटो दोनों ओर पत्थरों की मोटी दीवार से घिरे ऊँचे होते जाते पहाड़ी रास्ते पर प्रथम द्वार पाडल पोल पर आ पहुँचा है। यहीं पर रणबाँकुरे गोरा-बादल की समाधियाँ हैं। इससे थोड़ा आगे पल्ला के राठौर की समाधि है। आगे अब हम हनुमान पोल पार कर रहे हैं। यहाँ पर जयमल और फत्ता की समाधियाँ हैं। इससे आगे चलकर केशव ने ऑटो रोक दिया। बोला—'सर, अब हम जमीन से ५८० फीट ऊपर हैं। आपको बता दूँ (उसने ऊपर से नीचे उँगली का इशारा करके) कि यहाँ नीचे देश की नामी-गिरामी ६-७ बड़ी सीमेंट कंपनियों के प्लांट हैं। यहाँ सीमेंट उद्योग खूब फला-फूला है। देश का एक सैन्य स्कूल यहाँ भी है। अब यहाँ से किला प्रारंभ हो रहा है। आप पहले टिकट ले लीजिए।' जीत भाई भीगते हुए ही दो टिकट ले आए। भारतीयों के लिए टिकट ४० रुपए है और विदेशियों के लिए ६०० रुपए। मेरे हिसाब से यह विदेशी पर्यटकों के साथ ज्यादती है। भीगते हुए ही यहाँ से हमने नीचे की बसावट के फोटो खींचे।

केशव ने ऑटो आगे बढ़ाया और बाईं ओर मुड़ते ही थोड़ा चलकर ऑटो रोक दिया और बोला—'सर, सड़क के उस पार सामने जो खँडहर दिख रहे हैं, यह महाराणा कुंभा का महल है। कभी इसकी बड़ी शान हुआ करती थी। इसी महल में महाराणा उदय का जन्म हुआ और यहीं पर स्वामिभक्ति की मिसाल पन्ना धाय ने बालक उदयसिंह की रक्षा के लिए अपने लाड़ले पुत्र की बनवीर के हाथों हत्या होते हुए देखी। भक्त मीराबाई को कृष्णभक्ति से रोकने के लिए जितने भी प्रतिबंध लगे, विष दिया गया, वह सब इसी महल में हुआ।' हम दोनों सड़क पार कर ऊपर की ओर चढ़ते रास्ते पर महल के खँडहरों के ऊपर पहुँच गए हैं। इन खँडहरों में बिखरे राजपूती स्थापत्य से पता चल रहा है कि यह महल कितना भव्य रहा होगा। अपने पूर्ववर्तियों के बाद राणा कुंभा ने इस महल में कई परिवर्तन और नए निर्माण कराए थे। महल में प्रवेश हेतु पूरब दिशा से बड़ी पोल एवं त्रिपोलिया दरवाजे से होकर दक्षिण में स्थित खुले प्रांगण से होते हुए दरीखाने तक पहुँचा जा सकता था। महल के मुख्य परिसर में स्थित सूरज गोखरा, जनाना महल, कांवर पड़े का महल एवं अन्य आवासीय भवनों में प्रवेश हेतु दरीखाने से होकर छोटा प्रवेशद्वार था। महल की दीवारें सुदृढ़ पत्थरों से बनी हैं, जिसकी बाह्य दीवार को अनेक प्रकार के अलंकरणों से सुसज्जित किया गया है, पर अब सब टूट-फूट गया है, टूट-फूट रहा है, जहाँ-तहाँ घास जमी हुई है। कई छतरियाँ तथा धनुषाकार दरवाजे अभी सुरक्षित हैं। बारिश में भी यहाँ आए पर्यटक फोटो खींच रहे हैं, सेल्फी ले रहे हैं। हमने भी फोटो खींचे।

इससे थोड़ा आगे ही नवलखा भंडार है, जो एक अर्धवृत्ताकार अपूर्ण बुर्ज है। ऐसा कहा जाता है कि यहाँ नौ लाख रुपयों का खजाना रहता था, जिससे इसका नाम नौलखा भंडार पड़ गया। इसी परिसर में खँडहर रूप में दानवीर भामा शाह की हवेली है, जिसने महाराणा प्रताप को अपना समस्त धन समर्पित कर दिया था। भामा शाह की हवेली के पास ही आल्हा काबरा की हवेली है, जो महाराणा के दीवान थे। आगे राणा सांगा का देवरा, तुलजा भवानी का मंदिर तथा बनवीर की दीवार भग्न रूप में हैं। चलते-चलते ऑटो में इन्हें दिखाते हुए केशव ने आगे चलकर तिराहे के पास स्थित पार्किंग में ऑटो खड़ा कर दिया और बोला—'सर, सामने मीराबाई और कुंभश्याम मंदिर है। मीराबाई मेड़ता के नरेश रतन सिंहजी की पुत्री थीं। उनका विवाह चित्तौड़गढ़ के राणा सांगा के पुत्र भोजराज के साथ हुआ था। मीरा भगवान् कृष्ण को ही अपना पति मानती थीं। इसके पीछे भी एक कथा प्रचलित है कि मीरा जब अबोध बालिका थीं, तब उनकी हवेली के नीचे से एक बारात जा रही थी और दूल्हा शान से घोड़ी पर बैठा था। बाजों की आवाज सुनकर जैसा कि सभी जन बारात देखने के लिए अपने घरों की खिड़कियों, छतों और छज्जों-गवाक्षों पर जुट जाते हैं। तो उस दूल्हे की शान-शौकत देखकर बालिका मीरा ने पूछा—माँ, यह कौन है? माँ ने कहा, यह दूल्हा है; हर लड़की का दूल्हा होता है। बालिका मीरा ने फिर से पूछा—मेरा दूल्हा कहाँ है? माँ ने बच्ची का मन रखते हुए हँसकर पूजा-स्थल में रखी कृष्ण की मूर्ति की ओर इशारा करते हुए कहा—तुम्हारा दूल्हा वो है।

'बस उसी समय से मीरा के बालमन ने कृष्ण को अपना दूल्हा मान

लिया और हमेशा उसका स्मरण करने लगी। आगे चलकर तो मीरा कृष्ण के प्रेम में दीवानी हो गई। विवाह के कुछ समय बाद ही राणा भोजराज दिवंगत हो गए। पति की मृत्यु के बाद उन्हें पति के साथ सती करने का प्रयास किया गया, किंतु मीरा इसके लिए तैयार न हुईं। वे संसार और गृहस्थ की ओर से विरक्त हो गईं तथा साधु-संतों की संगति में गिरधर गोपाल का कीर्तन करते हुए अपना समय व्यतीत करने लगीं। पति के परलोकगामी होने के बाद तो मीरा की भक्ति दिनोदिन बढ़ती चली गई। मीरा मंदिरों में जाकर कृष्णभक्तों के बीच गिरधर की मूर्ति के सामने नृत्य करती रहतीं। मीरा का इस तरह कृष्णभक्ति में नाचना-गाना राजपरिवार को अच्छा नहीं लगता था, सो राणा ने मीरा को विष देकर मारने की कोशिश की; उन्हें प्रताड़ित किया; उन पर पाबंदियाँ लगाईं। राणा परिवार के व्यवहार से दुखी होकर मीरा द्वारका और वृंदावन चली गईं। वहाँ उन्हें भगवान् की भक्तिन के रूप में खूब प्यार और ख्याति मिली। कहा जाता है कि १५४६ ई. में द्वारका में मीरा अपने इष्ट भगवान् कृष्ण की मूर्ति (विग्रह) में समा गईं।'

अब हम दोनों मित्र बरसाती ओढ़े सड़क पार कर ७-८ फुट ऊँचे चबूतरे पर बने इन मंदिरों की सीढ़ियों पर हैं। चप्पल-जूते यहीं उतार दिए हैं। ठीक सामने मीराबाई का मंदिर है। इसके बरामदे में आगे बढ़ते हुए हम मंदिर के गर्भगृह (निजभाग) में मीरा एवं उनके आराध्य मुरली मनोहर श्रीकृष्ण की सुंदर मूर्ति है। मैं भक्त और भगवान् को दंडवत् प्रणाम करता हूँ। मंदिर में नक्काशीदार खंभे तथा दीवारें पत्थरों को तराशकर बनाई गई हैं। यहाँ दाईं ओर एक अजीब तरह का वाद्ययंत्र रखा है। जब यहाँ आरती होती है तो इसमें दो नगाड़े, दो घंटे और दो गोल घंटे (पीतल के) बिजली की सहायता से एक साथ बजते हैं। आरती के समय यहाँ का वातावरण जरूर अलौकिक हो उठता होगा। इतिहासकारों का ऐसा कहना है कि पहले यह मंदिर कुंभश्याम मंदिर था, बाद में कुंभस्वामी की नई प्रतिमा अलग मंदिर में स्थापित हो जाने के बाद उसे कुंभश्याम मंदिर कहा जाने लगा और यह मीराबाई के मंदिर के रूप में ख्यात हो गया।

मीराबाई मंदिर परिसर में, चित्तौड़गढ़

इस मंदिर के सामने ही एक छोटी सी छतरी बनी है। इसी के नीचे मीराबाई के गुरु स्वामी रैदास के चरण-चिह्न स्थापित हैं। सफेद पत्थर पर अंकित ये चरण बड़े मनोहारी लग रहे हैं। हमने संत शिरोमणि के सम्मान में मस्तक नवाया। इसी परिसर से थोड़ा हटकर बाईं ओर भव्य कुंभश्याम या कुंभस्वामी मंदिर है। महाराणा कुंभा (१४३३-१४६८) ने भगवान् विष्णु के वराह अवतार को समर्पित इस भव्य मंदिर का पुनर्निर्माण कराया। ऊँचे चबूतरे पर बना यह मंदिर क्षैतिज योजना में गर्भगृह, बरामदा, मंडप, मुख्य मंडप एवं प्रदक्षिणा पथ तथा अनेक कलात्मक खंभों के ऊपर खड़ा है। मंदिर का गर्भगृह तो आज भी अपने मूल रूप में है, इसके बाह्य भाग में दीवारों पर देवी-देवताओं का अंकन है। गर्भगृह तालशिखर वाला है तथा मंडप की छत पिरामिड के आकार की है, जो बीस विशाल स्तंभों पर स्थित है। मंदिर के गर्भगृह के पार्श्व में मूल ताख पर वराह भगवान् की प्रतिमा प्रतिष्ठापित है। सामने चार स्तंभयुक्त मंडप में गरुड़ की प्रतिमा है। नागर शैली में बने गगनचुंबी शिखर तथा तत्कालीन मेवाड़ी स्थापत्य शैली को अंकित करती दृश्यावलियाँ इसकी विशेषताएँ हैं। मुसलिम आक्रांताओं द्वारा वराह भगवान् की मूर्ति खंडित कर दिए जाने पर यहाँ कुंभास्वामी की मूर्ति स्थापित कर दी गई, अत: तब से इसे कुंभास्वामी मंदिर कहा जाता है। इस पूरे परिसर में मजबूत बड़े-बड़े पत्थर बिछे हुए हैं। मंदिर की प्रदक्षिणा कर हम केशव के पास लौट आए।

केशव ने ऑटो अब बाईं ओर ढलानवाली सड़क पर दौड़ा दिया है। इस सड़क पर वर्षा का पानी नदी के वेग की तरह बह रहा है। इसी पर आगे जाकर ऑटो ठहर गया। यहाँ शरीफे के पेड़ बहुतायत में हैं और फलों से लदे हैं। यहीं पर रेहड़ी पर एक बहन चाय बना रही है। हल्के-हल्के भीग गए थे, ठंड भी लग रही थी, सो उस बहन से चाय बनवाई। केशव भाई ने बताया कि वह चाय नहीं पीता है। चाय बेहद स्वादिस्ट और कमाल की है। संभवत: घर में ही ऐसी चाय कभी-कभार पीने को मिलती है। अच्छी चाय के लिए बहन को धन्यवाद दिया। हमारे ठीक सामने विजय स्तंभ सीना ताने खड़ा है। इसमें अंदर जाने से पहले आपको इसके बारे में कुछ बताए देता हूँ।

मालवा के सुल्तान महमूद शाह खिलजी पर शानदार विजय की खुशी में यादगार के रूप में सन् १४४८ में महाराणा कुंभकर्ण यानी कुंभा ने इसका निर्माण कराया। इसकी ऊँचाई १२२ फीट तथा ऊपर तक जाने के लिए इसमें १५७ सीढ़ियाँ हैं। यह नौ मंजिला इमारत किले के नौ गाँवों को ध्यान में रखकर बनवाई गई। ऐसा बताया जाता है कि उस समय इसपर लगभग ९० लाख रुपए खर्च हुए। इसे 'जय स्तंभ' भी कहते हैं। वास्तुकला की दृष्टि से यह बेमिसाल है। प्रत्येक मंजिल में चारों ओर झरोखे होने से भीतरी भाग में पर्याप्त प्रकाश रहता है। इसमें विष्णु के विभिन्न रूपों, जैसे जनार्दन, अनंत आदि, उनके अवतारों तथा ब्रह्मा, शिव, विभिन्न देवी-देवताओं, अर्धनारीश्वर, उमामहेश्वर, लक्ष्मीनारायण, ब्रह्मा-सावित्री, हरिहर पितामह, ऋतु, आयुध आदि हैं। इनके अलावा दिक्पाल, रामायण तथा महाभारत के पात्रों की सैकड़ों मूर्तियाँ अंकित हैं। ऊपर-नीचे इनके नाम भी खुदे हुए हैं। ऐसे भी कुछ चित्र हैं, जिनमें देश की भौगोलिक विचित्रताओं को उत्कीर्ण किया गया है। सबसे ऊपरी मंजिल से संपूर्ण दुर्ग तथा निकटवर्ती क्षेत्रों का विहंगम दृश्य देखा जा सकता है।

बिजली गिरने से एक बार इसके ऊपर की छतरी टूट गई थी, जिसकी महाराणा स्वरूप सिंह ने मरम्मत कराई थी। इसके प्रवेशद्वार पर एक पुरुष और महिला गार्ड तैनात हैं। हम अंदर जाने लगे तो उन्होंने पेन-पेंसिल, गुटका, बीड़ी-सिगरेट बाहर रखने को कहा। हमारे पास

केवल पेन ही था, जैसे ही हम अंदर जाने लगे, वैसे ही तेज हवा के साथ मूसलधार बारिश शुरू हो गई। झरोखों-गवाक्षों से पानी बौछारें आने से सीढ़ियाँ गीली होकर फिसलने वाली हो गईं। सिर नीचे करके दोनों हाथों से दीवारों को पकड़ते हुए हम ऊपर चढ़ने लगे। वर्षा के कारण घना अँधेरा छा गया है। जीत भाई आगे हैं, सो उन्होंने मोबाइल की टॉर्च जला ली है। वर्षा की मार से बचने के लिए लंगूर, जो यहाँ बड़ी संख्या में हैं, झरोखों से अंदर आकर बैठ गए हैं। पर्यटकों से ये कुछ नहीं कहते। तीसरी-चौथी मंजिल पर चमगादड़ों ने भी बसेरा बना लिया है, उनके मल की बदबू आ रही है।

हम चौथी मंजिल से ऊपर बढ़ रहे थे, तभी दो-तीन स्त्री-पुरुष नीचे उतर रहे हैं। हमें थोड़ा रुकना पड़ा, क्योंकि एक बार में एक ही व्यक्ति चढ़ या उतर सकता है। फुहारों के साथ हवा इतनी बरफीली है कि मेरी तो कँपकँपी छूट गई है। कुछ लोग गुटका आदि छिपाकर ऊपर ले जाते हैं। थूक-थूक कर दीवारें तथा झरोखे गंदे कर दिए हैं। जहाँ-तहाँ पेन और कील से अपने नाम आदि भी उकेर दिए हैं। इससे पता चलता है कि हम भारतवासी अपनी धरोहरों के प्रति कितने निर्मम और खुरापाती हैं। हम बेखटके धीरे-धीरे ऊपर की ओर सीढ़ियाँ चढ़ते चले जा रहे हैं और बाहर विजय स्तंभ की दीवारें तूफानी बारिश की मार निडर-अविचलित झेल रही हैं। नौवीं मंजिल पर अब हम छतरी के नीचे पहुँच गए हैं। जीत भाई ने यहाँ मेरे-अपने फोटो उतारे। घनघोर वर्षा की वजह से बाहर का कुछ दिखाई नहीं पड़ रहा है। झरोखों से वर्षा की फुहारें आर-पार जा रही हैं। इनसे बचने के लिए मैं कोने में खड़ा हो गया हूँ।

अब हम नीचे की ओर लौट पड़े। इसकी सीढ़ियाँ तारतम्य में नहीं हैं। किसी मंजिल में एकदम बीचोबीच हैं तो किसी में बाहर। सीढ़ियाँ छोटी-छोटी हैं, अंत: चढ़ते-उतरते हुए बेहद सावधानी बरतनी पड़ती है। उतरते समय जीतभाई थोड़ा तेज चले तो फिसल गए और कुहनी को जख्मी कर बैठे। इसलिए तीर्थयात्री बड़े आराम से धीरे-धीरे सीढ़ियाँ चढ़े-उतरें। नीचे आकर हमने गार्ड को धन्यवाद कर कहा कि सबको अच्छी तरह तलाशी लेने के बाद ही ऊपर जाने दिया करें। अब वर्षा का प्रचंड वेग मंद पड़ गया है। देख रहा हूँ कि जय-स्तंभ की बाहरी दीवारों पर उकेरी ज्यादातर मूर्तियाँ अक्रांताओं ने अंग-भंग कर दी हैं। इसके दाईं ओर थोड़ा नीचे चलकर एक मैदानी हिस्सा है, जो चारों ओर से छोटी सी दीवार से घिरा है। यह 'जौहर स्थल' है। इसमें प्रवेश के लिए पूरब तथा उत्तर में दो द्वार हैं। यहाँ कब-कब और क्यों जौहर हुआ, वह मैं आपको बताता हूँ।

पहला जौहर सन् १३०३ में अलाउद्दीन खिलजी के चित्तौड़ पर आक्रमण के समय हुआ, जिसमें रानी पद्मिनी तथा अन्य हिंदू वीरांगनाओं ने अपने कुल के सम्मान तथा सतीत्व की रक्षा के लिए अग्नि में स्नान किया। रानी पद्मिनी का मूल नाम था पद्मावती। वे सिंहल द्वीप के राजा गंधर्व सेन की पुत्री थीं; उनकी माता का नाम चंपावती था। एक चित्तौड़ के मशहूर चित्रकार चेतन राघव ने सिंहल द्वीप से लौटकर राणा रतन सिंह को पद्मावती का सुंदर चित्र बनाकर दिया। उस पर मोहित होकर राजा रतन सिंह सिंहल द्वीप गए और वहाँ स्वयंवर में विजयी होकर उसे अपनी रानी बनाकर ले आए। इस प्रकार पद्मावती चित्तौड़ की महारानी बन गईं। पद्मावती सुंदर तो थी ही, पर गजब की बुद्धिमान और वीरांगना भी थीं। पद्मिनी की सुंदरता की ख्याति अलाउद्दीन खिलजी ने भी सुनी। वह रानी पद्मिनी को किसी भी तरह अपने हरम में लाना चाहता था। उसने एक बड़ी सेना लेकर चित्तौड़ का घेरा डाल दिया, फिर धमकी भरा पत्र राणा रतन सिंह के पास भेजा, पर राणा ने उसे ठुकरा दिया।

अब खिलजी धोखे पर उतर आया। उसने राणा रतनसिंह से दूत के द्वारा कहलवाया कि वह पद्मिनी को केवल एक बार देखना चाहता है। खून-खराबा रोकने की नीयत से रतनसिंह ने उसकी बात मान ली। जलमहल के सामने एक दर्पण में रानी पद्मिनी का प्रतिबिंब उसे दिखाया गया। वापसी पर रतनसिंह उसे छोड़ने किले के बाहरी द्वार तक आए तो इसी समय खिलजी के सैनिकों ने धोखे से रतनसिंह को बंदी बना लिया और अपने शिविर में ले गए। फिर यह शर्त रखी कि पद्मिनी यदि अलाउद्दीन के पास आ जाए तो रतनसिंह को छोड़ दिया जाएगा। इस तरह की शर्त और यह समाचार पाते ही चित्तौड़ में हा-हाकार मच गया; परंतु वीरांगना रानी ने हिम्मत नहीं हारी। रानी पद्मिनी ने काँटे से काँटा निकालने की युक्ति से काम लिया। खिलजी के पास संदेश भिजवाया कि पद्मिनी महारानी हैं, अत: वे अकेली नहीं आएँगी। उनके साथ पालकियों में उनकी आठ सौ सखियाँ और सेविकाएँ भी आएँगी।

यह सुनकर अलाउद्दीन और उसके सरदार बहुत प्रसन्न हुए। उन्हें पद्मिनी के साथ आठ सौ हिंदू युवतियाँ अपने आप ही मिल रही थीं; पर उधर पालकियों में रानी पद्मिनी के बदले चुनिंदा हिंदू लड़ाके बैठाए गए। हर पालकी को चार कहारों ने उठा रखा था, वे भी सैनिक ही थे। पहली पालकी के खिलजी के शिविर में पहुँचते ही रतनसिंह को उसमें बैठाकर किले में भेज दिया गया और फिर सब योद्धा शस्त्र निकालकर दुश्मन पर टूट पड़े। कुछ ही देर में शत्रु शिविर में हजारों सैनिकों की लाशें बिछ गईं। इससे बौखलाकर अलाउद्दीन खिलजी ने चित्तौड़ पर हमला बोल दिया। इस भयानक युद्ध में राणा रतनसिंह और हजारों राजपूत वीरों के साथ गोरा-बादल भी शहीद हो गए। रानी पद्मिनी ने देखा कि अब चित्तौड़ की सेना के जीतने की आशा नहीं है तो किले में उपस्थित सभी हिंदू नारियों के साथ 'जय हर, जय हर' का उद्घोष करते हुए सबसे पहले रानी पद्मिनी ने अग्नि में छलाँग लगाई और फिर सभी हिंदू वीरांगनाओं ने अग्नि में प्रवेश किया। युद्ध में जीतकर भी अलाउद्दीन खिलजी को किले में जलती हुई चिताओं के अलावा कुछ हाथ न लगा। यह स्थान अब समाधीश्वर के नाम से प्रसिद्ध है।

दूसरी बार जौहर सन् १५३५ में हुआ, जब गुजरात के सुल्तान बहादुर शाह ने मेवाड़ राज्य पर आक्रमण किया। इस अवसर पर रानी कर्णावती ने हुमायूँ को राखी भेजकर उसे अपना राखीबंद भाई बनाकर मदद माँगी थी, लेकिन सेना सहित उसके पहुँचने से पूर्व ही सबकुछ स्वाहा हो गया। तीसरा आक्रमण सन् १५६७ में अकबर के समय में हुआ। चित्तौड़ के निकट पिडौली गाँव के पास अकबर और मेवाड़ की

सेनाएँ भिड़ीं। इस युद्ध में मेवाड़ की रक्षा करते हुए वीर जयमल और फत्ता ने अपने प्राणों का बलिदान किया। इसकी परिणति भी जौहर के रूप में हुई। यहाँ की भूमि को नमन करते हुए मन गर्व मिश्रित पीड़ा से कसक उठा। इन वीरांगनाओं के सम्मान में नतमस्तक हो हम आगे बढ़े।

जय-स्तंभ के बाईं ओर उत्तर दिशा में जटाशंकर महादेव का मंदिर है। इसके बाहरी हिस्से तथा सभा मंडप की छत पर उत्कीर्ण देवी-देवताओं की तथा अन्य मूर्तियाँ दर्शनीय हैं। ये काफी हद तक खंडित होने से बच गई हैं। यहाँ से अब हम लोग नीचे की ओर निकले। वर्षा का सारा पानी नदी की तरह इसी ओर बहकर जा रहा है। गौमुख कुंड जाने से पूर्व इसके उत्तरी छोर पर स्थित समद्धिश्वर मंदिर में दर्शनार्थ आए हैं। यह भगवान् महादेव का भव्य मंदिर है। इसके भीतरी और बाह्य भाग पर खुदाई का सुंदर काम अपनी ओर आकर्षित करता है। इसका निर्माण मालवा के प्रसिद्ध राजा भोज ने ग्यारहवीं सदी में करवाया था। इसे 'त्रिभुवन नारायण का शिवालय' और 'राजा भोज का मंदिर' भी कहा जाता है, इसका उल्लेख यहाँ लगे शिलालेख में है। सन् १४२८ में महाराणा मोकल ने इसका जीर्णोद्धार कराया था, जिससे लोग इसे 'मोकल का मंदिर' भी कहने लगे थे। मंदिर के गर्भगृह में शिवलिंग है तथा पीछे की दीवार में शिव की विशाल आकार की त्रिमूर्ति बनी है। इस त्रिमूर्ति की भव्यता देखने योग्य है। इसी मंदिर के साथ नीचे गौमुख जाने के लिए सीढ़ियाँ उतरती हैं।

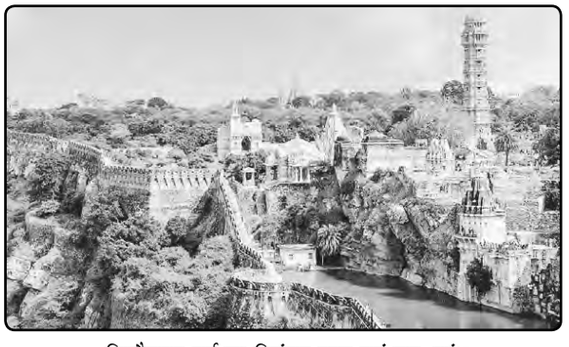

चित्तौड़गढ़ दुर्ग का विहंगम दृश्य एवं जय-स्तंभ

अब हम बहते वर्षाजल के साथ गौमुख जाने के लिए सीढ़ियाँ उतर रहे हैं। गौमुख कुंड वर्षाजल से लबालब भर गया है, जो किले की मजबूत प्राचीर के साथ बना है और अतिरिक्त पानी निकलने के लिए इसमें अंदरूनी परनाले हैं। नीचे किले की चट्टान से बने गौमुख से प्राकृतिक भूमिगत जल एक झरने की तरह निरंतर गिर रहा है। यह जल हमेशा ही गिरता रहता है, इस कारण इसे 'गौमुख कुंड' कहा जाता है। इसके नीचे ही शिवलिंग है। कुछ महिलाएँ यहाँ स्नान कर इस जल का आचमन करके लौट रही हैं। हमने भी जल का आचमन किया। यहाँ के प्रथम दालान के द्वार पर सामने भगवान् विष्णु की एक विशाल मूर्ति खड़ी है। श्रद्धालु इस कुंड को पवित्र तीर्थ की तरह मानते हैं। इस कुंड के एकदम पास ही उत्तरी किनारे पर महाराणा रायमल के समय का बना एक छोटा सा पार्श्व जैन मंदिर है। ऐसा कहा जाता है कि यहाँ से एक सुरंग राणा कुंभा के महलों तक जाती है। गौमुख कुंड से कुछ ही दूर दो ताल हाथी कुंड तथा खातण बावड़ी हैं। किले की दीवारों में से जहाँ-तहाँ वर्षा का जल झरनों की तरह गौमुख कुंड में गिर रहा है। बड़ा ही सुंदर दृश्य है। कुंड के किनारे खड़े होने पर डर भी लग रहा है। यहाँ चेतावनी बोर्ड भी लगा है कि इस कुंड के पानी में न उतरें। कई नारियल कुंड के जल में तैर रहे हैं। यहाँ जीत भाई ने खूब फोटो खींचे और मुझसे भी खिंचवाए। यहाँ सबकुछ देखकर अब हम अपने वाहन पर लौट आए। उसी बहिन से एक बार फिर चाय बनवाई गई। जीत भाई शरीफा तोड़ने लगे तो केशव भाई ने बताया कि इनका ठेका उठता है और यह फल पेड़ पर ही पकता, अभी ये कच्चे हैं, अक्तूबर महीने में पकने लगेंगे।

चाय पीकर हम लोग वापस उसी रास्ते से लौटे और मीराबाई मंदिर से दाहिनी ओर ऑटो सड़क पर दौड़ने लगा। रास्ते में ऑटो धीमा करके केशव ने बताया कि बाईं ओर यह विशाल झीलनुमा सरोवर 'सैनिक तालाब' कहलाता है। इसका पानी किले की सेना के उपयोग में आता था। इसके दूसरे किनारे पर सेना की छावनी हुआ करती थी, उसके कुछ खँडहर दिखाई दे रहे हैं। अब हमारा ऑटो पद्मिनी महल यानी जलमहल के पास आकर ठहर गया है। यहाँ पर लगे शिलालेख के अनुसार पद्मिनी महल इस दुर्ग के मुख्य भवनों में से एक है। यह महल पद्मिनी तालाब के उत्तरी तट पर स्थित है। तालाब के मध्य में मेहराबदार प्रवेशद्वार के साथ ही तीन मंजिला भवन है, जिसे 'जलमहल' कहा जाता है। महल का मुख्य द्वार पश्चिम की ओर है, जिसका आँगन छोटे कमरों की सीधी पंक्तियों से घिरा है। दूसरे संलग्न आयताकार आँगन के दक्षिण भाग में दो मंजिला कक्ष स्थित हैं।

इस महल की पूरब दिशा में पुराना चौगान है। यहाँ पहले चित्तौड़ की सेना कवायद किया करती थी, इसी को लोग घोड़े दौड़ानेवाला चौगान भी कहते हैं। इस तालाब के बाएँ किनारे पर बने महल मरदाना महल कहलाते हैं। इसके आगे नौकर-चाकरों और बाँदियों-दासियों के निवास हैं। मरदाना महल कुछ ऊँचाई पर है। इसके एक कमरे में एक विशाल दर्पण इस तरह से लगा है कि यहाँ से झील या तालाब के बीच बने जनाना महल की सीढ़ियों पर खड़े किसी भी व्यक्ति का प्रतिबिंब इस दर्पण में स्पष्ट नजर आता था, लेकिन पीछे मुड़कर देखने पर सीढ़ियों पर खड़े व्यक्ति को नहीं देखा जा सकता। यहीं पर खड़े होकर अलाउद्दीन ने परम सुंदरी रानी पद्मिनी का प्रतिबिंब देखा था। यहाँ झील में धुंध छाई हुई है, इससे झील का दूसरा छोर दिखाई नहीं पड़ रहा है। मरदाना महल टूट-फूट गए हैं तो इनमें शानदार फुलवारी के छोटे-छोटे लॉन बना दिए गए हैं। कुछ दीवारें तथा धनुषाकार दरवाजे अभी मूल अवस्था में हैं।

इस पद्मिनी ताल के दक्षिणी किनारे पर एक पुराने महल के खँडहर हैं, जो कभी खातन रानी का महल हुआ करता था। महाराणा क्षेत्र सिंह ने अपनी रूपवती उपपत्नी खातन रानी के लिए यह महल बनवाया था। इसी रानी के दो पुत्रों ने महाराणा मोकल की हत्या कर दी थी। पद्मिनी महल के दक्षिण-पूर्व में दो गुंबदाकार इमारते हैं, जिन्हें गोरा-बादल के महल के रूप में जाना जाता है। गोरा रानी पद्मिनी के चाचा तथा बादल उनका चचेरा भाई था। जब राणा रतनसिंह को धोखे से खिलजी ने बंदी बना लिया

था, तब उन्हें छुड़ाने के लिए हुए युद्ध में पाडल पोल के पास गोरा वीरगति को प्राप्त हुए और बादल तो अत्यंत अल्पायु में ही शहीद हो गया। इस महल की निर्माण शैली कुछ अलग जान पड़ती है। ये रणबाँकुरे पिता-पुत्र कभी यहीं पर निवास किया करते थे। इन दोनों की वीरता इतिहास में प्रसिद्ध है। गोरा-बादल की गुंबदों के थोड़ा सा आगे सड़क के पश्चिम में एक विशाल हवेली के खँडहर हैं, इसको राव रणमल की हवेली कहते हैं। कहा जाता है कि राव रणमल की बहन हंसाबाई से महाराणा लाखा का विवाह हुआ था और महाराणा मोकल इन्हीं के पुत्र थे।

यहाँ से वापस लौटते हुए केशव ने एक मंदिर के पास ऑटो रोक दिया। यह काफी बड़ा और विशाल कालिका मंदिर है। इस मंदिर का निर्माण नौवीं शताब्दी में मेवाड़ के गुहिल वंशीय राजाओं ने कराया था। मूल रूप में यह एक सूर्य मंदिर था। निज मंदिर के द्वार तथा गर्भगृह के बाहरी पार्श्व के ताखों में स्थापित सूर्यदेव की मूर्तियाँ इसकी प्रमाण हैं। बाद में मुसलिम आक्रांताओं द्वारा मूर्ति तोड़ दी गई और वर्षों तक यह मंदिर सूना पड़ा रहा। कुछ काल बाद इसमें कालिका की मूर्ति स्थापित कर दी गई। इस मंदिर के स्तंभों, छतों तथा अंत:द्वार पर खुदाई का काम दर्शनीय है। महाराणा सज्जन सिंह ने इस मंदिर का जीर्णोद्धार कराया। चूँकि मूर्ति की स्थापना वैशाख शुक्ल अष्टमी को हुई थी तो प्रतिवर्ष इस दिन यहाँ मेला लगता है।

कालिका माता के इस मंदिर के उत्तर-पूर्व में एक विशाल कुंड है, इसे 'सूरज कुंड' कहते हैं। इसके बारे में किंवदंती है कि महाराणा को सूर्यदेव का वरदान प्राप्त था तथा कुंड से प्रतिदिन प्रात: सफेद घोड़े पर सवार एक सशस्त्र योद्धा निकलता था, जो युद्ध में महाराणा की सहायता करता था। कालिका माता तथा गौमुख कुंड के बीच जयमल तथा फत्ता के महलों के खँडहर हैं। राठौर वंशी जयमल और सिसोदिया वंशी फत्ता अकबर की सेना के साथ हुए भीषण युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुए। महल के पूरब में एक बड़ा तालाब है, जिसे जयमल-फत्ता का तालाब कहा जाता है। इस तालाब के तट पर छह बौद्ध स्तूप भी हैं। यहाँ से निकलकर अब हमारा ऑटो सूरजपोल पर आ गया है। केशव ने बताया कि सन् १३७७ में राणा सज्जन सिंह ने इसका निर्माण कराया था। पूरब दिशा में किले का यह मुख्य दरवाजा है। यह जमीन से लगभग ५८२ फीट की ऊँचाई पर है। इसके सामने युद्ध का मैदान है। आगे आदिवासियों के गाँव हैं तथा चारों ओर जड़ी-बूटियों के जंगल फैले हैं। यहाँ हमेशा ही धुंध छाई रहती है, जिससे गहराई और दूरी का पता नहीं चलता है। ज्यादातर लड़ाइयों में इस दरवाजे पर ही धाबा बोला गया।

ऑटो में बैठ अब हम लोग आगे बढ़े। इसी सड़क पर कुछ आगे चलकर जैनियों का कीर्ति-स्तंभ है। बारहवीं-तेरहवीं शताब्दी में जीजा नामक एक धनाढ्य जैन व्यापारी ने भगवान् आदिनाथ की स्मृति में सात मंजिला यह कीर्ति-स्तंभ बनवाया। यह ७५ फीट ऊँचा है तथा इसमें ५७ सीढ़ियाँ हैं। नीचे से ऊपर तक इस पर सुंदर शिल्पकारी की गई है। इसको देखकर ही महाराणा कुंभा ने जय-स्तंभ बनवाया। अब इसमें प्रवेश वर्जित है। इससे थोड़ा हटकर एक ऊँचे चबूतरे पर भव्य जैन मंदिर है, जो पत्थरों से निर्मित है। यहाँ से अब हमारा ऑटो वापसी के लिए सड़क को छोड़कर नीचे ढलान की ओर जाती पतली सड़क पर दौड़ रहा था कि आगे चलकर केशव ने ऑटो खड़ा कर दिया और बोला—सर, वह सामने व्हाइट पैलेस है। सन् १९०६ में राणा फतेहसिंह ने इसका निर्माण करवाया। पहले इसे गेस्ट हाउस की तरह इस्तेमाल किया जाता था, फिर इसमें एक स्कूल खोल दिया गया और अब इसमें म्यूजियम है। इसके सामने और हमारे दाईं ओर मोती बाजार तथा नगीना बाजार के खँडहर हैं। पहले यह किले का मुख्य बाजार हुआ करता था और इसकी रौनक दर्शनीय हुआ करती थी। चलते-चलते केशव हमें यहाँ स्थित एक हैंडलूम के शोरूम में ले आया। यहाँ हमने शरीफा, केला, पपीता के रेशे से बनी कई प्रकार की साड़ियाँ, कपड़े तथा जड़ी-बूटियों के तेल-इत्रादि देखे। हमें जल्दी थी, दो बजे मावली के लिए गाड़ी भी पकड़नी थी, सो झटपट स्टेशन के लिए चल पड़े। केशव ने लगभग पौने एक बजे हमें स्टेशन पर छोड़ दिया। केशव भाई के साथ हमारी यात्रा बेहद यादगार रही। उसकी विनम्रता के हम कायल हो गए।

अब भूख भी तेज हो चली थी। सो स्टेशन के सामने स्थित शर्मा भोजनालय में भोजन करने बैठे। यहाँ पचास रुपए की थाली है। इसमें ५-६ रोटी, एक सब्जी, एक दाल सलाद के साथ दी जाती है। खाना बेहद स्वादिस्ट है और गरमागरम भी। यहाँ भोजन में बिल्कुल घर जैसा स्वाद आया। अब हम चित्तौड़गढ़ से उदयपुर सिटी पैसेंजर में बैठ मावली होते हुए नाथद्वारा आ गए। यहाँ आकर पहले आश्रय की खोज में जुटे। कई धर्मशालाएँ देखीं, श्राद्ध पूर्णिमा की वजह से किसी में कमरा खाली नहीं है। मधुसूदन भाईजी के प्रयास से दिल्लीवाली धर्मशाला में कमरा मिला। वैसे भाईजी तो बार-बार आग्रह करते रहे कि मेरे घर पर चलो। सायं को साहित्य मंडल के 'हिंदी लाओ, देश बचाओ' कार्यक्रम में शामिल हुए। प्रात: श्रीनाथजी के दर्शन कर कुंभलगढ़ के लिए निकल गए। यहाँ से लौटते हुए सायं के छह बज गए। सायं में दर्शन कर फिर समारोह में शामिल हुए। प्रात: से पुन: साहित्य मंडल के कार्यक्रम में रहे। भोजनोपरांत भाई मधुसूदनजी हमें अपने घर ले गए। शिवजी की जो विशाल मूर्ति बन रही है, वह इनके मकान के बिल्कुल निकट ही है। भाईजी की दूरबीन से पूरे इलाके का नजारा लिया। भाईजी के आतिथ्य से हम तो अभिभूत हो गए। उन्होंने अपना नोटों तथा फोटो का अद्‌भुत कलेक्शन दिखाया, जिसमें नई-पुरानी भारतीय मुद्रा के विचित्र और अनोखे अंक वाले नोट हैं, जिन्हें उन्होंने फाइल में बड़े करीने से सजा रखा है। लौटते-लौटते भी तीन बज गए। और साढ़े तीन बजे हमने धर्मशाला छोड़ बस पकड़ी तथा मावली जं. से चेतक एक्सप्रेस में सवार हो प्रात: पाँच बजे दिल्ली उतर गए। वास्तव में तीर्थराज चित्तौड़ के दर्शन कर बचपन का एक सपना साकार हुआ।

जी-३२६, अध्यापक नगर
नांगलोई, दिल्ली-११००४१
दूरभाष : ९८६८५२५७४१

ÕÎÜè Üæ·¤»èÌæ × SßæS‰Ø-¿ÌÙæ

• सुधा तैलंग

प्राचीन काल से ही हमारे पूर्वज स्वास्थ्य के प्रति जागरूक रहे हैं। योग, व्यायाम, प्रातः-सांयकालीन भ्रमण, जड़ी-बूटियों, घरेलू उपायों से इलाज के साथ-साथ खान-पान में अनुशासन, इंद्रियों पर नियंत्रण व नियमों के पालन के कारण हमारी पुरानी पीढ़ी स्वस्थ, शतायु व दीर्घायु रही है। बुजुर्गों ने आयुर्वेद के नुस्खे, स्वास्थ्य लाभ के लिए अनेक धारणाओं, अपने विचारों व अनुभवों को गीतों, दोहों व लोकोक्तियों के रूप में प्रस्तुत किया है, जो लोकजन सामान्य के लिए आज भी बहुत उपयोगी, प्रेरक व सार्थक हैं। इनमें जीवन-शैली के सिद्धांतों को पूरी तरह समझाया गया है।

स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता स्वास्थ्य की समस्याओं को समझना तथा घरेलू उपायों द्वारा रोगों से छुटकारा दिलाना इन गीतों का उद्देश्य है। हमारे पूर्वजों ने जीवन की पहली प्राथमिकता स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता बताया है। लोकजीवन में प्रथाओं, गीतों का, कहनोत को आज भी ग्रामीण अंचल में देखा जा सकता है। बुंदेलखंड की संस्कृति में प्रवाहित लोक-साहित्य की सरिता में स्वास्थ्य के प्रति चेतनता के अनमोल रत्नों को हम ढूँढ़ने का प्रयास करते हैं—

गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी कहा है कि व्यक्ति को सुख उसके पूर्वजन्म के संस्कारों, कर्मों व पुण्यों के सुफल से ही प्राप्त होते हैं—

माँगे मिले न चार, तुलसी पूरब पुण्य बिन।
इक विद्या, वर-नार, संपति और शरीर सुख॥

बुंदेलखंड में हमारे बड़े-बुजुर्गों ने सुखी व स्वस्थ व्यक्ति के जीवन के सुखों का क्रम इस प्रकार निर्धारित किया है।

पहला सुख निरोगी काया, दूसरा सुख हो घर में माया,
तीसरा सुख कुलवंती नारी, चौथा सुख पुत्र आज्ञाकारी।

स्वास्थ्य के लिए भोजन की भूमिका महत्त्वपूर्ण व सर्वोपरि है। भोजन शुद्ध, सुपाच्य व सात्विक होना चाहिए। कहा भी गया है—

जैसा अन्न-जल खाइए, तैसेई मन होय।
जैसा पानी पीजिए, तैसेई बानी होय॥

हमारे पूर्वजों ने भोजन के संबंध में कई मान्यताएँ, धारणाएँ लोक-हित में कही हैं।

भोजन का समय—

सुपरिचित लेखिका। देश के प्रतिष्ठित समाचार-पत्र व पत्रिकाओं में कहानी, लेख, साक्षात्कार आदि लगभग ३०० से अधिक रचनाएँ प्रकाशित। उत्कृष्ट शिक्षक पुरस्कार से सम्मानित। संप्रति मध्य प्रदेश स्कूल शिक्षा विभाग में संस्कृत की शिक्षक।

सूर्योदय सूर्यास्त में, भोजन कबहुँ न खाय।
जो मनुष्य भोजन करे, बुद्धि नष्ट हुई जाय॥
प्रतिदिन भोजन का समय, निश्चित कर जो खाय।
मिटै कब्जियत बल बढ़े, अरु जठराग्नि बढ़ाय॥

समय व मौसम के अनुसार ही हमें भोजन करना चाहिए। किस माह में क्या खाया जाए, बुंदेली कवियों ने अपने अनुभवों में कहा है—

चैत मीठी चीमरी, बैसाख मीठो मठा।
जेठ मीठी डोबरी, असाढ़ मीठे लटा।
सावन मीठी खीर, भादों भुंजे चना।
भादों ब्यारू कबहुँ न पाय।
क्वार कामना देय बचाय, तो शत वर्ष आयु हुई जाय।

हमारे पूर्वजों ने भोजन के संबंध में बताया है कि किस माह में क्या खाया जाए। अपने स्वास्थ्य के लिए क्या लाभदायक है—

क्वार मीठी कुदई, कातिक दही मोर के,
अगहन खाव जूनरी, भरता नीबू जोर के।
पूस मीठी खीचरी, गुर डारो फोर के,
माघ मीठे बेर, फागुन खावै होरा बालै।

लोक साहित्य-लोक जन के लिए अनुभतियों का अपार स्रोत है। जीवेम् शरद शतम सूक्ति को चरितार्थ करता यह गीत देखिए—

कातिक दूध अगहन में आलू, पूस पान अरु माघ रतालू।
फागुन शक्कर, घी जो पाय, चैत आँवला कच्चा खाए।
बैसाखे जो खाय करेला, जेठे दाख असाढ़े केला।
क्वार को मना देय बचाय, ते शत वर्ष आयु हुई जाय।

किस माह में क्या नहीं खाना चाहिए, इसके बारे में भी कहा गया है—

चैते गुड़ बैसाखे तेल, जेठै महुआ असाढ़े बेल।
सावन भाजी, भादों मही, क्वार करेला, कातिक दही।
अगहन जीरा, पूसे धना, माघ में मिसरी, फागुन चना।
इतनी चीजैं खेहें, सभी मरहौ नई तो पर हौ सही।

ब्यारी यानि रात्रि के भोजन के लिए किन नियमों का पालन करना चाहिए—

ब्यारी कभऊँ न छोड़िए, जासौं ताकत जाय।
जो ब्यारी अवगुन करै तो दुफरै थोरे खाय॥

रात्रि का भोजन करने की उक्ति कितनी सुलभ व सटीक है, जिसका पालन करने से हम स्वस्थ रह सकते हैं। प्रत्येक व्यक्ति को अपने शरीर की पाचन शक्ति का ज्ञान स्वयं रहता है, ऐसे में जो पच जाए, वही हमें भोजन करना चाहिए—पचै सो खावै, रुचै सो बोले। जब पाचन शक्ति ठीक नहीं हो तो चावल का एक तिनका भी भारी नुकसान पहुँचाता है—

चावल की कनी, उर भाला की अनी।

इस प्रकार की न जाने कितनी शिक्षाप्रद कहनौत व कितने बुंदेली स्वास्थ्यपरक गीत, कविता, दोहे बुंदेलखंड साहित्य में भरे पड़े हैं—

केला संग इलायची, आम संग पय पाय।
शरबत खरबूजा सहित ककड़ी नमक लगाए।
घृत संग तेल न खाइए, दहि संग आम अचार।
केला खिचड़ी संग शहद, मट्ठा शहद विकार।

हमें भोजन के समय पानी कब पीना चाहिए, ये बुंदेली साहित्य में वर्णित है—

भोजनांत या मध्य में, कबहुँ पिए नहिं तोय।
एक घड़ी में जल पिए, नहिं अजीर्णता होय॥
यदि आदत जल पियन की, प्रथमहि जल पी जाय।
घड़ी बाद भोजन करें, कछु न हानि पहुँचाय।

देखते हैं कि कब्ज, भोजन न पचने का कारण क्या बताया है हमारे बुंदेली कवियों ने—

पिए न अधिक जल नित्य जो, बिना भूख जो खाय।
अधिक जगे, सोवे अधिक, शौच समय नहिं जाय॥
भय ईर्ष्या अरु क्रोध में तथा लाभ अरु शोक।
कबहुँ न भोजन पच सके, जो लघु शंका रोक॥

पान खाने का शौक लोगों में आज भी प्रचलित है। पान खाने के बारे में कहा गया है—

भोजनांत जो पान चबाए, लौंग सुपाड़ी बहुत नहिं खाए।
सदा थूकिए पहली पीक, यही नियम है सबसे नीक।

हमारे पूर्वजों की स्वास्थ्य उक्तियाँ उपादेय ही नहीं वरन् जीवन को श्रेष्ठ बनाने में सक्षम व समर्थ भी हैं। दादी-नानी, जो गृह के प्रयोग में दक्ष हैं, उनके द्वारा उपवास, खेलकूद और योग-व्यायाम, आहार संबंधी ज्ञान और धारणाएँ इन गीतों में कूट-कूट कर भरी हैं।

भोजन करके आठ श्वास लेते समय सीधे (चित्त) लेटें, फिर दाहिने करवट लेटकर सोलह श्वास लें तथा बाएँ करवट लेटकर बत्तीस श्वास लें, कभी बीमार नहीं होंगे।

प्रातः काल करै स्नाना, रोग दोष एको नहिं आना।

जो प्रात:काल उठकर नित्य ताजे जल से स्नान करता है, उसे कोई रोग नहीं होता।

बासी भात, तिबासी मठा, आँ ककरी की बतियाँ।
आधी रात जुड़ावनि आवै, भुई लैबों की खटिया।

जो व्यक्ति बासा पका चावल, दो दिन रखा मट्ठा तथा ककड़ी व फूट खाते हैं, वे बीमार होकर चारपाई व भूमि पर पड़े रहते हैं।

आँखों में हर्रे दाँतों में नोन, भूखा राखे चौथा कोन।
ताजा खावै बायाँ सौवे, ताकौ रोग कबहु न हौवे।

जो व्यक्ति हरड़, बहेड़ा, आँवला तीनों एक मिट्टी के बरतन में रात के समय भिगोकर सवेरे उसी जल से आँखें धोता है। सैंधा नमक व सरसों के तेल से दाँत साफ करता है। ताजा भोजन व पेट का एक भाग खाली रखता है तथा बाईं करवट सोता है, वह कभी बीमार नहीं पड़ता।

नित दातुन जो करै, भुनी हर्र चबाय।
दूध बियारी जो करै, ता घर वैद्य न जाय।

जो नित्य दातुन करते हैं, हरड़ भूनकर खाते हैं तथा रात में भोजन के बाद दूध पीते हैं, उनके घर कभी वैद्य नहीं आता है।

जो मनुष्य तंबाकू खाते हैं, पहले उनके दाँत खराब होते हैं, फिर आँखों की ज्योति कम हो जाती है। जल्दी बुढ़ापा आ जाता है। हरदम सबके आगे हाथ फैलाए खड़े रहते हैं और दाँत निपोरते रहते हैं—

सुरती कहे मैं सुंदर नार, पहले देती दाँत बिगार।
दूसरे आँख ज्योति हर लेउ, तीसरे जल्द बूढ़ कर देऊ।
चौथे एक गुन है मोरा, जो माँगे वो दाँत निपोरा।

सच बड़े-बुजुर्गों की कही ये बातें आज के दौर में भी उतनी ही सच, सटीक व सार्थक प्रतीत होती हैं। यदि हम इन पर गौर करें व अनुकरण करें तो आज के भाग-दौड़ व तनावपूर्ण वातावरण में अपने को स्वस्थ व प्रसन्न रख सकते हैं। जब पूरा विश्व हमारे पाँच हजार वर्षों पुराने आयुर्वेद का महत्त्व जान रहा है, पूरा विश्व आज योग को अपना रहा है। ऐसे में हम अपने पूर्वजों के अनुभवों को अपनाते हुए अपने को स्वस्थ व सुखी रख सकते हैं।

सा अ

सिमरन अपार्टमेंट
ई-८, त्रिलंगा, भोपाल
दूरभाष : ९३०१४६८५७८

माँ की गंध

• शशि गोयल

सुपरिचित लेखिका। अब तक २८ पुस्तकें प्रकाशित, जिनमें 'बादल की सैर', 'सोने के पेड़े', 'एक फूल का भाग्य', 'नटखट चाँद' चर्चित रहीं। 'सुभद्रा कुमारी चौहान महिला बाल साहित्य', 'साहित्य सेवी सम्मान', 'काव्य प्रतिभा सम्मान', 'द्वारका प्रसाद माहेश्वरी स्मृति सम्मान', 'रघुनाथ तलेगाँवकर स्मृति सम्मान' एवं अन्य सम्मानों से सम्मानित।

'मम्मी'...बुखार आई तीन साल की शुनु चढ़कर माँ के पलंग पर बैठ गई, धीरे-धीरे अपने तप्त हाथों को कृति ने उठाया। एक बार शुनु को प्यार करना चाहा, फिर धीरे से सिर घुमा लिया। हाथ वहीं पर नीचे लटका सा रह गया। आवाज गले में रुक गई, 'शुनु', कृति के सूखे होंठों से अस्फुट सी आवाज निकली। कुछ देर वह शुनु को देखती रही। शुनु के छोटे हाथ कभी उसके गालों पर थे, कभी माथे पर, जैसे वह उसे सहलाती थी, शुनु उसे सहला रही थी।

'शुनु...' मन-ही-मन कृति सहम उठी। सौरभ शादी तो कर ही लेगा, पर शुनु का क्या होगा? शुनु...उसका गला घुटा-घुटा सा होने लगा आँखों के कोरों पर एक-एक बूँद छलकने लगी। 'इससे तो यह नहीं आती दुनिया में, ईश्वर मुझे शुनु के लिए केवल बचा ले।' तभी सौरभ शुनु के लिए केला लाया, "शुनु, आओ केला खा लो।" कृति ने करवट लेनी चाही तो सौरभ ने उसके नीचे तकिया लगा दिया।

"भाभी, जरा सा दलिया ले लो।" रानी ने प्याला मेज पर रख कृति को बैठाना चाहा। सौरभ ने उसे सहारा दे पलंग के सहारे बैठा दिया। एक चम्मच दलिया लेकर ही कृति ने मुँह फेर लिया, "नहीं खाया जा रहा।" पंद्रह दिन से बस तेज बुखार, नहीं पता क्यों? आठ दिन यहाँ से वहाँ टेस्ट कराते गुजर गए और आठ दिन अस्पताल में। नतीजा कुछ नहीं। डॉक्टरों ने हाथ खड़े कर दिए हैं। चेस्ट इन्फेक्शन है, कुछ नहीं, जब तक साँस है। खौफ की परछाईं सी सबके चेहरे पर दिखने लगी थी। सौरभ का चेहरा सपाट था।

"रानी, इसे हटा लो।" सौरभ ने कहा।

"भैया, मैं शाम को जाऊँगी, इसे अपने साथ ले जाऊँगी। यहाँ माँ कर नहीं पाएगी," और फिर कहकर वह अटक गई। सौरभ ने प्रश्नवाचक दृष्टि से रानी की ओर देखा तो धीरे से फुसफुसाई, "भाभी का इन्फेक्शन बढ़ रहा है।"

"हाँ..." सौरभ बोला, "वैसे भी बच्चा है।"

"कहीं इन्फेक्शन..." कहती अटक गई।

शुनु को रानी अपने घर ले आई, उसके बाद शुनु ने अपनी माँ को नहीं देखा। अपने ऊपर आए कहर को भी वह तब न समझ सकी। रानी बुआ और बच्चों के साथ पलती-बढ़ती कभी-कभी दादी के पास रह जाती, जहाँ पापा मिल जाते। पर पापा क्या होते हैं? माँ क्या होती है? कहाँ समझ पाई थी। वह पली-बढ़ी, सोचती—यही जीवन है, ऐसे ही जिया जाता है। बुआ के मशीनी हाथों ने कभी कसकर भी नहीं दबाया, न डाँट से, न प्यार से, रानी बुआ के बच्चे अनी और गोलू उससे बड़े थे। सब कुछ यंत्रवत् ही तो होता था। खाना खाओ, सोओ, पढ़ो, स्कूल जाओ, ट्यूशन पर पढ़ो और फिर सो जाओ।

माँ की गोद तो उसे जब वह छोटी सी थी, तब ही नसीब नहीं हुई थी। उस प्यार की गरमी से अनजान थी। पूरा नाम भी तो माँ नहीं रख पाई थी, मेरी शोना शुनु ही कहती रही और सब शुनु ही कहने लगे, सान्या नाम तो बाद में स्कूल में रखा गया।

बुआ ने बस प्यार से गालों पर थपकी दी थी। वह तो प्यार उसी को जानती थी। कभी-कभी दादी की गोद में उसे अलग जरूर लगता था, पर वह लगना क्या? दादी उसे बहुत प्यार से गोद में बिठा लेती थीं और जोर से भींच लेतीं, पर साथ ही उनकी आँख में आँसू छलकते। 'अभागन!'

छोटी थी वह, सोचती यह अभागन क्या होता है? वह क्यों अभागन है। माँ की याद दिन-ब-दिन धुँधला गई थी, क्योंकि जब तक माँ से बोलने-बैठने लायक हुई थी, माँ को बिस्तर पर देखा और दूर से ही देखा, कभी पास चली भी जाती तो तुरंत उसे हटा लिया जाता।

बुरा तो कुछ भी नहीं था उसके जीवन में, न कोई डाँटता, न मारता, पर कोई प्यार भी तो नहीं करता था। वह माँ पर लेख, कविता पढ़ने लगी, तब उसे अजीब सा लगता। क्यों ऐसी ही तो होती हैं, जैसी बुआ हैं। अनु दीदी और वह कोई फर्क तो है नहीं दोनों में।

पर धीरे-धीरे उसे महसूस हुआ, फर्क तो बहुत है, वह तो अनु दीदी जैसी किसी भी चीज के लिए जिद नहीं करती। यह जानती है, वह बुआ के पास है और फूफाजी को तो बस जब तब देखती है।

रात को कभी-कभी बहुत डर लगता है, पर रानी बुआ के पास दीदी या गोलू भैया सोए होते। वह डरती, कभी कसकर आँख मींचती, कभी कनखी से चारों ओर देखती, फिर कसकर चादर को लपेट लेती और सोचती, किसे पुकारे, पापा भी तो नहीं थे उसके पास। पापा नई मम्मी लाए, पर उसे नहीं बुलाया, न बुआ ने भेजा।

''मेरे पास ही रहेगी, ऐसे ही पल जाएगी।'' हाँ, पल तो रही थी वह बड़ी भी होने लगी थी। स्कूल में बच्चे टिफिन खोलते, ''दिखा तेरी मम्मी ने क्या रखा है?''

''प्रियम, तेरी मम्मी आलू के पराँठे बहुत अच्छे बनाती है।'' सबको दूसरों की मम्मी के हाथों का खाना बहुत अच्छा लगता। पर वह तो अधिकतर पराँठे-सब्जी या मठरी ले जाती है, उसका टिफिन कोई शेयर नहीं करना चाहता था। हाँ, उसे अपने साथ खिलाते जरूर थे।''

''आ जा शुनु, देख आज मम्मी ने पास्ता रखा है,'' कोई कहता, ''पता है, मैंने तो रात को ही मम्मी से कह दिया था, मेरे लिए दही कटलेट ही बनाना।''

ऐसे तो बुआ ने कभी नहीं पूछा, शुनु टिफिन में क्या ले जाएगी, बस जो रख देती हैं बुआ, ले जाती है शुनु। बुआ को सुबह बहुत काम होते हैं, वह जिद कैसे करे।

अनु दीदी का कमरा है, गोलू भइया का कमरा है, उसका अलग से कमरा नहीं है। अनु दीदी के कमरे में एक पलंग उसका भी है, एक तरफ उसकी छोटी सी अलमारी है, मेज-कुरसी है। मेज-कुरसी उसके आठवें जन्मदिन पर पापा लाए थे। बार्बी डॉल नहीं थी उस पर।

''अबकी बार बार्बी लाऊँगा अपनी डॉल के लिए।'' पापा ने उसे दोनों हाथों से उठाया था, बस इतना प्यार उसने देखा था, इससे अधिक भी होता है, वह कभी-कभी अनु दीदी को फूफाजी के गले से लटकते देखती, कमर में हाथ डाल घुमाते देखती, उन्हें खिलखिलाते देखती। उसके पापा आते हैं तो बस चुपचाप बैठे रहते हैं, बहुत हुआ तो अपने पास बिठा लेते हैं।

'कुछ चाहिए', कभी-कभी पूछ लेते हैं तो बुआ बोल उठती हैं, 'अरे भैया, इसकी चिंता मत करो, ये तो अब मेरी बेटी है!' पर वास्तव में वह बेटी जैसा क्यों नहीं महसूस कर पाती है, वह बुआ-भतीजी का सा ही संबंध है, घर में एक परायापन क्यों लगता है, वह जिद कर किसी भी चीज पर अपना अधिकार नहीं जता पाती।

□

एक रात घनघोर बारिश हो रही थी, खिड़कियों पर हवा जोर-जोर से टकरा रही थी, बूँदों की तेज आवाज और बादलों का कालापन सब कुछ तो दिल को दहला रहा था, ''अनु दीदी, मुझको डर लग रहा है। अनु दीदी···'' वह उठकर बैठ गई, पर अनु दीदी अपने बिस्तर पर नहीं थी। वह कमरे में अकेली थी। बुरी तरह डर गई। दौड़कर बुआ के कमरे में गई तो देखा, बुआ के एक ओर गोलू सोया है, बुआ फूफाजी के बीच में अनु दीदी अपने पापा से चिपककर सोई हुई है, उसने इधर-उधर देखा, बुआ को आवाज लगाई, फिर शायद कुछ देर में बुआ की आँख खुली होगी और उसे पायताने में पाया होगा तो थोड़ा और खिसक चादर ओढ़ा दी होगी। कुछ जगह तो उसके लिए बन ही गई।

''हाय राम! कल कितनी तेज बारिश थी न, मैं तो मम्मी से चिपककर सोई।'' अधिकांश बच्चों के ये ही शब्द थे। चुपचाप शुनु सुनती रही, फिर नीचे मुँह कर जमीन में जैसे कुछ ढूँढ़ने लगी।

''क्या देख रही है, शुनु?'' उसकी फ्रेंड ने कहा तो, वह बोली, ''देख न यह घोंघा अपनी पीठ पर अपना घर ले जा रहा है।''

''अरे, घर नहीं, इसके बच्चे हैं, इन्हें पीठ पर ले जा रहा है।''

सच···और वह बैठकर उसको देखती रही थी, मम्मी कैसे उसे पानी से बचाती ले जा रही हैं। हाँ, मैं भी बुआ के पास सोई थी। शुनु अपने को बहुत बेचारी नहीं होने देना चाहती थी।

दस साल बाद उसका भाई आया है, सवा महीने बाद कुआँ पूजने की रस्म होनी थी। बहुत दिन बाद पापा के कमरे में आई थी, क्योंकि दादी के जाने के बाद बुआ बहुत कम आती थीं। कोठरी में बुआ ने एक अलमारी खोली, 'पीला' इसी में रखा होगा। भाभी की अलमारी तब से खुली कहाँ है। ''हाँ यहीं होगा''

पीला अर्थात् लाल-पीला सुहागनों का दुपट्टा, दादी का दुपट्टा, जिसे उसकी मम्मी के पास रख दिया गया था। अब नई मम्मी के लिए चाहिए था।

''इसमें तेरी मम्मी के कपड़े हैं।'' बुआ ने दुपट्टा ढूँढ़ते हुए कहा, ''पापा ने छुआ भी नहीं है, तेरी मम्मी को बहुत प्यार करते थे पापा।''

''ये सब मम्मी ने पहने थे?''

''और क्या? ये सब साड़ियाँ तेरी मम्मी की हैं।'' फिर भाई की तरफ मुँह करके बुआ बोली, ''अरे भैया, इन्हें अब हटाओ, पड़े-पड़े खराब हो जाएँगी। होगा क्या, देख पहनने लायक हों तो नीला पहने तो पहन ले।''

''आ जा शुनु।'' बुआ ने पीला निकाला और अलमारी भेड़ दी तथा जल्दी से चली गई।

कुछ ही देर में शोर मचा 'शुनु कहाँ है शुनु···' एकदम शुनु की जरूरत पड़ गई, भाई हुआ है, उसकी पीठ पर गुड़ की भेली तोड़ी जाएगी, कुछ भी हो, बहन तो वही है।

''शुनु कहीं नहीं दिख रही है।'' बुआ बोली, ''अरे, वहाँ कोठरी में मेरे साथ थी। देखो, वहीं अलमारी को देख रही थी, पर उस बात को तो देर हो गई।''

''फिर भी देखूँ···'' बुआ ने कोठरी में देखा, पीछे-पीछे सौरभ भी था, एक-दो रिश्तेदार भी थे। देखा, शुनु ने मम्मी की साड़ियाँ जमीन पर गिरा ली हैं और उनको चारों ओर लपेटकर गहरी नींद सो रही है।

''शुनु-शुनु···'' बुआ ने उसे हिलाया, ''अरे शुनु, य क्या, यह क्या···'' शुनु ने आँखें खोलीं, उठ खड़ी हुई, ''बुआ, मम्मी की खुशबू आई है बुआ, मुझे याद है मम्मी की, यही खुशबू थी, कुछ साड़ियाँ उठाईं, ''बुआ इन्हें ले चलना, ले चलोगी न!''

रानी की आँखें भर आईं, उसे चिपकाते सिर हिलाया, ''हाँ बिटिया, हाँ, ले चलूँगी। तेरी माँ को तेरे साथ ले चलूँगी।''

सा अ

सप्तर्षि अपार्टमेंट, जी-९ ब्लॉक-३ सेक्टर-१६बी
आवास विकास योजना, सिकंदरा, आगरा-२८२०१०
दूरभाष : ९३१९९४३४४६

पाठकों की प्रतिक्रियाएँ

साहित्य अमृत का दिसंबर अंक,
पठनीय, संग्रहणीय, ज्ञान का बैंक
रामजन्मभूमि विवाद का पटाक्षेप,
संपादकीय में लिखा सटीक, संक्षेप
प्रतिस्मृति में 'पूस की रात',
हर किसान के मन की बात,
'ओझा' का ऊर्जा बचाएँ आलेख
ऊर्जा संरक्षण का करता उल्लेख,
श्रीधर की 'आँसुओं की त्रिधारा'
तीन पीढ़ियों के समन्वय का पिटारा,
जीवनसाथी, बौनी दादी, झरबेरा, कामचोर पढ़ी
चलें गाँव की ओर, नई सुबह भी अच्छी लगी
अबके गजलों में 'मिश्र', 'अहमद',
इनके फलसफे से मैं हूँ सहमत,
अच्छी लगती पाठकों की प्रतिक्रियाएँ
अंत में नववर्ष की सबको शुभकामनाएँ।

गांधीजी की १५०वीं जयंती के उपलक्ष्य में 'साहित्य अमृत' के 'गांधी विशेषांक' के रूप में दिया गया अनमोल तोहफा पाकर मन गद्‌गद हो गया। इस विशेषांक में गांधी के कई अनछुए, अनसुने किस्से पढ़ने को मिले और उनके दर्शनशास्त्र, उनके तमाम रूपों से रूबरू हुए।

—ब्रह्मानंद खिच्ची, महेंद्रगढ़ (हरि.)

'साहित्य अमृत' के दिसंबर अंक में संपादकीय 'रामजन्मभूमि विवाद का पटाक्षेप' में बहुत विस्तार से पूरा इतिहास लिख दिया गया है। कथा-सम्राट् मुंशी प्रेमचंद की बहुचर्चित कहानी 'पूस की रात' में पूस की अँधेरी रात में ठिठुरते हुए खेत की रखवाली करते गरीब किसान की दयनीय स्थिति का बड़ा मर्मस्पर्शी वर्णन है। कहानी 'चलें गाँव की ओर' गाँव के लोगों की कथा है, जिसमें आपसी दुश्मनी, ग्राम पंचायत के चुनाव में महिला जीतती है और गाँव का सुधार करती है। कहानी 'कामचोर' नौकर अनस की कहानी है, जो आए दिन नौकरी छोड़कर दूसरी नौकरी पर जाता रहता है। कहानी 'झरबेरा' में चंदन जब शहर से बहुत दिनों बाद अपने गाँव आता है तो उसे पुराना गाँव याद आता है, गाँव में विकास देखकर वह गाँव में रहने का निर्णय करता है। कहानी 'जीवनसाथी' बहुत शिक्षाप्रद है। कहानी 'बौनी दादी' समाज-सेवा करते हुए सब गाँववालों की दादी बन गई। तमिल कहानी 'दक्षिण अफ्रीका का दामाद' करनी और कहने का अंतर दिखाती है। व्यंग्य 'काहे प्रिंसिपल माथुर भए त्यागी' बहुत अच्छा लगा। कहानी 'नई सुबह' में छोटू चायवाला बालक अपनी कहानी सुनाकर पुरस्कार पाता है। यात्रा-वृत्तांत 'दिल्ली से हेग' हॉलैंड का वर्णन अच्छा लगा। ललित-निबंध 'पत्ता टूटा डाल से' में जैसे पत्ता डाल से टूट जाता है, वैसे ही मन भी टूटता है; उसका वर्णन है। 'माँ का दिल' लघुकथा में माँ-पुत्र को समझाती रहती है, पर पुत्र कहता है कि बेटा अब बच्चा नहीं रहा इंजीनियरिंग कॉलेज का स्टूडेंट है। 'साहित्य अमृत' का पूरा ही अंक पढ़ने योग्य है।

—विनोद शंकर गुप्त, हिसार (हरि.)

'साहित्य अमृत' साहित्यिक पत्रकारिता के सर्वोच्च मानक व आदर्श पर प्रतिष्ठित है। यह न केवल साहित्यिक बल्कि उससे जुड़े अनेक आवश्यक और अति महत्त्वपूर्ण विषयों को लेकर जन-जन तक पहुँचनेवाली भागीरथी है। 'गांधी विशेषांक' की इस उपलब्धि पर स्नेही संपादक सहित पूरी संपादकीय टीम को हृदय की अनंत गहराइयों से ढेर सारी शुभकामनाएँ। इस विशेषांक में गांधीजी के बचपन, घर, परिवार, समाज, राष्ट्र, पर्यावरण, स्वच्छता, धर्म, संस्कृति, दर्शन, शिक्षा, विद्यार्थी, साहित्य, किसान व कृषि, आधुनिक तकनीक, संप्रेषण, पत्रकारिता, स्वराज, स्वतंत्रता के साथ सत्य और अहिंसा के उनके प्रयोग आदि विषयों पर बहुत ही सम्यक् चिंतन प्रस्तुत किया है। इस संदर्भ में संबंधित लेखक बधाई के पात्र हैं कि वे सभी इन संबंधित क्षेत्रों में गांधी को अपना आदर्श मानकर उनसे प्रेरित होते हैं। गांधी से जुड़े विभिन्न प्रेरक प्रसंग और विचार वास्तव में जीवन को सत्यं-शिवं और सुंदरम् पर केंद्रित करते हैं। इन लेखों से जहाँ गांधी के संदर्भ में अनेक भ्रांतियाँ मिटेंगी, वहीं नए प्रतिमान भी स्थापित होंगे। अत: यह अंक बहुत ही पठनीय और संग्रहणीय है।

—डॉ. अशोक बैरागी, कैथल (हरियाणा)

'साहित्य अमृत' का जनवरी 'गांधी विशेषांक' अंक मिला। गांधीजी की १५०वीं जयंती पर 'साहित्य अमृत' ने पाठकों के लिए यादगार उपहार दिया है। इसे नववर्ष २०२० का अमूल्य नजराना कहना अतिशयोक्ति नहीं है। कुल २८२ पृष्ठों में गांधीजी के विचारों, कार्यों, सेवाओं को समेटने का दुरूह कार्य आपने अथक परिश्रम से संभव किया है, इसके लिए बधाई।

—विजयपाल सेहलंगिया, महेंद्रगढ़ (हरियाणा)

निश्चित ही यह 'गांधी विशेषांक' बहुमूल्य आलेखों से सज्जित है और गांधी को समग्र रूप से समझने की सामग्री उपलब्ध कराता है।

—कैलाश पंत, भोपाल (म.प्र.)

'साहित्य अमृत' का जनवरी का 'गांधी विशेषांक' बेहद संग्रहणीय है। आचार्य विनोबा भावे का लेख 'लोकनीति और गांधी' विमर्श के नए द्वार खोलता है। इस अंक की विशेषता है कि यह अंक सक्रिय राजनीतिज्ञों और विविध क्षेत्र के विशेषज्ञ लेखकों के विचारों से सजा है। इसमें जमीनी मुद्दों की थाह और बौद्धिक क्षेत्र की चिंताओं का सुख एक साथ मिल रहा है। संघ और गांधी के रिश्तों पर मनमोहन वैद्यजी का लेख हमें बताता है कि कैसे मीडिया और राजनीति के दुष्प्रचार से एक प्यारे रिश्ते को लोक-विमर्श में हाशिए लगा दिया गया, किंतु सत्य देर-सबेर सामने आता ही है। 'स्वराज्य और स्वतंत्रता' शीर्षक से अपने संपादकीय लेख में हेमंत कुकरेतीजी ने विशद विवेचन किया है। ऐसे महामानव को याद करके आपने एक बड़ा काम किया है। पूरे 'साहित्य अमृत' परिवार को इस अंक के लिए बधाई।

यह अंक देखते-देखते सूचना मिली कि आदरणीय श्यामसुंदरजी हमारे बीच नहीं रहे। सिर्फ प्रभात प्रकाशन के प्रमुख नहीं, बल्कि एक अच्छे मनुष्य के नाते उन्हें याद किया जाएगा। उनकी मुसकान, भोलापन, बालसुलभ खिलखिलाहट सबकुछ याद आते हैं। उनका होना हमारे लिए एक संबल था। वे हमारे संरक्षक की भूमिका में थे। उनका होना जिंदगी में

भरोसे का होना था। लक्ष्यनिष्ठ जीवन के वे उदाहरण थे। साहित्य की सेवा में उन्होंने जो योगदान किया और जैसी परंपराएँ स्थापित कीं, उसके लिए उन्हें भुलाना कठिन है।

—प्रो. संजय द्विवेदी, भोपाल (म.प्र.)

'साहित्य अमृत' का जनवरी 'गांधी विशेषांक' के रूप में पढ़ने को मिला। इस विशेषांक की खासियत यह रही कि हर लेख से हमें गांधीजी के बारे में कुछ-न-कुछ नया और अनजाना जानने-समझने को मिला। मैं किसी एक लेखक की तारीफ नहीं कर सकता, इसलिए इस विशेषांक की हर रचना अपनी छाप मेरे दिल पर छोड़ गई। 'साहित्य अमृत' के विशेषांकों की श्रृंखला में यह विशेषांक भी 'मील का पत्थर' साबित हुआ। इस विशेषांक को मैं यादगार धरोहर मानता हूँ।

—बद्री प्रसाद वर्मा 'अनजान', गोरखपुर (उ.प्र.)

'साहित्य अमृत' का जनवरी का 'गांधी विशेषांक' प्राप्त हुआ। महात्मा गांधी को विभिन्न दृष्टिकोणों से विभिन्न लेखकों ने विभिन्न आलेखों के द्वारा पाठकों के समक्ष बहुत ही सौंदर्यात्मक शैली में परोसा है। सभी बधाई के पात्र हैं। साथ ही संपादक मंडल का विवेकपूर्ण संपादन भी सराहनीय है। यों तो महात्मा गांधी का जीवन स्वयं ही संदेश है, लेकिन उनकी आत्मकथा पुस्तक 'सत्य के साथ मेरे प्रयोग' उनके व्यक्तित्व और कृतित्व का स्पष्ट दर्पण है। विश्व के महानतम विद्वानों ने भी गांधीजी की जीवनशैली पर आश्चर्य और प्रशंसा बखानी है। टॉलस्टॉय को अपना पथ-निर्देशक और तिलक को अपना गुरु माननेवाले गांधी वर्तमान में भी उतने ही प्रासंगिक हैं, जितने अपने जीवनकाल में रहे।

—डॉ. रजनी सिंह, बुलंदशहर (उ.प्र.)

'साहित्य अमृत' का 'महात्मा गांधी विशेषांक' मिला। अद्‌भुत, संग्रहणीय, अमूल्य निधि है यह अंक। संभवत: आपको विदित होगा, मैंने कभी प्रकाशन विभाग के निदेशक/महानिदेशक के रूप में गांधी वाङ्मय सीरीज में सौ खंडों का प्रकाशन किया था। 'साहित्य अमृत' का यह अंक उसी महती कार्य का एक छोटा और स्वागत योग्य लघु प्रयास है।

—डॉ. श्याम सिंह 'शशि', नई दिल्ली

'साहित्य अमृत' का जनवरी का 'गांधी विशेषांक' मिला। सबसे पहले नरेंद्र मोदीजी द्वारा लिखा आलेख 'क्यों भारत और दुनिया को है गांधी की जरूरत' उन कारणों एवं विषयों पर प्रकाश डालता है, जिनके लिए गांधीजी को जाना और समझा जाता है। आनंदीबेन पटेल द्वारा लिखित आलेख 'सभी के लिए अनुकरणीय गांधी का विराट् जीवन', यह सही भी है कि गांधीजी का जीवन सभी देशवासियों के लिए ही नहीं बल्कि विदेशियों के लिए भी अनुकरणीय है। बद्रीप्रसाद वर्मा 'अनजान' द्वारा लिखित कविता 'एक बार फिर आओ गांधी' सुंदर-अच्छी लगी। इसके अलावा भी अनेक जाने-माने लेखकों ने अपने-अपने आलेखों द्वारा अपने-अपने विचार-संस्मरण प्रस्तुत किए हैं। गांधीजी के विषय में जितना भी लिखा जाए, उतना ही कम है, क्योंकि वे एक ऐसे ही व्यक्ति थे। यह अंक पढ़ने एवं विचार करने के साथ अपने पास रखनेलायक अंक है।

—ब्रजमोहन जैन, दिल्ली

'साहित्य अमृत' का जनवरी २०२० 'गांधी विशेषांक' प्राप्त हुआ। विश्वविभूति महात्मा गांधी के १५०वें जयंती वर्ष के उपलक्ष्य में आलोच्य अंक कई दृष्टियों से अपने आप में नवीनता, उत्कृष्टता, उपादेयता लिये अखिल भारतीय स्तर पर अपनी पहचान तो कायम करता ही है, विश्व-स्तर पर भी अपनी विशिष्ट छवि-छाप छोड़ता है। यदि अंक में विषय और भावपक्ष को देखें तो गांधीजी के आत्म-चिंतन, धार्मिक अनुभव, सामाजिक-सांस्कृतिक अभिमत, मानवतावादी सोच और धर्म-दर्शन संबंधी तार्किक दृष्टि से मनीषी विद्वानों ने अपने-अपने आलेखों में विचार व्यक्त किए हैं और गहन भाव-बोध से रूबरू कराया है। प्रतिस्मृति में आचार्य विनोबा भावे का लेख गांधीजी के सत्यवादी जीवन-दर्शन को बिंबित-प्रतिबिंबित करता है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी का मंतव्य 'क्यों भारत और दुनिया को है गांधी की जरूरत' गांधीजी की प्रासंगिकता को पुष्ट करता है। मोदीजी ने बड़ी बारीकी से महात्माजी के जीवन-चरित्र, जो विश्व जनमानस को प्रेरणा देता है, को उद्‌घाटित किया है और अनेक खूबियों को रेखांकित भी। इसी क्रम में सभी के लिए अनुकरणीय गांधीजी के विराट् जीवन के विविध पक्षों को आनंदीबेन पटेल (राज्यपाल उ.प्र.) ने अद्‌भुत वैचारिक आयाम दिया है। वस्तुत: गांधीजी एक व्यक्ति नहीं, एक विचार थे, एक दूरदर्शी चिंतक-विचारक थे, जिसका विवेचन सर्वश्री मृदुला सिन्हा, मनमोहन वैद्य और कृष्णदत्त पालीवाल जैसे विश्रुत विद्वानों ने शब्दबद्ध किया है। 'साहित्य अमृत' बुनियादी तौर पर एक खास तरह की संवेदनशील प्रतिभा से, शक्तिशाली व्यक्तित्व से, विजन से, वजूद से, अनुभव से, जीवन-दर्शन से प्रबुद्ध पाठकों को अहसास कराती है। निस्संदेह गांधीजी की १५०वीं जयंती के उपलक्ष्य में यह अंक प्रकाशित कर उन्हें सेलीब्रेट किया है।

—डॉ. राहुल, दिल्ली

'साहित्य अमृत' का जनवरी-२० माह का 'गांधी विशेषांक' समय से मिल गया। विशेषांकों की श्रृंखला में यह विशेषांक भी मील का पत्थर साबित हुआ है। 'साहित्य अमृत' जैसे भारी-भरकम और उत्कृष्ट सामग्री से लैस विशेषांक शायद ही कोई अन्य पत्रिका निकाल पाती है। यह देखकर ताज्जुब हो रहा है कि प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी, मृदुला सिन्हा, आनंदीबेन, रमेश पोखरियाल 'निशंक' जैसे अत्यंत व्यस्त लोगों ने भी गांधीजी को अपनी शब्दांजलि प्रस्तुत की है। गांधीजी के व्यक्तित्व-कृतित्व तथा अब तक सामने न आ पाए विभिन्न पहलुओं पर विद्वान् लेखकों ने तथ्यपरक और प्रामाणिक आँकड़ों के साथ प्रकाश डाला है। गांधीजी अपनी विशेषताओं के कारण भारत ही नहीं, विश्ववंद्य हैं। उनके विचारों की प्रासंगिकता उनके अपने समय में तो थी ही, विश्व में बढ़ रहे तनाव के बीच आज वे ज्यादा प्रासंगिक हो उठे हैं। दुनिया को उनके विचारों की बेहद जरूरत है। गांधीजी ने आजादी की लड़ाई को जन-जन तक पहुँचाया। वे स्वदेशी के सबसे बड़े हिमायती थे। लघु तथा कुटीर उद्योगों की उन्होंने हमेशा मुखालफत की। एक इनसान के नाते उनसे कुछ भूलें भी हुईं, उन्हें भी विद्वान् लेखकों ने दिग्दर्शित किया है। सार रूप में सभी ने गांधीजी को एक इनसान नहीं, विचार माना है। गांधीजी के १५०वीं जयंती के वर्ष में 'साहित्य अमृत' ने उन्हें शानदार श्रद्धांजलि अर्पित की है। संपादक मंडल एवं सभी विद्वान् लेखकों को बहुत-बहुत शुभकामनाएँ।

—आनंद शर्मा, दिल्ली

वर्ग पहेली (१७३)

अगस्त २००५ अंक से हमने '**वर्ग पहेली**' प्रारंभ की, जिसे सुप्रसिद्ध शिक्षाविद् एवं ज्ञान-विज्ञान की अनेक पुस्तकों के लेखक **श्री विजय खंडूरी** तैयार कर रहे हैं। हमें विश्वास है, यह पाठकों को रुचिकर लगेगी; इससे उनका हिंदी ज्ञान बढ़ेगा और पूर्व की भाँति वे इसमें भाग लेकर अपना ज्ञान परखेंगे तथा पुरस्कार में रोचक पुस्तकें प्राप्त कर सकेंगे। भाग लेनेवालों को निम्नलिखित नियमों का पालन करना होगा—

१. प्रविष्टियाँ छपे कूपन पर ही स्वीकार्य होंगी।
२. कितनी भी प्रविष्टियाँ भेजी जा सकती हैं।
३. प्रविष्टियाँ २९ फरवरी, २०२० तक हमें मिल जानी चाहिए।
४. पूर्णतया शुद्ध उत्तरवाले पत्रों में से ड्रॉ द्वारा दो विजेताओं का चयन करके उन्हें दो सौ रुपए मूल्य की पुस्तकें पुरस्कारस्वरूप भेजी जाएँगी।
५. पुरस्कार विजेताओं के नाम-पते अप्रैल २०२० अंक में छापे जाएँगे।
६. निर्णायक मंडल का निर्णय अंतिम तथा सर्वमान्य होगा।
७. अपने उत्तर '**वर्ग पहेली**', **साहित्य अमृत, ४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-२** के पते पर भेजें।

वर्ग पहेली (१७१) का शुद्ध हल

१ क	लं	२ क	■	३ भा	■	४ अ	वा	५ क
प	■	६ म	ह	७ र	बा	नी	■	ल्प
८ ट	९ ह	नी	■	■	१० ल	ति	या	ना
■	११ मा	य	१२ का	■	गो	■	■	चि
१३ गु	ल	■	१४ मो	टा	पा	■	१५ प	त्र
ड़	■	■	द्दी	■	१६ ल	१७ प	ट	■
१८ गु	प	१९ चु	प	■	■	२० ह	ल	२१ क
ड़ा	■	२२ ट	क	२३ ट	का	ना	■	बा
२४ ना	र	की	■	ट्टू	■	२५ वा	जि	ब

★ पुरस्कार विजेता ★

१. **श्री विपिन सिन्हा**
डी.एन. विहार, गैस गोदाम के पास
कोटा रोड, गुढ़ियारी
रायपुर (छत्तीसगढ़)
दूरभाष : ९७७०९६२२०१

२. **श्री राजकुमार राव**
मुख्याध्यापक, राजकीय माध्यमिक
स्कूल, पड़तल, पो.-ढाणा
जिला-महेंद्रगढ़ (हरियाणा)
दूरभाष : ९४६६८३८७७५

पुरस्कार विजेताओं को हार्दिक बधाई।

वर्ग-पहेली १७१ के अन्य शुद्ध उत्तरदाता हैं—सर्वश्री ब्रह्मानंद 'खिच्ची', खुशी 'खिच्ची' (महेंद्रगढ़), विजयपाल सेहलंगिया (सेहलंग), फकीरचंद ढुल (कैथल), अमरदेव शर्मा (सोलन), मोहन उपाध्याय (अजमेर), ऋतंभरा पाठक (झाबुआ), रत्ना वार्ष्णेय, दिनकर सहल, सुभाष शर्मा (दिल्ली), शोभा दानी (नोएडा), रामप्रकाश राय (गोरखपुर), सुदेश सिंह (मेरठ), जीवन पाठक (कानपुर), सतनाम उत्प्रेती (अल्मोड़ा)।

बाएँ से दाएँ—

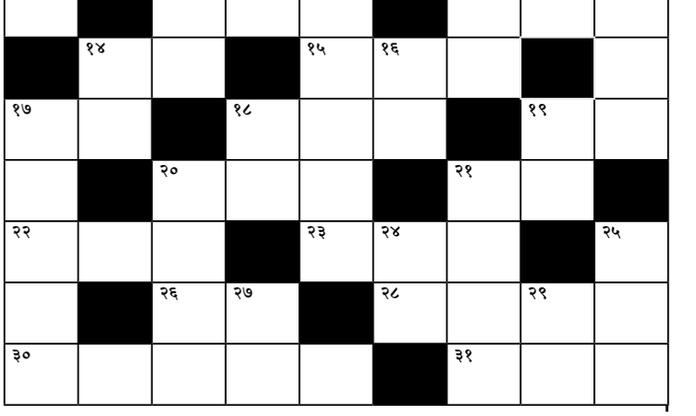

१. मदिरा (३)
४. अनाथ बच्चों के लिए बना आवास (५)
८. आदेशालय, हुक्म करने की जगह (४)
१०. महीना (२)
११. दिन, दिवस (३)
१३. किसी कृति का रचयिता (३)
१४. रात्रि में ठंडी हुई हवा की आर्द्रता (२)
१५. सोते से उठाना (३)
१७. आग की ज्वाला, लपट (२)
१८. पवित्र माना जानेवाला (३)
१९. पानी (२)
२०. पुस्तक का पृष्ठ (३)
२१. बुद्धि (२)
२२. विश्वास, एतबार (३)
२३. वट वर्ग के अंतर्गत आनेवाला एक प्रकार वृक्ष (३)
२६. कोयले के रंग का, स्याह (२)
२८. सघन होने की अवस्था (४)
३०. शहरी व्यक्ति (५)
३१. अपने स्थान से हटना, खिसकना (३)

ऊपर से नीचे—

१. दोष को दबाने की क्रिया; तृप्ति, दमन (३)
२. पथ, मार्ग (२)
३. बकबक करने की प्रवृत्ति (४)
५. बाबर....., बाबर की आत्मलिखित जीवनी (२)
६. अनुमान लगाना, आँकना (२,२)
७. सुगंधित (५)
९. महीना (२)
१२. चंद्रमा, शशि, निशाकर (५)
१४. बरफ के गोल-गोल सख्त खंड (२)
१६. शरीर (२)
१७. सुशोभित, शोभित, सुंदर (५)
१८. सेतु (२)
१९. बरताव का ढंग (२)
२०. कलाकार (४)
२१. श्मशानघाट (४)
२४. और अधिक नहीं, इतना बहुत है! (२)
२५. तंग करना, दुःख देना (३)
२७. ज्वालामुखी से निकलनेवाला गरम द्रव (२)
२९. पाइप का वह सिरा, जिसमें टोंटी लगी होती है (२)

वर्ग पहेली (१७२) का हल अगले अंक में।

वर्ग पहेली (१७३)

१	२	३	■	४	५	६		७
८			९	■	१०		■	
	■	११		१२	■	१३		
■	१४			१५	१६		■	
१७		■	१८			■	१९	
	■	२०			■	२१		■
२२			■	२३	२४		■	२५
	■	२६	२७	■	२८		२९	
३०					■	३१		

प्रेषक का नाम : ....

पता : ....

....

....

दूरभाष : ....

श्री ऋषि राज की तीन पुस्तकें लोकार्पित

२७ दिसंबर को नई दिल्ली के कॉन्स्टीट्यूशन क्लब के डिप्टी स्पीकर हॉल में जाने-माने यात्रा लेखक एवं ब्लॉगर श्री ऋषि राज की सद्य:प्रकाशित तीन पुस्तकों 'एक भारतीय की जापान यात्रा', '५० महान् स्वतंत्रता सेनानी' एवं '50 Great Freedom Fighters' का लोकार्पण केंद्रीय सड़क परिवहन और राष्ट्रीय राजमार्ग राज्य मंत्री मान. जनरल वी.के. सिंह के करकमलों से संपन्न हुआ। कार्यक्रम की अध्यक्षता दिल्ली मेट्रो के प्रबंध निदेशक डॉ. मंगू सिंह ने की। □

'कड़वाहट मीठी सी' कृति लोकर्पित

११ जनवरी को मुरादाबाद में साहित्यिक संस्था 'अक्षरा', 'सवेरा', 'अंतरा' एवं 'हिंदी साहित्य सदन' के संयुक्त तत्त्वावधान में डॉ. मक्खन मुरादाबादी की काव्य-कृति 'कड़वाहट मीठी सी' का लोकार्पण संपन्न हुआ। अध्यक्षता डॉ. माहेश्वर तिवारी ने की, मुख्य अतिथि डॉ. आर.सी. शुक्ला एवं विशिष्ट अतिथि श्री मंसूर 'उस्मानी' रहे। संचालन श्री योगेंद्र वर्मा 'व्योम' ने किया। अंत में डॉ. मक्खन मुरादाबादी ने एकल कविता-पाठ किया।□

'हथेलियों में चाँदनी' कृति लोकर्पित

६ जनवरी को मुरादाबाद में साहित्यिक संस्था 'अक्षरा' के तत्त्वावधान में श्रीमती विशाखा तिवारी की काव्य-कृति 'हथेलियों में चाँदनी' का लोकार्पण हुआ। मुख्य अतिथि श्री मंसूर 'उस्मानी' एवं विशिष्ट अतिथि डॉ. मक्खन मुरादाबादी रहे। सर्वश्री महेश्वरी तिवारी, योगेंद्र वर्मा 'व्योम', कृष्णकुमार 'नाज', जिया जमीर, हेमा तिवारी भट्ट, उन्मेष सिन्हा, प्रेमवती उपाध्याय, अशोक विश्नोई, मीना कौल, शिशुपाल 'मधुकर', पूनम बंसल, बबीता गुप्ता, संजय मिश्र, मनोज 'मनु', राजीव 'प्रखर', मोनिका 'मासूम' आदि ने अपने विचार व्यक्त किए। □

पुस्तकें लोकार्पित

२३ दिसंबर को लखनऊ में ज्ञान प्रसार संस्थान के तत्त्वावधान में श्रीमती नीरजा द्विवेदी की पुस्तक 'विलक्षण अनुभूतियाँ' एवं श्री महेश चंद्र द्विवेदी के यात्रा-वृत्तांत पुस्तक 'अनोखी यायावरी' के लोकार्पण कार्यक्रम की अध्यक्षता श्री के. विक्रम राव ने की एवं मुख्य अतिथि श्री शैलेंद्र सागर (संपादक 'कथाक्रम') थे। संचालन डॉ. अंजना मिश्रा ने किया। □

लोकार्पण संपन्न

विगत दिनों साहिबाबाद में प्रतिष्ठित चैनल एवं पत्रिका 'टू मीडिया' के तत्त्वावधान में श्री चकलेश्वर पिलानिया एवं श्री विक्रमादित्य सांगवान द्वारा लिखित पुस्तक 'विशेष शिक्षा में दर्शनशास्त्र की उपयोगिता' के लोकार्पण एवं सम्मान कार्यक्रम की अध्यक्षता श्री हेमंत कुमार शर्मा 'दिल' ने की। मुख्य अतिथि डॉ. राकेश कुमार मिश्र 'तूफान', विशिष्ट अतिथि डॉ. चेतन आनंद एवं श्री ओमप्रकाश प्रजापति रहे। संचालन श्रीमती सोनिया शर्मा ने किया। इस अवसर पर सर्वश्री बबल सिन्हा, इंदु कुमार शर्मा, राजेश वर्मा, वीरसिंह हरित, मनोज कामदेव, विष्णुदत्त शर्मा, गोपाल गुप्ता 'गोपाल', राजीव सक्सेना 'विकल', सूक्ष्मलता महाजन, राजेंद्र महाजन, अनीता, शिवकुमार, हेमंत कुमार शर्मा 'दिल', नरेश सांगवान, सोनिया शर्मा, रंजीत शर्मा, वीरेंद्र सिंह, संजय कुमार गिरि, जयप्रकाश मिश्र, उमा शर्मा, गीतांजलि अरोड़ा, पारो चौधरी, भूपेंद्र राघव, पुष्पलता सिंह, चंचल वशिष्ठ, वी.एस. जयसवाल, अनीता पिलानिया, रीता जयसिंह, स्नेहलता भारती, कुमुद अनुजन्य ने काव्य-पाठ किया। टू मीडिया के सीईओ श्री ओमप्रकाश प्रजापति ने आभार व्यक्त किया। □

'चिकित्सा साहित्य संगम' विमोचित

४ जनवरी को नई दिल्ली के इंडिया इंटरनेशनल सेंटर में वरिष्ठ चिकित्सक साहित्यकार डॉ. अनिल चतुर्वेदी के ७५वें जन्मदिवस के उपलक्ष्य में उनकी तीन पुस्तकों 'चिकित्सा साहित्य संगम', 'डायबिटीज उपचार के १०१ टिप्स' एवं '101 Ways to Control Diabetes' का विमोचन संपन्न हुआ। कार्यक्रम की अध्यक्षता इंद्रप्रस्थ विश्वविद्यालय के उप-कुलपति डॉ. महेश वर्मा ने की। मौलाना मेडिकल कॉलेज के कुलपति डॉ. सुशील कुमार, साहित्यकार श्री अशोक चक्रधर, डॉ. लक्ष्मी शंकर वाजपेयी, वरिष्ठ कवि डॉ. बालस्वरूप राही ने डॉ. चतुर्वेदी के चिकित्सा-साहित्य के योगदान की विशेष चर्चा की। संचालन डॉ. निशीथ चतुर्वेदी ने किया। □

प्रतिष्ठित 'सरस्वती सम्मान' घोषित

के.के. बिरला फाउंडेशन द्वारा भारतीय साहित्य के लिए प्रवर्तित 'सरस्वती सम्मान' सन् १९९१ से दिया जा रहा है। इस सम्मान में पंद्रह लाख रुपए की पुरस्कार राशि के साथ प्रशस्ति व प्रतीक-चिह्न भेंट किया जाता है। श्री वासदेव मोही के सिंधी कहानी-संग्रह 'चेकबुक' को वर्ष २०१९ का उनतीसवाँ 'सरस्वती सम्मान' देने की घोषणा की गई है। □

उ.प्र. हिंदी संस्थान के सम्मान प्रदत्त

१ जनवरी को उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान के तत्त्वावधान में सम्मान समारोह का आयोजन संस्थान के यशपाल सभागार में किया गया। मुख्यमंत्री एवं उ.प्र. हिंदी संस्थान के अध्यक्ष श्री योगी आदित्यनाथ मुख्य अतिथि थे; अध्यक्षता उ.प्र. विधानसभा के अध्यक्ष श्री हृदय नारायण दीक्षित ने की। हिंदी संस्थान द्वारा प्रदान किए जानेवाले सम्मानों-पुरस्कारों की कुल संख्या १४७ है। इस वर्ष १३६ सम्मान-पुरस्कार दिए गए—'भारत भारती सम्मान' से डॉ. उषा किरण खान; 'लोहिया साहित्य सम्मान' से डॉ. मनमोहन सहगल; 'हिंदी गौरव सम्मान' से डॉ. बदरीनाथ कपूर; 'महात्मा गांधी सम्मान' से डॉ. श्रीभगवान सिंह; 'पं. दीनदयाल उपाध्याय साहित्य सम्मान' से डॉ. ओम् प्रकाश पांडेय; 'अवंतीबाई साहित्य सम्मान' से डॉ. कमल कुमार; 'राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन सम्मान' से श्री अरिबम ब्रज कुमार शर्मा; 'साहित्य भूषण सम्मान' से सर्वश्री सुरेश प्रकाश शुक्ल, रामदेव लाल विभोर, आद्या प्रसाद द्विवेदी, श्यामसुंदर दुबे, सुरेश बाबू मिश्र, प्रताप नारायण मिश्र, रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर', सूर्यपाल सिंह, चंद्रिका प्रसाद कुशवाहा, इंदीवर पांडेय, शशि तिवारी, नवनीत मिश्र, जगदीश तोमर, बद्री प्रसाद पंचोली, अशोक अग्रवाल, भगवानशरण भारद्वाज, उषा चौधरी; 'लोक भूषण सम्मान' से डॉ. शांति जैन; 'कलाभूषण सम्मान' से मनोज कुमार सिंह; 'विद्याभूषण सम्मान' से डॉ. जगमोहन सिंह राजपूत; 'विज्ञान भूषण सम्मान' से डॉ. प्रेमचंद्र स्वर्णकार; 'पत्रकारिता भूषण सम्मान' से डॉ. रमेश चंद्र त्रिपाठी; 'प्रवासी भारतीय हिंदी भूषण सम्मान' से डॉ. उदय नारायण गंगू; 'हिंदी विदेश प्रसार सम्मान' से डॉ. बंडार मेणिके विजेतुंग; 'बाल साहित्य भारती सम्मान' से सर्वश्री भैंरूलाल गर्ग; संजीव जायसवाल 'संजय' एवं सूर्य कुमार पांडेय;

'मधुलिमये साहित्य सम्मान' से डॉ. वेदप्रकाश पांडेय; 'पं. श्रीनारायण चतुर्वेदी साहित्य सम्मान' से रणविजय सिंह; 'विधि भूषण सम्मान' से श्री ब्रजकिशोर शर्मा; 'सौहार्द सम्मान' से सर्वश्री सुनील केशव देवधर, एच.एम. कुमारस्वामी, आजाद मिश्र, टी.सी. बसंता, राजेंद्र सिंह टोकी, अहिल्या मिश्र, पी. लता, अलमेलु कृष्णन, वेद कुमारी घई, अग्नि शेखर, वंशीधर शर्मा, भूपेंद्र राय चौधरी एवं ज्ञान प्रकाश टेकचंदानी; 'पं. मदन मोहन मालवीय विश्वविद्यालय स्तरीय सम्मान' से डॉ. रश्मि कुमार एवं डॉ. विजय कर्ण को सम्मानित किया गया।

वर्ष २०१८ में प्रकाशित पुस्तकों पर देय नामित पुरस्कार से सर्वश्री देवेंद्र 'देव' मिर्जापुरी, प्रताप नारायण सिंह, अमित कुमार मल्ल, शिवानंद सिंह 'सहयोगी', अशोक रावत, चंद्रपाल शर्मा, अनिल मिश्र, शीला मिश्र, सुधीर निगम, सोनी पांडेय, क्षमा शंकर पांडेय, राकेश तिवारी, कृष्ण बिहारी पांडेय, संजय सिंह, राम लखन शुक्ल, भोजराज सिंह 'भोज', कमलेश राय, राधाचरण गुप्त 'चरण', सुनीता सिंह, ओमप्रकाश दुबे 'प्रकाश', रामकृपाल 'कृपाल', अरविंद कुमार सिंह, उषा बनर्जी, प्रताप नारायण शुक्ल, हृदय गुप्त, रश्मि श्रीवास्तव, अशोक कुमार राय, दिनेश चंद्र श्रीवास्तव, श्रीप्रकाश मणि त्रिपाठी, संदीप कुमार तिवारी, कृष्ण कुमार मिश्र, आनंद प्रकाश, सुभाषचंद्र गुरुदेव, शिवमोहन यादव, मंजु शुक्ल को सम्मानित किया गया। 'सर्जना पुरस्कार' से सर्वश्री रवींद्रनाथ तिवारी, केदारनाथ शुक्ल, दीनानाथ शुक्ल, 'अमिताभ', मंजु लता श्रीवास्तव, मदन मोहन 'अरविंद', अनूप शुक्ल, अनूप सिंह, तरुण निशांत, उषा सिसोदिया, सोनरूपा विशाल, रौशन एहतेशाम, इंद्रजीत कौर, संजीव कुमार गंगवार, सतीश आर्य, मंजरी शुक्ला, रामसागर शुक्ल, गोपाल नारायण श्रीवास्तव, विजय शंकर पांडेय, हीरालाल मिश्र मधुकर, अनिता अग्रवाल, नरेश अग्रवाल, अनूप बरनवाल, राहुल, हरजीत सिंह, शिवप्रसाद त्रिपाठी, दिनकर चतुर्वेदी, नूतन पांडेय को सम्मानित किया गया। वर्ष २०१८ के 'हरिवंशराय बच्चन युवा गीतकार सम्मान' से सुश्री रश्मि शाक्य एवं 'पं. कृष्ण बिहारी वाजपेयी पुरस्कार' से सुश्री कोमल मौर्या, सूरज भान, आरिफ शमीन, मणि पांडेय एवं प्रीति सरोज ने को सम्मानित किया गया। 'सुभद्रा कुमारी चौहान महिला बाल साहित्य सम्मान' से श्रीमती सुषमा श्रीवास्तव व सोहनलाल द्विवेदी को; 'बाल कविता सम्मान' से श्री राजकुमार गुप्त व श्री अमृतलाल नागर को; 'बाल कथा सम्मान' से श्री राकेश चक्र को; 'शिक्षार्थी बाल चित्रकला सम्मान' से डॉ. उमेशचंद्र सिरसवारी व जगपति चतुर्वेदी को; 'बाल विज्ञान लेखन सम्मान' से सर्वश्री संतोष कुमार सिंह एवं उमाकांत मालवीय को, 'युवा बाल साहित्य सम्मान' से अखिलेंद्र तिवारी को समादृत किया गया। □

अमर उजाला शब्द सम्मान-२०१९ प्रदत्त

विगत दिनों मुंबई में आयोजित अमर उजाला सम्मान समारोह में हिंदी के प्रख्यात कथाकार श्री ज्ञानरंजन और मराठी के विख्यात कवि-उपन्यासकार श्री भालचंद्र नेमाड़े को सर्वोच्च 'आकाशदीप अलंकरण' से सम्मानित किया गया। सम्मानस्वरूप उन्हें पाँच-पाँच लाख रुपए की नकद राशि और प्रतीक-चिह्न अर्पित किए गए। 'उमर उजाला शब्द सम्मान-२०१९' के लिए पाँच अन्य हिंदी साहित्यकारों सर्वश्री ज्ञान चतुर्वेदी, गगन गिल, सुनीता बुद्धिराजा, अंबर पांडेय और उत्पल बैनर्जी को भी श्री गुलजार ने प्रतीक-चिह्न के साथ एक-एक लाख रुपए की राशि भेंट कर सम्मानित किया। □

'कथा-संधि' कार्यक्रम संपन्न

विगत दिनों नई दिल्ली में साहित्य अकादेमी द्वारा आयोजित कथा-संधि कार्यक्रम में प्रख्यात कथाकार श्री महेश कटारे ने अपनी दो कहानियाँ प्रस्तुत कीं। 'किवाड़' शीर्षक से सुनाई गई पहली कहानी में दो स्त्रियों कैलाशी और बतसिया द्वारा वर्तमान वर्ण-व्यवस्था के आर्थिक पक्षों को बड़ी मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया गया था। दूसरी कहानी 'गाँव का जोगी' में बहुत ही रोचक शैली में गाँव के जीवन संघर्षों को उकेरा गया है। कथा-पाठ के बाद सर्वश्री महेश दर्पण, लीलाधर मंडलोई, देवेंद्र कुमारी व अवधेश सिंह ने अपने विचार व्यक्त किए। संचालन साहित्य अकादेमी के संपादक श्री अनुपम तिवारी ने किया। □

जन्मदिवस मनाया गया

२९ दिसंबर को कानपुर में अवधी लोकनाट्य विशेषज्ञ और शिक्षाविद् आचार्य गोरेलाल त्रिपाठी का ९५वाँ जन्मदिवस 'आचार्य गोरेलाल त्रिपाठी स्मृति निधि' के तत्त्वावधान में मनाया गया। इस अवसर पर सिद्धनाथ मंदिर के पूज्य महंत बालयोगीजी एवं सर्वश्री सुरेश निझावन, दयालु पांडेय, विजयप्रकाश त्रिपाठी ने अपने भाव-सुमन अर्पित किए। समारोह में आचार्य त्रिपाठीजी को समर्पित स्मारिका 'पुष्पांजलि' व मासिक 'जयतु हिंदू विश्व' के नवीन जनवरी-२०२० अंक का लोकार्पण किया गया। सर्वश्री सुरेश निझावन, आशुतोष वाजपेयी, सुरेश शर्मा, मनीष त्रिपाठी, शशि शुक्ला, पंकज परदेसी, विनोश श्रीवास्तव, ओमनारायण शुक्ल, लल्लन वाजपेयी, अवधेश कुमार वाजपेयी को अंगवस्त्र, प्रतीक-चिह्न, माल्यार्पण, मोतीहार पहनाकर 'श्री गोरेलाल त्रिपाठी अवॉर्ड' से सम्मानित किया गया। संचालन सर्वश्री मनीष द्विवेदी व वेदप्रकाश शुक्ल ने किया और आभार डॉ. विजयप्रकाश त्रिपाठी ने माना। □

डॉ. नगेंद्र सिंह स्मृति समारोह संपन्न

२० दिसंबर को नई दिल्ली में इंटरनेशनल गुडविल सोसाइटी ऑफ इंडिया के अध्यक्ष डॉ. योगेंद्र नारायण के निर्देशन में आयोजित डॉ. नगेंद्र सिंह स्मृति-समारोह में मुख्य अतिथि राज्यसभा सांसद डॉ. सुब्रह्मण्यम स्वामी ने सीएए, हिंदू-मुसलिम डीएनए-समानता की विस्तृत व्याख्या की। समारोह के अध्यक्ष श्री ए. सूर्यप्रकाश (अध्यक्ष प्रसार भारती) ने देश में हुए निरर्थक प्रदर्शनों पर विस्तार से प्रकाश डाला। डॉ. शशि व डॉ. अमित जैन ने अतिथियों को संस्था की ओर से सम्मानित किया। □

रामेशदत्त दुबे स्मृति सम्मान आयोजन संपन्न

३० दिसंबर को सागर में प्रख्यात लेखक श्री रमेशदत्त दुबे की छठी पुण्यतिथि पर 'श्यामलम संस्था' तथा दुबे परिवार द्वारा आयोजित स्मृति कार्यक्रम के मुख्य अतिथि डॉ. आनंदप्रकाश त्रिपाठी थे व अध्यक्ष डॉ. सुरेश आचार्य। पूर्व सांसद श्री लक्ष्मीनारायण यादव ने अपनी व्यक्तिगत मित्रता के संस्मरण सुनाए। कवि-कथाकार डॉ. राजेश दुबे को 'रमेशदत्त दुबे साहित्य सम्मान-२०१९' से सम्मानित किया गया। संचालन डॉ. महेश तिवारी ने किया। स्वर्गीय दुबेजी की धर्मपत्नी श्रीमती मदन कुमारी दुबे ने आभार प्रदर्शन किया। □

दो दिवसीय अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी संपन्न

१९ व २० दिसंबर को महाराष्ट्र की रयत शिक्षण संस्था शताब्दी

महोत्सव के उपलक्ष्य में दहिवडी कॉलेज के हिंदी विभाग, माणदेश तरंग वाहिनी, म्हसवड और पूर्व छात्र संगठन के संयुक्त तत्त्वावधान में 'हिंदी साहित्य : भारतीय समाज और विविध विमर्श' विषय पर दो दिवसीय अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी संपन्न हुई। इसमें अमरीका के विस्कॉन्सिन विश्वविद्यालय के भाषाशास्त्र विभाग की प्रमुख डॉ. इसाबेल ड्रक उपस्थित थीं। संगोष्ठी में आदिवासी, नारी, दलित, घुमंतू, धर्म, किन्नर आदि विषयों पर विचार-विमर्श हुआ। □

राष्ट्रीय एकता कवि-सम्मेलन संपन्न

२५ दिसंबर को पूर्व प्रधानमंत्री व भारतरत्न कविवर श्री अटल बिहारी वाजपेयी के ९५वें जन्मदिवस पर राष्ट्रीय एकता कवि-सम्मेलन का आयोजन 'गीत चाँदनी' के तत्त्वावधान में संपन्न हुआ। श्रीमती रत्नकला मिश्र ने कार्यक्रम की अध्यक्षता की और श्री गोविंद अक्षय ने संचालन किया। कवि-सम्मेलन में श्रीमती कुमुद बाला व श्री नेहपाल सिंह वर्मा ने अपने विचार रखे। सर्वश्री शिल्पी भटनागर, सीताराम माने, उमा देवी सोनी, सूरज प्रसाद सोनी, कुंज बिहारी गुप्ता, दुर्गाराज पटून, गोविंद मिश्र, कुमुद बाला, बाबुराव कांबले, विजय लक्ष्मी बसवा, दीपक चिंडालिया वाल्मीकि, डी. प्रेमराज, सदानंद, रत्नकला मिश्र, गोविंद अक्षय, सुषमा बैद आदि कवियों ने काव्य पाठ किया। उपस्थित अभ्यागतों को श्री जी. अश्विन कुमार और श्रीमती मीनाक्षी ने सम्मानित किया। □

लिटरेरिया-२०१९ संपन्न

१३ से १५ दिसंबर के बीच कोलकाता में नीलांबर संस्था का वार्षिकोत्सव 'लिटरेरिया' आयोजित हुआ। जिसके माध्यम से साहित्य और अन्य कलाओं के आपसी संवाद के लिए एक बेहतर मंच उपलब्ध कराया। इस वर्ष का केंद्रीय विषय 'मिथ, फैंटेसी और यथार्थ' था, जिसे केंद्र में रखकर वक्ताओं ने अपनी बात रखी। □

राजभाषा मंच कार्यक्रम संपन्न

२४ दिसंबर को नई दिल्ली में साहित्य अकादेमी द्वारा आयोजित राजभाषा मंच कार्यक्रम के अंतर्गत प्रख्यात लेखक श्री प्रेमपाल शर्मा का व्याख्यान संपन्न हुआ। 'महात्मा गांधी और भारतीय भाषाएँ' में उन्होंने कहा कि हमने भाषा के प्रश्न पर गांधी को अभी तक क्यों याद नहीं किया है। गांधी ने भाषा की जिस ताकत को पहचाना, ऐसा सौ सालों में कोई नहीं कर पाया। संचालन श्री अनुपम तिवारी ने किया। □

अमृता प्रीतम जन्मशतवार्षिकी संगोष्ठी संपन्न

२० दिसंबर को साहित्य अकादेमी तथा पंजाबी अकादमी, दिल्ली के संयुक्त तत्त्वावधान में प्रख्यात लेखिका श्रीमती अमृता प्रीतम की जन्मशताब्दी के अवसर पर द्वि-दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी में उद्घाटन वक्तव्य प्रख्यात कवि श्री सुरजीत पातर ने दिया। आरंभिक वक्तव्य पंजाबी परामर्श मंडल की संयोजक श्रीमती वनीता ने दिया। स्वागत वक्तव्य साहित्य अकादेमी के सचिव श्री के. श्रीनिवासराव ने तथा धन्यवाद ज्ञापन पंजाबी अकादमी के सचिव श्री गुरभेज सिंह गुराया ने दिया। दूसरा सत्र 'अमृता प्रीतम के साहित्य' पर केंद्रित था, उसमें श्री जसविंदर सिंह की अध्यक्षता में सुश्री धनवंत कौर ने उनकी आत्मकथा 'रसीदी टिकट' पर केंद्रित अपना वक्तव्य तथा सुश्री रेणुका सिंह ने उनसे संबंधित कुछ स्मृतियों को साझा किया। 'लेखिकाओं की दृष्टि में अमृता प्रीतम' विषय पर केंद्रित सत्र की अध्यक्षता सुश्री मालाश्री लाल ने की तथा सर्वश्री निरुपमा दत्त एवं अमिया कुँवर ने उनके लेखकीय व्यक्तित्व का आकलन किया। □

श्रीमती अर्चना पैन्यूली का रचना-पाठ संपन्न

१९ दिसंबर को साहित्य अकादेमी के 'प्रवासी मंच' कार्यक्रम के अंतर्गत डेनमार्क से पधारी प्रख्यात हिंदी लेखिका श्रीमती अर्चना पैन्यूली ने अपनी कहानी 'सिंगल मदर से सुपर मदर' प्रस्तुत की। यह उनकी प्रभात प्रकाशन से प्रकाशित संग्रह 'कितनी माँएँ हैं मेरी…' में संकलित है। कहानी अनब्याही माँ की थी, जिसने वैज्ञानिक तकनीक से एक बच्चे को जन्म दिया। इस कहानी में समाज की वर्जनाओं के विरुद्ध अंतर्द्वंद्वों और मनुष्य की निज की गरिमा को प्रस्तुत किया गया था। कहानी-पाठ के बाद प्रख्यात आलोचक डॉ. कमल किशोर गोयनका ने कहा कि कहानी बहुत अलग तरह की है और भारतीय समाज में अभी इस तरह की स्थितियों के लिए स्वीकार्यता बहुत कम है। संचालन श्री अनुपम तिवारी ने किया। □

सम्मान समारोह संपन्न

विगत दिनों हिंदुस्तानी एकेडेमी, प्रयागराज के सभागार में आयोजित पं. हेरंब मिश्र स्मृति शिखर सम्मान-२०१९ समारोह के अध्यक्ष कुलपति प्रो. पारसनाथ पांडेय तथा पूर्व कुलपति प्रो. एस.डी. त्रिपाठी ने दीप-प्रज्वलन किया। प्रथम चरण में सर्वश्री रमाशंकर श्रीवास्तव, अभिलाष नारायण व प्रदीप भटनागर ने अपने विचार रखे। द्वितीय चरण में सर्वश्री रहसबिहारी द्विवेदी, रतन दीक्षित, शाहिद नकवी को क्रमशः 'साहित्य-शिखर सम्मान', 'पत्रकारिता-शिखर सम्मान' तथा 'युवा मीडिया-शिखर सम्मान' से समादृत किया गया। डॉ. पृथ्वीनाथ पांडेय ने समारोह का संयोजन-संचालन किया। □

बाल साहित्य सम्मान समारोह संपन्न

१५ दिसंबर को शाहजहाँपुर में गांधी पुस्तकालय द्वारा प्रसिद्ध बाल साहित्यकारों श्री घमंडीलाल अग्रवाल और श्री चक्रधर शुक्ल को सातवाँ और आठवाँ 'प्रभा स्मृति बाल साहित्य सम्मान' प्रदान किया गया। समारोह के अध्यक्ष कार्यवाहक जिलाधिकारी श्री महेंद्र सिंह तंवर ने सम्मानस्वरूप दोनों रचनाकारों को प्रशस्ति-पत्र, प्रतीक-चिह्न, अंगवस्त्र, श्रीफल, तीन हजार एक सौ रुपए की राशि भेंट की। इसके बाद बाल कविता-गोष्ठी में सर्वश्री राजा भइया गुप्ता, रामकुमार गुप्त, गौरी शंकर वैश्य विनम्र और बृजेश मिश्र, राघव शुक्ल, दिनेश रस्तोगी, सरिता देवी, मुस्कान, दिव्यांशी, आरुष, मुसकान, प्रतीक, गोविंद, दक्षिता, काव्या, उत्कर्ष, अभियुग, ओजस्वी, अर्णव, पहल गुप्ता आदि बच्चों ने कविताएँ सुनाईं। सर्वश्री अजय गुप्त व शिवाजी गुप्त ने धन्यवाद ज्ञापन किया और संचालन श्री ललित हरि मिश्र ने किया। □

'कथा समवेत' पत्रिका का वार्षिक कार्यक्रम संपन्न

२० दिसंबर को सुलतानपुर में साक्षी सृजन संवाद समिति एवं 'कथा समवेत' पत्रिका के संयोजन में 'माँ धनपती देवी स्मृति कथा साहित्य सम्मान समारोह एवं साहित्यिक संगोष्ठी-२०१९' का आयोजन किया गया, जिसमें श्री आद्या प्रसाद सिंह 'प्रदीप' की अध्यक्षता और श्री अनुमान प्रसाद मिश्र के मुख्य आतिथ्य में कहानी प्रतियोगिता में सफल कहानीकारों और प्रतियोगिता के निर्णायकों को सम्मानित किया गया। सर्वश्री शोभनाथ शुक्ल,

संगीता शुक्ला, चित्रेश, जे.पी. सिंह और मंचस्थ अतिथियों द्वारा सफल हुए कहानीकारों सर्वश्री मृदुला शुक्ला, शिवप्रसाद, विवेक द्विवेदी और अखिलेश श्रीवास्तव 'चमन' को अंगवस्त्र, स्मृति-चिह्न, प्रमाण-पत्र और नकद धनराशि प्रदान की गई। □

प्रदर्शनी लगाई गई

१ जनवरी को दिल्ली पब्लिक लाइब्रेरी द्वारा सामुदायिक कार्यक्रम के अंतर्गत गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति, संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार तथा गुरुद्वारा प्रबंधक समिति, दिल्ली के सहयोग से महात्मा गांधीजी की १५०वीं जयंती तथा गुरु नानक देवजी की ५५०वीं जयंती के उपलक्ष्य में दिल्ली पब्लिक लाइब्रेरी मुख्यालय के परिचालन विभाग में प्रदर्शनी का आयोजन किया गया। इस प्रदर्शनी में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी, गुरुनानक देव तथा लौहपुरुष सरदार वल्लभ भाई पटेल के जीवन एवं दर्शन पर आधारित पुस्तकों को प्रदर्शित किया गया। प्रदर्शनी का उद्घाटन डॉ. श्याम सिंह 'शशि' ने किया। सर्वश्री रामशरण गौड़, बबीता गौड़ एवं विनोद बब्बर भी उपस्थित रहे। □

भारतीय-ईरानी लेखक सम्मिलन संपन्न

७ जनवरी को साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली और ईरान के दूतावास के संयुक्त तत्त्वावधान में 'भारतीय-ईरानी लेखक सम्मिलन' का आयोजन किया गया। उद्घाटन सत्र की विशिष्ट अतिथि प्रख्यात लेखिका श्रीमती नासिरा शर्मा थीं व ईरान के सांस्कृतिक परामर्शदाता श्री मोहम्मद अली रब्बानी ने अध्यक्षता की। साहित्य अकादेमी के सचिव श्री के. श्रीनिवासराव ने अतिथियों का अंगवस्त्र से स्वागत किया। ईरान और भारत के कवियों का काव्य-पाठ हुआ, जिसमें सर्वश्री अली रजा कजवे, हादी सईदी कैसरी (ईरान), ऐन-उल हसन, इराक रजा जैदी और बलराम शुक्ल (भारत) ने अपनी मूल तथा अनूदित रचनाएँ प्रस्तुत कीं। संवाद-सत्र का विषय था—'भारतीय-ईरानी सांस्कृतिक संबंध', जिसमें सर्वश्री अहमद अली हैदरी (ईरान), राजेंद्र कुमार (भारत), रख्शंदा जलील (भारत) और हुसैनी पूर नीकनाम (ईरान) ने अपने विचार व्यक्त किए। संचालन श्री एहसानुल्लाह शुक्रुल्लाही ने किया। □

डॉ. गंगाप्रसाद विमल को श्रद्धांजलि

१ जनवरी को नई दिल्ली में नागरी लिपि परिषद् के पूर्व अध्यक्ष और प्रख्यात साहित्यकार डॉ. गंगाप्रसाद विमल की स्मृति में एक श्रद्धांजलि सभा का आयोजन किया गया। परिषद् के महामंत्री डॉ. हरिसिंह पाल ने कहा कि डॉ. गंगाप्रसाद विमल वर्ष २००२-०४ तक नागरी लिपि परिषद् के अध्यक्ष रहे। नागरी लिपि परिषद् की मुख पत्रिका 'नागरी संगम' के प्रधान संपादक रहे। परिषद् के अध्यक्ष डॉ. परमानंद पांचाल ने कहा कि डॉ. विमल नागरी लिपि के प्रचार-प्रसार के लिए पूरी तरह समर्पित रहे। सर्वश्री शहाबुद्दीन शेख, आचार्य ओम प्रकाश, ब्रजपाल सिंह संत, बाबा कानपुरी, विनोद बब्बर ने भी अपने श्रद्धा-सुमन अर्पित किए। □

राष्ट्रीय नागरी लिपि संगोष्ठी संपन्न

९ जनवरी को नागरी लिपि के प्रचार-प्रसार के लिए समर्पित नागरी लिपि परिषद् के तत्त्वावधान में २८वें विश्व पुस्तक मेले में विश्व प्रवासी दिवस के अवसर पर आयोजित राष्ट्रीय नागरी संगोष्ठी की अध्यक्षता परिषद् के अध्यक्ष डॉ. परमानंद पांचाल ने की। मुख्य अतिथि के रूप में केंद्रीय हिंदी निदेशालय के निदेशक डॉ. अवनीश कुमार उपस्थित थे। विशिष्ट अतिथियों में सर्वश्री श्यामसिंह शशि, नारायण कुमार, राकेश कुमार यादव, वीरेंद्र कुमार यादव व योगेंद्र नाथ शर्मा अरुण उपस्थित थे। डॉ. हरिसिंह पाल ने बीज वक्तव्य दिया। इस अवसर पर 'महात्मा गांधी और राष्ट्रभाषा हिंदी' विषय पर श्री विनोद बब्बर व श्री ओम प्रकाश शास्त्री ने वक्तव्य दिया। 'सूचना प्रौद्योगिकी और नागरी लिपि' विषय पर श्री श्यामसुंदर कथूरिया ने विस्तार से व्यावहारिक प्रशिक्षण दिया। समारोह में परिषद् की मुख पत्रिका 'नागरी संगम' के 'मणिपुर सम्मेलन विशेषांक' और डॉ. जे.सी. बत्रा की सिरायकी भाषा की देवनागरी लिपि में लिखे गजल-संग्रह, डॉ. संदीप कुमार शर्मा की 'चलें प्रकृति की ओर', श्री राजकुमार दलाल की पुस्तक 'आओ हिंदी सीखें' पुस्तकों का भी लोकार्पण किया गया। प्रो. अवनीश कुमार ने परिषद् के कार्यों की भूरि-भूरि प्रशंसा की। अंत में श्री ब्रजपाल सिंह संत के संचालन में सर्वश्री बाबा कानपुरी, नत्थीसिंह बघेल, अरुण कुमार पासवान, उमाकांत खुबालकर, वसुधा कनपुरिया, नरेश शामली, चंद्रप्रकाश गुप्ता, सुरेश पाल वर्मा जसाला, डी.पी. मिश्रा, जितेंद्र सिंह, सुषमा शैली, हिमांशु, मो. इलयास और जगदीश प्रसाद मीणा ने अपनी कविताओं का पाठ किया। धन्यवाद ज्ञापन डॉ. हरिसिंह पाल ने किया। □

हिंदी कहानी पर कार्यक्रम संपन्न

विगत दिनों श्रीडूँगरगढ़ में राष्ट्रभाषा हिंदी प्रचार समिति, श्रीडूँगरगढ़ एवं राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर की ओर से राजस्थान की समकालीन हिंदी कहानी पर आयोजित समारोह में उद्घाटन सत्र के मुख्य अतिथि श्री वेद व्यास थे। अध्यक्षता श्रीमती नीलप्रभा भारद्वाज ने की। विशिष्ट अतिथि श्री रमेश जोशी एवं डॉ. सांवरसिंह यादव थे। इसमें आधार वक्तव्य डॉ. नरपतसिंह सोढ़ा ने दिया। प्रथम सत्र में 'सामाजिक और व्यावसायिक विद्रूप की अभिव्यक्ति' और 'राजस्थान की हिंदी कहानी' एवं द्वितीय सत्र में 'राजस्थान की हिंदी कहानी स्त्री संघर्ष की दास्तान' पर चर्चा हुई। दूसरे दिन 'दो दशक की हिंदी कहानी शिल्प और संवेदना के आईने में राजस्थान के संदर्भ में' विषय पर सत्र हुआ, जिसके मुख्य अतिथि श्री श्याम जांगिड़ थे, अध्यक्षता डॉ. चेतन स्वामी ने की। श्री सत्यदीप ने संचालन किया। □

काव्य-उत्सव संपन्न

विगत दिनों अखिल भारतीय साहित्य परिषद् (पंजाब-चंडीगढ़) द्वारा गुरु नानक देव यूनिवर्सिटी, अमृतसर के हिंदी विभाग के सहयोग से आयोजित 'काव्य-उत्सव' में चंडीगढ़ सहित पंजाब के 30 कवियों ने रचनापाठ किया। 'काव्य-उत्सव' की अध्यक्षता डॉ. राजेंद्र टोकी ने की। सर्वश्री जी.एस. औलख और शाहिद हसन शाहिद ने पंजाबी व उर्दू के प्रतिनिधि कवियों के रूप में भाग लिया। अभाविप (पंजाब-चंडीगढ़) के अध्यक्ष डॉ. पंकज अनेजा और गुरु नानक देव विश्वविद्यालय की हिंदी विभागाध्यक्ष डॉ. सुधा जितेंद्र ने अध्यक्ष-मंडल में सहभागिता की। सर्वश्री पूर्णिमा राय, शरीफ अहमद शरीफ, रोजी सेठ, श्रद्धा शुक्ला, अनु शर्मा कौल, रमण शर्मा, रिंपल सदा, अतुला भास्कर, इंद्रेश मीत, गीता डोगरा,

प्रोमिला अरोड़ा, विनोद कुमार, अशफाक जिगर, अजायब सिंह हुंदल, शमीर सिंह, राकेश प्रेम, शाहिद हसन शाहिद, जी.एस. औलख, वरुण आनंद ने काव्यपाठ किया। □

गल्प (कथा) संध्या संपन्न

१४ जनवरी को हिंदी लेखक संघ, हैदराबाद की ५४१वीं मासिक साहित्य गोष्ठी की अध्यक्षता श्री शिवकुमार तिवारी कोहिरी ने की और हिलेस के संयोजक श्री गोविंद अक्षय ने संचालन किया। गल्प (कथा) संध्या में कहानीकार डॉ. प्रेमलता श्रीवास्तव ने 'दर्द के रिश्ते', श्रीमती कुमुद बाला ने 'अंधविश्वास', श्री जी. परमेश्वर ने तेलुगु कहानीकार श्री आर. कविता प्रसाद की कहानी का हिंदी अनुवाद 'एक यात्रा की समाप्ति', श्री हर्षलता धुधोड़िया ने 'प्यार की गवाही', श्री दर्शन सिंह ने 'होगी अभी भोर', श्री गजानन पांडेय ने 'जिंदगी प्यार का गीत है', श्री बृहस्पति शर्मा ने 'कितने-कितने राम', श्रीमती उमा देवी सोनी ने 'ससुराल की पहली होली', डॉ. फरिदुद्दीन सादिक 'पत्थर कहें या शीशा', श्री श्रीनिवास सावरीकर ने 'चमचा' व श्री प्रदीप देवीशरण भट्ट ने 'एक मुसकान ऐसी भी' का पाठ किया। □

कवि-सम्मेलन संपन्न

१२ जनवरी को कानपुर के शिवम पैलेस में अनमोल रत्नसेवा संस्थान के संयोजन में विशाल आध्यात्मिक कवि-सम्मेलन का आयोजन संपन्न हुआ। रामकथा व्यासजी आचार्य रामदेव चतुर्वेदीजी द्वारा देश के विभिन्न कोनों से पधारे कवियों का स्मृति-चिह्न एवं अंगवस्त्र देकर सम्मान किया गया। सुप्रसिद्ध गीतकार डॉ. राधेश्याम मिश्र के जन्मोत्सव पर आयोजित कवि-सम्मेलन में सर्वश्री सुषमा त्रिपाठी, ओमप्रकाश सूर्य, अंसार कंबरी, के.के. अग्निहोत्री, चंद्रपाल मिश्र 'गगन', प्रशांत उपाध्याय, राधेश्याम मिश्र, मुकेश मणि कंचन, सुखदा वाजपेयी, बलवीर आश्चर्य आदि कवियों ने काव्यपाठ किया। आलोक विद्या मंदिर के प्रबंधक श्री सोमानी ने अध्यक्षता की। संचालन डॉ. मुकेश मणि कंचन ने किया। अंत में डॉ. राधेश्याम मिश्र ने आभार व्यक्त किया। □

तीन दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी संपन्न

१२-१४ जनवरी को धर्म संघ शिक्षा मंडल, वाराणसी के सभागार में उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, केंद्रीय हिंदी संस्थान, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली एवं विद्याश्री न्यास के संयुक्त तत्त्वावधान में 'गांधी और हिंदी सृजन-संदर्भ' विषय पर केंद्रीय राष्ट्रीय संगोष्ठी एवं भारतीय लेखक-शिविर का उद्घाटन सर्वश्री विश्वनाथ तिवारी, अच्युतानंद मिश्र, गिरीश्वर मिश्र, महेश्वर मिश्र, अरुणेश नीरन एवं दयानिधि मिश्र के सामूहिक दीप-प्रज्वलन, सरस्वती प्रतिमा पर माल्यार्पण, डॉ. लेखमणि के वैदिक स्तवन, डॉ. उमापति दीक्षित के पौराणिक मंगलाचरण एवं आचार्य श्रीकृष्ण शर्मा के स्वस्ति-वाचन के साथ हुआ। मंचस्थ अतिथियों द्वारा चित्रवीथि एवं पोस्टर-प्रदर्शनी के उद्घाटन एवं 'गांधी और हिंदी सृजन-संदर्भ' पुस्तक का लोकार्पण हुआ। डॉ. अरुणेश नीरन ने विषय की प्रस्तावना रखी। मुख्य अतिथि प्रो. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी थे। अध्यक्षीय उद्बोधन श्री अच्युतानंद मिश्र ने दिया। सत्र का संयोजन डॉ. राम सुधार सिंह ने और धन्यवाद ज्ञापन डॉ. बिजेंद्र पांडेय ने किया। द्वितीय सत्र में 'भाषा का प्रश्न, हिंदी पत्रकारिता और गांधी' विषय पर डॉ. शुभनीत कौशिक ने गांधी के भाषा-चिंतन के आधार पर अपने विचार रखे। सर्वश्री विश्वास पाटिल, सुमन जैन, उर्मिला पोरवाल, दिलीप सिंह, चितरंजन मिश्र, नंदकिशोर पांडेय ने अपने विचार रखे। इस सत्र का संयोजन-संचालन डॉ. जितेंद्र नाथ मिश्र ने किया। □

'विश्व हिंदी दिवस' समारोह संपन्न

१० जनवरी को लखनऊ में भारतीय भाषा प्रतिष्ठान राष्ट्रीय परिषद्, उ.प्र. एवं प्रज्ञा साहित्य परिषद् ने संयुक्त रूप से 'विश्व हिंदी दिवस' समारोह का आयोजन किया। जिसकी अध्यक्षता श्री महेश चंद्र द्विवेदी ने की। डॉ. मोहन लाल अग्रवाल ने परिषद् के उद्देश्यों एवं कार्यकलापों की जानकारी दी एवं अतिथियों का स्वागत किया। तत्पश्चात् परिषद् ने श्रीमती नीरजा द्विवेदी एवं सर्वश्री ध्रुवेंद्र स्वरूप बिसरिया, महादेव प्रसाद यादव, हरि फैजाबादी, कीर्ति अवस्थी एवं रेनु द्विवेदी को सम्मानित किया। विद्वान् वक्ताओं ने 'विश्व में हिंदी की वर्तमान स्थिति एवं भविष्य' विषय पर अपने विचार व्यक्त किए। मुख्य अतिथि के आशीर्वचन एवं अध्यक्षीय भाषण के उपरांत समारोह का समापन हुआ। □

श्री त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदी की स्मृति में सभा संपन्न

११ जनवरी को हिंदी भवन, नई दिल्ली द्वारा साहित्य अमृत, सस्ता सहित्य मंडल तथा प्रज्ञा संस्थान के साथ मिलकर श्री त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदी की स्मृति-सभा का आयोजन किया गया, जिसमें प्रसिद्ध गायक श्री जितेंद्र सिंह द्वारा भजनों की प्रस्तुति के पश्चात् हिंदी भवन के मंत्री डॉ. गोविंद व्यास, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र के अध्यक्ष श्री राम बहादुर राय, सुप्रसिद्ध राजनेता श्री गोविंदाचार्य, श्री रामनिवास जाजू, डॉ. इंद्रनाथ चौधुरी, भारतीय लोक प्रशासन संस्थान के उपाध्यक्ष सहित अनेक व्यक्तियों द्वारा श्री त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदी को भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित की गई। कार्यक्रम में श्री त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदी के सुपुत्र श्री अतींद्रनाथ चतुर्वेदी, हिंदी भवन के ट्रस्टी सर्वश्री हरि शंकर बर्मन, सुनील चोपड़ा, जी.सी. मिश्रा, रत्ना कौशिक, प्रभा जाजू, निधि गुप्ता सहित अनेक गण्यमान्य जन उपस्थित थे। □

भोपाल में व्याख्यान संपन्न

१० जनवरी को विश्व हिंदी दिवस के उपलक्ष्य में मध्य प्रदेश राष्ट्रभाषा प्रचार समिति द्वारा हिंदी भवन भोपाल में 'भारत-जापान सांस्कृतिक और आर्थिक' विषय पर आयोजित व्याख्यान में जापान के प्रसिद्ध हिंदी विद्वान् 'पद्मश्री' डॉ. तोमिओ मिजोकाजी ने अपनी फर्राटेदार हिंदी में कहा कि जापानी के कई शब्द तो संस्कृत भाषा से लिये गए हैं। प्रारंभ में हिंदी भवन के निदेशक डॉ. जवाहर कर्नावट ने श्री तोमिओ मिजोकामी का विस्तार से परिचय दिया। मुख्य अतिथि श्री संतोष चौबे (कुलाधिपति, टैगोर विश्वविद्यालय) थे। अध्यक्षता श्री सुखदेवप्रसाद दुबे ने की। स्वागत वक्तव्य श्री युगेश शर्मा ने प्रस्तुत किया। अंत में श्रीमती कांता रॉय ने आभार प्रकट किया। □

साहित्य मंडल का त्रिदिवसीय कार्यक्रम संपन्न

६-८ जनवरी को श्रीनाथद्वारा में साहित्य मंडल के त्रि-दिवसीय श्री भगवती प्रसादजी देवपुरा स्मृति एवं राष्ट्रीय बाल साहित्य समारोह के उद्घाटन सत्र की अध्यक्षता श्री देवकी काका ने की, मुख्य अतिथि

नाथद्वारा के विधायक एवं विधानसभा अध्यक्ष डॉ. सी.पी. जोशी व विशिष्ट अतिथि संस्था के उपाध्यक्ष पंडित मदनमोहन शर्मा 'अविचल' रहे। स्व. श्री भगवती प्रसादजी देवपुरा के कृतित्व व व्यक्तित्व पर विद्वान् लेखक-कवियों ने आलेख और कविता पाठ किया। तीनों दिन विभिन्न राशि वाले पुरस्कारों एवं मानद उपाधियों से दर्जनों साहित्यकारों को सम्मानित किया गया। देर रात तक कवि-सम्मेलन भी चला और अंतिम दिन दर्जन भर विद्वानों को 'बाल साहित्यकार सम्मान' एवं कवि, गद्य तथा संपादन के लिए विभिन्न उपाधियों से विभूषित किया गया। संचालन संस्था के प्रधानमंत्री श्री श्यामप्रकाश देवपुरा ने किया। डॉ. अंजीव अंजुम, श्री हरिओम हरि व श्री विट्ठल पारीक ने सम्मानित होनेवाले सभी साहित्यकारों के परिचय पढ़े। □

साहित्यिक क्षति

श्री त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदी नहीं रहे

५ जनवरी को जाने-माने प्रशासक एवं 'साहित्य अमृत' के संपादक श्री त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदी का निधन हो गया। उनका जन्म १८ जनवरी, १९२९ को उ.प्र. के औरैया जनपद के तिरवा नामक कसबे में हुआ था। उच्च शिक्षा प्राप्त कर १९५० में वे भारतीय प्रशासनिक सेवा में चयनित हुए और राजस्थान कैडर के उच्चाधिकारी बने। वे पुस्तकें खरीदने और पढ़ने के बेहद शौकीन थे। पहले राजस्थान के मुख्यमंत्री के सचिव, फिर मुख्य सतर्कता आयुक्त रहे। जिलाधिकारी के रूप में उन्होंने जनता के बीच अपार लोकप्रियता प्राप्त की। उन्होंने मुख्य सचिव, दिल्ली प्रशासन; संयुक्त निदेशक, राष्ट्रीय प्रशासनिक अकादमी मसूरी; निदेशक इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन; चीफ कमिश्नर चंडीगढ़, भारत के गृह सचिव तथा भारत के नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक बने। सेवानिवृत्ति के बाद वे राज्यसभा के सांसद बने। वे कर्नाटक तथा केरल के राज्यपाल भी रहे। उनके योगदान के लिए भारत सरकार ने सन् १९९१ में उन्हें 'पद्म विभूषण' सम्मान से अलंकृत किया। 'साहित्य अमृत' के संपादक के रूप में उनकी टिप्पणियों को पाठक हमेशा याद करेंगे।

~•~

डॉ. गंगाप्रसाद विमल नहीं रहे

२३ दिसंबर को हिंदी के जाने-माने साहित्यकार श्री गंगाप्रसाद विमल का श्रीलंका में एक कार-दुर्घटना में निधन हो गया। अस्सी वर्षीय विमलजी अपने परिवार के साथ यात्रा पर गए थे, इस दुर्घटना में उनकी पुत्री एवं उनके नाती की भी मृत्यु हो गई। उनका जन्म ३ जुलाई, १९३९ को उत्तरकाशी में हुआ। उन्होंने उस्मानिया विश्वविद्यालय, पंजाब वि.वि., जे.एन.यू. तथा जाकिर हुसैन कॉलेज (दि.वि.) में अध्यापन एवं शोध-निर्देशन किया। उनकी पुस्तकों में 'अपने से अलग', 'कहीं कुछ और', 'इतना कूचा' प्रमुख हैं। सन् २०१३ में उनका 'मानुसखोर' उपन्यास प्रकाशित हुआ। उनके कहानी-संग्रह 'कोई शुरुआत', 'अतीत में कुछ', 'इधर-उधर', 'बाहर न भीतर' तथा 'खोई हुई थाती' का हिंदी साहित्य में विशेष स्थान है। उन्होंने उपन्यास, नाटक, आलोचना भी लिखीं तथा कई रचनाओं का संपादन किया। उन्हें भारतीय भाषा पुरस्कार, संगीत अकादमी सम्मान के अलावा अनेक भारतीय तथा अंतरराष्ट्रीय सम्मान मिले।

~•~

प्रकाशक श्री श्यामसुंदरजी नहीं रहे

२८ दिसंबर को 'प्रभात प्रकाशन' के संस्थापक एवं 'साहित्य अमृत' के प्रबंध-संपादक श्री श्यामसुंदर का निधन हो गया। वे ९२ वर्ष के थे। उनका जन्म १ सितंबर, १९२७ को मथुरा जिले के सिहोरा गाँव में हुआ। आरंभिक शिक्षा मथुरा में पूरी कर उन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से स्नातक, स्नातकोत्तर तथा कानून की डिग्रियाँ प्राप्त कीं। सन् १९५८ में उन्होंने दिल्ली में 'प्रभात प्रकाशन' की नींव रखी और धीरे-धीरे प्रकाशन-जगत् में इसे विशिष्ट बनाया। सन् १९९५ में उन्होंने तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. शंकरदयाल शर्मा की प्रेरणा से श्री अटल बिहारी वाजपेयी के मार्गदर्शन तथा पं. विद्यानिवास मिश्र के नेतृत्व में 'साहित्य अमृत' पत्रिका का प्रकाशन आरंभ किया, जो आज साहित्यिक पत्रिकाओं में विशिष्ट स्थान रखती है। अपने जीवन में कर्मयोग को धारण करते हुए वे अंतिम दिन तक अपने कार्यालय में काम करते रहे।

~•~

आचार्य सोहनलाल रामरंग नहीं रहे

२८ दिसंबर को ओजस्वी वक्ता, प्रवचनकर्ता एवं ज्योतिष के गंभीर अध्येता आचार्य सोहनलाल रामरंग का निधन हो गया। अनेक देशों की यात्रा कर चुके आचार्य अंतरराष्ट्रीय तुलसी संगम के संस्थापक प्रधानमंत्री थे। उनके उत्कृष्ट ग्रंथों में 'उत्तर साकेत' (महाकाव्य, दो भाग), 'तुलसी' (उपन्यास, दो खंड), 'श्रीराम कथा की कथा' (शोधकृति, दो खंड), 'स्वातंत्र्य समर सत्र', 'दिल्ली की रामलीलाएँ' (शोधकृति) एवं कई कृतियाँ प्रकाशनाधीन हैं। वे राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय अनेक सम्मानों से विभूषित किए गए।

साहित्य अमृत परिवार की ओर से दिवंगत आत्माओं को भावभीनी श्रद्धांजलि।